सत्य की खोज कैसे करें ? भाग-01

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

भूमिका --

यह संसार बड़ा विचित्र है। अनादि काल से चल रहा है, और अनंत काल तक चलेगा। इस संसार में तीन पदार्थ अनादि हैं। ईश्वर, आत्मा और प्रकृति। आत्मा, अनादि काल से कर्म कर रहा है। ईश्वर, अनादि काल से उसके कर्मों का फल दे रहा है। इस प्रकृति (संसार) के माध्यम से दे रहा है।

आत्मा संसार में जन्म लेता है। सुखी दुखी होता है। फिर यहां से, जन्म मरण से छूट कर, वह मोक्ष में चला जाता है। जो लोग यहां संसार में जन्म लेते हैं, वे जब तक अविद्या राग द्वेष आदि 5 क्लेशों से ग्रस्त रहते हैं, तब तक उनका अगला जन्म चलता रहता है। तब तक उनका मोक्ष नहीं हो पाता। जब अविद्या राग द्वेष आदि 5 क्लेश पूरी तरह से समाप्त हो जाते हैं, तब उनका मोक्ष हो जाता है। अर्थात जन्म मरण से, एवं सब दुखों से छुटकारा, और ईश्वर के आनंद की प्राप्ति हो जाती है।

इस मोक्ष प्राप्ति का उपाय है, सत्यज्ञान/ तत्त्वज्ञान / वास्तविक ज्ञान / यथार्थ ज्ञान। सत्यज्ञान को कैसे प्राप्त करें, सत्य की खोज कैसे करें, इसकी बड़ी सूक्ष्म और सुंदर विद्या वेदों के आधार पर, महर्षि गौतम जी ने न्याय दर्शन में प्रस्तुत की है।

यदि व्यक्ति चाहे, तो इस विद्या की सहायता से सत्य की खोज कर सकता है। और उस सत्यज्ञान की सहायता से वह न्यायपूर्वक शुद्ध भाषा बोल कर, उत्तम आचरण करके, अपने व्यवहार को भी शुद्ध कर सकता है, तथा जन्म मरण से छूट कर मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है। इसलिए सबको न्याय विद्या का अध्ययन अवश्य ही करना चाहिए। ताकि सब लोग सत्य की खोज कर सकें, सही भाषा बोल सकें। स्वयं भ्रांतियों से बचकर, दूसरों की भ्रांतियां भी दूर कर सकें। अपना आचरण ठीक कर सकें, स्वयं सुखी रहकर दूसरों को सुख दे सकें, तथा जन्म मरण से छूट कर मोक्ष को प्राप्त कर सकें।

सही सोचने और सही बोलने के लिए महर्षि गौतम जी ने बताया, कि प्रमाण और तर्क से सोचना तथा बोलना चाहिए। यदि सोचने विचारने में भूल हो गई, तो बोलने में भी भूल होगी। इसलिए यदि शुद्ध एवं सत्य बोलना चाहते हैं, तो पहले अपने चिंतन को शुद्ध करें। इसके लिए उन्होंने बताया, कि - सत्य की खोज करते समय दो पक्ष बना लेने चाहिएँ। उन दो पक्षों में आपस में बातचीत करके सत्य की खोज करनी चाहिए। वे दो पक्ष एक ही व्यक्ति, स्वयं अपने मन में भी बना सकता है। और दो व्यक्ति आमने-सामने बैठकर भी दो पक्ष बनाकर बातचीत कर सकते हैं। जैसी सुविधा हो, वैसा कर सकते हैं।

सत्य की खोज के लिए जब दो व्यक्ति शुद्ध बातचीत करते हैं, तो न्यायदर्शन की भाषा में उसे वाद कहते हैं। और उन दोनों व्यक्तियों को वादी प्रतिवादी के नाम से कहा जाता है। वे दोनों अपने अपने जिस सिद्धांत की स्थापना करते हैं, उसे पक्ष प्रतिपक्ष कहते हैं। जब दो व्यक्ति बात करेंगे, और उनकी बातों में टकराव होगा, तभी पक्ष प्रतिपक्ष कहलाएंगे। जैसे एक व्यक्ति ने कहा कि "ईश्वर है", और दूसरे व्यक्ति ने कहा कि "ईश्वर नहीं है". इस प्रकार से दोनों व्यक्तियों की बात में सीधा विरोध होना चाहिए, तभी ये पक्ष और प्रतिपक्ष कहलाते हैं। ऐसी स्थिति में दोनों की बातचीत आगे चल सकती है।

यदि एक व्यक्ति कहे, कि "ईश्वर है", और दूसरा कहे, कि "ईश्वर सर्वशक्तिमान है", तो इसका नाम पक्ष विपक्ष नहीं है। क्योंकि इन दो बातों में सीधा टकराव नहीं है। इसलिए ऐसी स्थिति में इस विषय पर बातचीत आगे नहीं चल सकती।
परन्तु बहुत से लोग ऐसी भूल करते हैं। वे अपनी अपनी बात कहते रहते हैं, और दूसरे व्यक्ति की बात नहीं सुनते। उस पर ध्यान नहीं देते। फिर आधे घंटे बाद एक व्यक्ति कहता है - "मैं यही तो कह रहा था।" दूसरा व्यक्ति कहता है, - "मैं भी तो यही कह रहा था।" तब उन्हें पता चलता है, कि "जब हम दोनों

एक ही बात कर रहे थे, तो आधे घंटे का समय और इतनी शक्ति हमने क्यों खोई?"

इस प्रकार से सोच समझकर सावधानी से बातचीत करनी चाहिए, तथा ऐसी गलतियों से बचना चाहिए। महर्षि गौतम जी ने बातचीत करते समय या सत्य की खोज करते समय कुल मिलाकर 54 प्रकार की गलतियां बताई हैं। इन्हें हम आगे समझने का प्रयत्न करेंगे। जो व्यक्ति न्यायदर्शन में बताई गई इन 54 गलतियों को नहीं समझेगा, उसको अपने जीवन भर में, न तो कभी, सही सोचने का ढंग समझ में आएगा, न ही कभी वह सत्य की खोज कर पाएगा। न वह कभी सत्य बोल पाएगा, और न ही वह अपने व्यवहार को कभी शुद्ध कर पाएगा। इन सब गलतियों के कारण वह सदा स्वयं दुखी रहेगा, दूसरों को दुख देगा, और पाप कर्म इकट्ठे करता रहेगा, जिनका दण्ड उसे भविष्य में अनेक प्रकार से भोगना पड़ेगा। अतः इन सब समस्याओं से छूटने के लिए, महर्षि गौतम जी द्वारा बताई गई, वैदिक न्याय विद्या को पढ़ना अत्यंत आवश्यक है।

~ स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

01/02/2021 निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय

सत्य की खोज कैसे करें ? भाग-02

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

प्राक्कथन

सृष्टि के आरंभ में ईश्वर ने चार वेदों का ज्ञान दिया। उन वेदों में लौकिक एवं आध्यात्मिक सैंकड़ों विद्याएँ बताईं। उन विद्याओं में से एक विद्या है, न्याय विद्या या न्याय दर्शन। इस विद्या की सहायता से व्यक्ति अपनी सांसारिक समस्याओं को भी सुलझा लेता है, और मोक्ष को भी प्राप्त कर लेता है। वैदिक न्याय विद्या को समझाने के लिए महर्षि गौतम जी ने एक ग्रंथ बनाया - न्याय दर्शन। न्याय दर्शन में कुल मिलाकर 5 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में दो दो आह्निक हैं। सूत्र लगभग 528 हैं। इस न्याय दर्शन नामक ग्रंथ में जो सूत्र हैं, वे महर्षि गौतम जी के हैं। और इन सूत्रों पर संस्कृत भाषा में प्रामाणिक भाष्य, महर्षि वात्स्यायन जी ने किया। ये दोनों महापुरुष, बड़े ही तीव्र बुद्धि वाले, सत्य असत्य को समझाने में अच्छी प्रकार से समर्थ, महान ऋषि हैं। आजकल लोग संस्कृत भाषा और ऋषियों के ग्रंथ प्रायः पढ़ते नहीं। इसलिये इन न्याय आदि विद्याओं से अनभिज्ञ हैं। इस कारण से लोगों के सोचने, बोलने तथा आचरण करने में अनेक त्रुटियां होती रहती हैं। वे अपनी सांसारिक समस्याओं को भी

नहीं सुलझा पा रहे, तथा मोक्ष प्राप्त करना तो और भी दूर की बात है।

देखिये, कितने आश्चर्य की बात है, कि लोग गणित विद्या को किसी गुरु जी से पढ़े बिना स्वयं को गणितज्ञ नहीं मानते। परन्तु तर्कशास्त्र (न्याय दर्शन) को किसी योग्य गुरु जी से पढ़े बिना ही, इसे समझे बिना ही, वे स्वयं को बड़ा तर्कशास्त्री मानते हैं। उनकी यही भ्रांति, सत्य को समझने में उनके लिए बहुत बड़ा बाधक है। इसलिये वे सत्य को समझ नहीं पाते। और वर्षों तक अपने हठ दुराग्रह कुतर्क आदि के कारण संसार में भ्रांतियां फैलाते रहते हैं। इसका उन्हें ईश्वर की न्याय व्यवस्था में बहुत सा दंड भी भोगना पड़ेगा।

हमने इस वैदिक न्याय विद्या को समझने समझाने में पिछले लगभग 40 वर्षों में खूब परिश्रम किया है। ईश्वर की कृपा और पूज्य गुरुजनों के आशीर्वाद से इस विद्या को कुछ अच्छी प्रकार से समझा है। लोग इस उत्तम विद्या के न जानने से बहुत सी गलतियां करते हैं, लड़ाई झगड़े पाप कर्म आदि से परेशान हैं। वे स्वयं दुखी हैं तथा दूसरों को भी दुख दे रहे हैं। अतः हमें ऐसा अनुभव हुआ, कि लोगों को इस उत्तम

कल्याणकारी विद्या से परिचित कराया जाए। जिससे कि लोग अपनी गलतियों पाप कर्मों और दुखों से बच सकें। इसलिये हमने यह प्रयास आरंभ किया है। न्याय विद्या को समझाने के लिए, हम इन व्याख्यानों में जो कुछ भी कहेंगे; वह सब, वेदों, अन्य ऋषियों तथा इन दोनों ऋषियों द्वारा लिखे वैदिक विचारों के आधार पर ही कहेंगे। हमारा अपना व्यक्तिगत विचार कुछ भी नहीं होगा।

हमारा सभी सज्जनों से विनम्र निवेदन है, कि आप सब लोग भी इस विद्या को श्रद्धा पूर्वक सीखने का पूरा प्रयत्न करें। गलतियां करने से बचें। दुखों से छूट कर सुख को प्राप्त करें, एवं अपना और दूसरों का कल्याण करें।

#####################

-- विषय प्रवेश --

प्रत्येक आत्मा दुख से पूरी तरह से छूटना चाहता है, और 100% सुख को प्राप्त करना चाहता है। ये दोनों कार्य तभी हो सकते हैं, जब वह उन पदार्थों के स्वरूप को ठीक से जानता हो, जिनसे सुख दुख प्राप्त होते हैं। यदि वे पदार्थ सुखदायक हैं, तब तो आत्मा उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा। जैसे फल मिठाई

आदि को। यदि वे पदार्थ दुखदायक हैं, तो वह उनसे छूटना चाहेगा। जैसे साँप बिच्छू आदि से। इसीलिये वह संसार के पदार्थों के विषय में जानना चाहता है, कि ये पदार्थ सुखदायक हैं, या दुखदायक हैं।

नहीं हो सकता, कि व्यक्ति किसी वस्तु को प्राप्त करे, अथवा किसी वस्तु को छोड़ दे। और प्रमाण के बिना यह कार्य संभव नहीं है, कि किसी वस्तु का सही स्वरूप ठीक से समझ में आ जाए। इसलिए प्रमाण एक ऐसा महत्वपूर्ण साधन है, जिससे किसी वस्तु के सही स्वरूप का ज्ञान ठीक प्रकार से प्राप्त किया जाता है।

जब प्रमाण से किसी वस्तु के सही स्वरूप की जानकारी की जाती है, तो इस प्रक्रिया में प्रमाण के साथ तीन चीजें और भी जुड़ी हुई होती हैं। अतः इन प्रमाण आदि चार चीज़ों को जानना आवश्यक है।

पहली वस्तु - प्रमाण। "जिस साधन से कोई वस्तु ठीक-ठीक जानी जाए, उस साधन को प्रमाण कहते हैं।" जैसे - आंख से पंखे को देखना। इस घटना में पंखे को देखने का साधन

आंख है। आंख से पंखा ठीक-ठीक जाना जाता है, इसलिए आंख को प्रमाण कहेंगे।

दूसरी वस्तु - प्रमेय। **"प्रमाण से जो वस्तु जानी जाती है, उसे प्रमेय कहते हैं।"** जैसे - पंखा। आंख से पंखे को देखा। तो आंख प्रमाण हुई, और प्रमेय पंखा हुआ।

तीसरी वस्तु -- प्रमाता। **"जो प्रमाण से प्रमेय को जानने वाला चेतन पदार्थ है, उस चेतन पदार्थ को प्रमाता कहते हैं।"** जैसे कि आत्मा।

और चौथी वस्तु -- प्रमिति। **"प्रमाता को, प्रमाण के माध्यम से, प्रमेय के संबंध में, जो ज्ञान प्राप्त हुआ, उसे प्रमिति कहते हैं।"** जैसे - "यह एक सफेद रंग का पंखा है।" इस ज्ञान का नाम प्रमिति है।

संसार भर की वस्तुएं ऊपर बताए चार भागों में कहीं न कहीं समाविष्ट हो जाती हैं। इस ढंग से जब हम सृष्टि के पदार्थों को समझने का प्रयत्न करेंगे, तो इनको समझना बहुत सरल हो जाएगा।

- **स्वामी विवेकानंद परिव्राजक**

02/02/2021 निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय

सत्य की खोज कैसे करें? भाग 03

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

न्यायदर्शन में 16 पदार्थों के तत्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति बताई गई है। न्यायसूत्र अध्याय 1, आह्निक 1, तथा सूत्र 1 में इन 16 पदार्थों के नाम इस प्रकार से बताए गए हैं।

प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टांतसिद्धांतावयव-
तर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासछलजातिनिग्रहस्थानानां
तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः ॥

न्यायसूत्र 1/1/1.

अर्थात प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान, इन 16 पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

आइए, इनका संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें।

1. <u>प्रमाण</u> - जिस साधन से किसी पदार्थ का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त हो जाए, उसे प्रमाण कहते हैं। अर्थात किसी पदार्थ को जानने का साधन। जैसे- "किसी ने आंख से मोटर गाड़ी मकान वस्त्र आदि पदार्थों को जाना।" इस उदाहरण में आंख, जानने का साधन होने के कारण प्रमाण है। (न्याय दर्शन में मुख्य रूप से चार प्रमाण कहे गए हैं। इनके अतिरिक्त बाद में चार प्रमाण और भी बताए हैं। अतः कुल

मिलाकर आठ (8) प्रमाण माने गए हैं। उनके नाम हैं -- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, इतिहास, अर्थापत्ति, संभव और अभाव।) इनकी विस्तृत व्याख्या आगे की जाएगी। परंतु संक्षिप्त परिचय यहाँ पर भी दिया जा रहा है।

8 प्रमाण

(i) प्रत्यक्ष प्रमाण -- नेत्र आदि इंद्रियों से कुर्सी मकान आदि पदार्थों को देखने पर, जो उनका भ्रांति एवं संशय रहित, स्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है, उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

(ii) अनुमान प्रमाण -- अनुमान हमेशा प्रत्यक्ष के आधार पर होता है। जिन दो वस्तुओं को हम साथ साथ अनेक बार देख चुके हैं, उसके बाद, उन दो में से एक वस्तु को प्रत्यक्ष देखने पर, उससे संबंधित दूसरी वस्तु को बिना देखे ही जान लेना, अनुमान प्रमाण कहलाता है। जैसे धुएं को देख कर, उससे संबंधित अग्नि को बिना देखे जान लेना। यह तीन प्रकार का होता है। पूर्ववत्, शेषवत्, और सामान्यतो दृष्ट।

(iii) उपमान प्रमाण -- किसी प्रसिद्ध वस्तु का उदाहरण /उपमा देकर, किसी और अप्रसिद्ध वस्तु को समझा देना, उपमान प्रमाण कहलाता है। यथा -- जैसी कोयल की आवाज मीठी होती है, वैसी ही लता

मंगेशकर जी की आवाज भी मीठी होती है। जैसे आकाश सर्वव्यापक है, ऐसे ही ईश्वर भी सर्वव्यापक है।

(iv) **शब्द प्रमाण** -- किसी आप्त व्यक्ति का वचन या उपदेश, शब्द प्रमाण कहलाता है। आप्त में तीन विशेषताएँ होती हैं। उसका ज्ञान सत्य हो, वह परोपकारी हो, और वह सत्यवादी हो। सबसे बड़ा आप्त ईश्वर है, और उसका वचन वेद है। अतः वेद सबसे बड़ा शब्द प्रमाण है। इसी प्रकार से ऋषि आदि लोग भी आप्त हैं। और उनके वचन भी शब्द प्रमाण हैं।

शब्द प्रमाण दो प्रकार का होता है। **दृष्टार्थ**- जिसका फल इसी जन्म में दिखाई दे जाए। जैसे उचित व्यायाम, विश्राम और सात्विक भोजन करने से शरीर स्वस्थ एवं बलवान बनता है।

और दूसरा **अदृष्टार्थ**- जिसका फल इस जन्म में न दिखाई दे। अगले जन्मों या मोक्ष में दिखाई दे। जैसे स्वर्ग की कामना करने वाला व्यक्ति प्रतिदिन यज्ञ करे। तथा ईश्वर की अनुभूति करके आत्मा मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

(v) **इतिहास प्रमाण** -- भूतकाल की सच्ची घटनाओं का वर्णन, इतिहास प्रमाण कहलाता है। जैसे श्री राम चन्द्र जी महाराज बड़े महान राजा, सत्पुरुष, और माता पिता के आज्ञाकारी पुत्र थे।

(vi) **अर्थापत्ति प्रमाण** -- एक बात के कहने से, जब दूसरी बात, बिना कहे उसके अर्थ से समझ ली जाए, उसे अर्थापत्ति प्रमाण कहते हैं। उदाहरण -- जैसे किसी ने कहा - कि "आटे के न होने पर रोटी नहीं बनती।" इस बात के कहने से दूसरी बात, बिना कहे, उसके अर्थ से प्राप्त हो गई, कि - "आटे के होने पर, रोटी बनती है." इसे अर्थापत्ति प्रमाण कहते हैं।

(vii) **संभव प्रमाण** -- जो बात सृष्टि नियम के अनुकूल हो, वह संभव प्रमाण कहलाता है। जैसे- आँख से देखना, कान से सुनना, संभव है। (परन्तु घुटने से देखना, और माता के कान से बालक का जन्म होना असंभव है।)

(viii) **अभाव प्रमाण** -- जहाँ पर कोई वस्तु न हो, उसके न होने के कारण, किसी अगली बात का ज्ञान होवे, वहां उस अगली बात का ज्ञान, अभाव प्रमाण से होता है। जैसे - सेठ जी ने अपने नौकर से कहा-

उस कमरे में 15 कपड़े रखे हैं। उनमें से 5 रंगहीन (सफेद) कपड़े ले आओ। नौकर ने रंगीन 10 कपड़े अलग कर दिए, और 5 सफेद कपड़े ले आया। नौकर ने रंगहीन कपड़ों को रंगों के अभाव प्रमाण से जाना।

ये आठ प्रकार के "प्रमाण" हैं। इन्हीं से संसार की सब वस्तुएं जानी जाती हैं।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़, गुजरात

सत्य की खोज कैसे करें?

भाग 04

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्यायदर्शन सूत्र 1/1/10 से 22)

16 पदार्थों में **दूसरा पदार्थ प्रमेय**

2. **प्रमेय** - **प्रमाणों से जिस वस्तु को जाना जाए, उसे प्रमेय कहते हैं।** अर्थात जानने योग्य पदार्थ। "किसी ने आंख से मोटर गाड़ी मकान वस्त्र आदि पदार्थों को जाना।" यहाँ पर मोटर गाड़ी मकान वस्त्र आदि पदार्थ प्रमेय हैं।

[यूँ तो संसार में प्रमेय अर्थात जानने योग्य पदार्थ असंख्य हैं। परंतु सबको जानना संभव नहीं है। इसलिए महर्षि गौतम जी ने 12 प्रमेय छांटकर बता दिए, कि इनको जाने बिना मोक्ष नहीं होगा। इन 12 प्रमेयों को जानना आवश्यक है। वे 12 प्रमेय हैं -- **आत्मा, शरीर, इंद्रियाँ, अर्थ** (रूप रस गन्ध आदि विषय), **बुद्धि** (ज्ञान), **मन, प्रवृत्ति** (कर्म), **दोष** (राग द्वेष आदि), **प्रेत्यभाव** (पुनर्जन्म), **कर्मों का फल, दुख और मोक्ष**।]

12 प्रमेयों का संक्षिप्त परिचय-- (न्याय सूत्र 1/1/10 से 22 तक)

i. आत्मा-- इच्छा द्वेष प्रयत्न गुणवाला होना, सुखी दुखी होना और ज्ञानवाला होना, इन लक्षणों से जो पदार्थ पहचाना जाता है, उसे आत्मा कहते हैं। वह आंखों से

नहीं दिखता, इन लक्षणों से = अनुमान से जाना जाता है।

ii. शरीर-- जो पृथ्वी, जल आदि पंचमहाभूतों से बना है, जिसके माध्यम से आत्मा कर्म करता है, और कर्मों का फल = सुख दुख भोगता है, उसे शरीर कहते हैं।

iii. इंद्रियाँ-- आंख कान नाक रसना और त्वचा, ये पांच इंद्रियाँ (ज्ञानेद्रियां) कहलाती हैं।

iv. अर्थ-- रूप रस गंध शब्द और स्पर्श, ये पांच इंद्रियों के विषय हैं। इनको अर्थ कहते हैं। इनको ग्रहण कर के इंद्रियाँ, मन तक पहुंचा देती हैं।

v. बुद्धि-- बुद्धि शब्द के अनेक अर्थ हैं। परंतु इस प्रसंग में बुद्धि का अर्थ ज्ञान है। इसे उपलब्धि भी कहते हैं। अर्थात बुद्धि उपलब्धि और ज्ञान, ये तीनों शब्द समानार्थक हैं।

vi. मन-- मन एक समय में एक ही काम करता है। या तो ज्ञानेंद्रियों के साथ जुड़कर ज्ञान प्राप्त करेगा, या कर्मेंद्रियों के साथ जुड़ कर उन्हें क्रियाशील करेगा। मन की गति बहुत तीव्र होने से अनेक बार ऐसी भ्रांति होती है, कि जैसे हम अनेक कार्य एक साथ कर रहे हैं, जबकि वे

एक साथ नहीं होते। उनमें काल का बहुत सूक्ष्म अंतर होता है। जैसे टेलीविजन देखते समय या बातचीत करते समय, देखना सुनना, हाथ पैर हिलाना इत्यादि। इन कार्यों के करते समय तीव्र गति के कारण, एक सेकंड में मन बहुत से काम कर लेता है, परंतु करता क्रम से ही है। हम उस क्रम को पकड़ नहीं पाते। इसलिए हमें ऐसी भ्रांति होती है कि हमारे कई काम एक साथ हो रहे हैं।

vii. प्रवृत्ति-- इसका अर्थ है कर्म। व्यक्ति मन, वाणी, और शरीर से अच्छे बुरे कर्म करता है। इनको प्रवृत्ति कहते हैं। जैसे यज्ञ करना, दान देना, चोरी करना, सत्य बोलना, झूठ बोलना, निंदा चुगली करना, दूसरों की सहायता करना इत्यादि।

viii. दोष-- जो भावनाएं, सकाम कर्म करने में प्रेरित करती हैं, उन्हें दोष कहते हैं। जैसे राग द्वेष काम क्रोध लोभ ईर्ष्या अभिमान इत्यादि।

ix. प्रेत्यभाव-- इसका अर्थ है पुनर्जन्म। आत्मा वर्तमान शरीर को छोड़ देता है, जिसे मृत्यु कहते हैं। और नया शरीर धारण कर लेता है, इसको जन्म कहते हैं। इस

प्रकार से बार-बार पिछला शरीर छोड़कर नया शरीर धारण करना प्रेत्यभाव अर्थात पुनर्जन्म कहलाता है।

x. फल-- इसका अर्थ है कर्मों का फल। आत्मा जैसे भी अच्छे बुरे कर्म करता है, उनका फल उसे अच्छा बुरा अर्थात सुख दुख के रूप में मिलता है। कर्मों का फल - जाति आयु भोग है। जाति अर्थात मनुष्य पशु पक्षी आदि शरीर; आयु अर्थात जीने के लिए समय; और भोग अर्थात खाने-पीने जीने रहन-सहन के साधन मकान मोटर गाड़ी धन-संपत्ति इत्यादि मिलता है। यह कर्मों का पहला फल है। इसका भी अगला और वास्तविक फल = सुख और दुख है।

xi. दुःख-- जो अनुभूति हमें पसंद नहीं आती, जिसे हम नष्ट करना चाहते हैं, जिससे हमें परेशानी होती है, उसका नाम दुख है। जैसे पेट दर्द, सिर दर्द, दुर्घटना आदि में हाथ पैर टूटना, आंधी बाढ़ भूकंप आदि में कष्ट होना, टीबी कैंसर बुखार आदि में कष्ट होना, ऐसी खराब अनुभूति का नाम दुख है। इससे सब प्राणी छूटना चाहते हैं।

xii. अपवर्ग-- इसका अर्थ है मोक्ष। मोक्ष में सारे दुखों से आत्मा छूट जाता है, और ईश्वर के उत्तम आनंद को प्राप्त करता है। इसके साथ-साथ एक और लाभ भी अतिरिक्त रूप से होता है, वह है पूरे ब्रह्मांड की सैर करना, और नई नई चीजों को जानना। इस मोक्ष या अपवर्ग को सभी लोग चाहते हैं। परंतु वेदों के ज्ञान विज्ञान, अष्टांग योग समाधि, तथा अविद्या आदि 5 क्लेशों का नाश किए बिना, इस मोक्ष को कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता।

ये 12 पदार्थ, "प्रमेय" कहलाते हैं। महर्षि गौतम जी कहते हैं, कि मोक्ष प्राप्ति के लिए इनको जानना अति आवश्यक है। इनको जाने बिना किसी का मोक्ष नहीं हो सकता।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 1/1/23 से 31 तक)
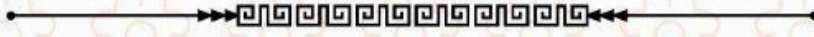
3. संशय - जब मन में किसी पदार्थ के संबंध में, दो या दो से अधिक विचार हों, और निर्णय कुछ भी हो नहीं पा रहा, तो ऐसी स्थिति का नाम संशय है। जैसे कि - "ईश्वर है।" यह एक विचार है। "ईश्वर नहीं है।" यह दूसरा विचार है। अब इस बात का निर्णय नहीं हो पा रहा, कि "ईश्वर है, या नहीं है." इसका नाम संशय है।

आत्मा अल्पज्ञ है, इसलिए उसे यदि किसी पदार्थ के संबंध में संशय हो जाए, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परंतु संशय हो जाने पर कोई और विशेष ज्ञान की प्राप्ति यदि हो जाए, तो उससे संशय का निवारण हो जाता है। ईश्वर, आत्मा, कर्मफल आदि मुख्य विषयों में संशय दूर अवश्य हो जाना चाहिए। इसके बिना मोक्ष नहीं होता। बाकी संसार में बहुत वस्तुएँ हैं, सब वस्तुओं के विषय में संशय दूर हो नहीं सकता, इसलिए उनके विषय में जो जो संशय हो, उसकी चिंता नहीं करनी चाहिए।

4. प्रयोजन - जिस वस्तु को लक्ष्य बनाकर व्यक्ति पुरुषार्थ करता है, क्रिया करता है, उसे प्रयोजन कहते हैं। जैसे कोई विद्यार्थी, विद्या प्राप्ति को लक्ष्य बनाकर मेहनत करता है, तो "विद्या प्राप्ति करना

उसका प्रयोजन है ।" कोई व्यक्ति धन को लक्ष्य बनाकर व्यापार करता है, तो "धन कमाना उसका प्रयोजन है ।" इसी प्रकार से कोई व्यक्ति मोक्ष को लक्ष्य बनाकर परिश्रम करता है, तो "मोक्ष प्राप्ति करना उसका प्रयोजन है ।"

संसार में छोटे बड़े अनेक प्रयोजन होते हैं। परंतु सबसे अंतिम प्रयोजन सबका एक ही है, और वह है मोक्ष प्राप्ति । मोक्ष को प्राप्त करके फिर कोई काम बाकी नहीं रहता, इसलिए उसे अंतिम प्रयोजन कहते हैं। क्योंकि मोक्ष में आत्मा के सारे दुख समाप्त हो जाते हैं, और उसे ईश्वर के पूर्ण आनंद की प्राप्ति भी हो जाती है।

5. दृष्टान्त - जिस वस्तु के विषय में सामान्य व्यक्ति और पढ़े लिखे विद्वान व्यक्ति, दोनों का विचार एक समान हो, कोई मतभेद न हो, उसे दृष्टान्त कहते हैं। जैसे सामान्य व्यक्ति भी यह मानता है कि "अग्नि गर्म होती है, वह जलाती है ।" बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी इस बात को इसी रूप में स्वीकार करता है। इस विषय में दोनों में कोई मतभेद नहीं है। अतः इसे दृष्टांत कहेंगे। इन दृष्टांतों की सहायता से ही व्यक्ति अपने पक्ष को सिद्ध करता है, और दूसरे व्यक्ति के दृष्टांत में यदि कोई गलती हो, तो उसे बता कर उसकी गलती को दूर करता है।

6. सिद्धांत - किसी वस्तु के विषय में इस प्रकार से कथन करना कि "यह वस्तु ऐसी है", अथवा "मैं इस वस्तु को ऐसा मानता हूं." इस

प्रकार के कथन को सिद्धांत कहते हैं। सिद्धांत चार प्रकार के होते हैं। सर्वतंत्र, प्रतितंत्र, अधिकरण और अभ्युपगम।

(क) सर्वतंत्र सिद्धांत - जो बातें सभी शास्त्रों में एक जैसी स्वीकार की जाती हैं, जिनमें कोई मतभेद नहीं होता, उन्हें सर्वतंत्र सिद्धांत कहते हैं। जैसे - पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश, ये 5 महाभूत हैं। आंख नाक कान रसना और त्वचा, ये पांच इंद्रियां हैं, इत्यादि।

(ख) प्रतितंत्र सिद्धांत - जो बातें अलग-अलग शास्त्रों में, अलग अलग ढंग से कही गई हैं, उनमें कहीं-कहीं टकराव होता भी है, और कहीं कहीं नहीं भी होता। ऐसी बातों को प्रतितंत्र सिद्धांत कहते हैं। जैसे , एक शास्त्र में लिखा है कि - "सभी आत्माएँ अपने मूल स्वरूप से एक जैसी हैं। किसी को भी दुख स्वीकार नहीं है। सुख को सभी चाहते हैं।" दूसरे शास्त्र में लिखा है कि - "सब आत्माओं में नैमित्तिक गुणों के कारण अंतर है, क्योंकि सब के विचार इच्छाएं ज्ञान रुचि और कर्म, सब अलग-अलग हैं।" इन दोनों को प्रतितंत्र सिद्धांत कहेंगे। यद्यपि इन दोनों में सीधा टकराव नहीं है, फिर भी दोनों बातों का प्रस्तुतिकरण अलग-अलग दृष्टिकोण से किया गया है।

इसी प्रकार से कुछ शास्त्रों में टकराने वाले सिद्धांत भी होते हैं। जैसे वैदिक शास्त्रों में बताया है कि "ईश्वर निराकार, सर्वज्ञ एवं

सर्वव्यापक है, वह शरीर धारण कभी नहीं करता।"

और अन्य अवैदिक शास्त्रों में अर्थात भिन्न भिन्न संप्रदायों के शास्त्रों में लिखा है, कि "ईश्वर एकदेशी है, और वह शरीर धारण कर के अवतार भी लेता है।" यहाँ सिद्धांतों में टकराव या विरोध भी है। इनको भी प्रतितंत्र सिद्धांत कहेंगे।

(ग) अधिकरण सिद्धांत - जब एक सिद्धांत के आधार पर, उससे संबद्ध दूसरा सिद्धांत सिद्ध होता है, तो पहले आधारभूत सिद्धांत को अधिकरण सिद्धांत कहते हैं। जैसे - ईश्वर सर्वव्यापक है, सर्वज्ञ है, और निष्पक्ष है। इन तीन बातों के आधार पर यह सिद्ध होता है, कि ईश्वर न्यायकारी है। तो पहले की तीन बातें मिलकर अधिकरण सिद्धांत कहलाएगा। जिनके आधार पर यह सिद्ध हुआ कि "ईश्वर न्यायकारी है।" यदि पहली तीन बातें स्वीकार न की जाएँ, तो ईश्वर न्यायकारी सिद्ध नहीं हो पाएगा।

(घ) अभ्युपगम सिद्धांत - कभी कभी किसी व्यक्ति को समझाने के लिए, उसकी किसी गलत बात को "थोड़ी देर के लिए मान लेते हैं।" और उस गलत बात को थोड़ी देर के लिए मानकर, प्रमाण व तर्क से उसका और अधिक परीक्षण करते हुए, उस व्यक्ति को समझाने का प्रयास करते हैं। "इस प्रक्रिया में, उस गलत बात को थोड़ी देर के लिए स्वीकार कर लेना, अभ्युपगम सिद्धांत कहलाता है।"

जैसे किसी ने कहा - "थोड़ी देर के लिए मान लेते हैं, कि ईश्वर अवतार लेता है।" तो आगे इसका विशेष परीक्षण ऐसे किया जाता है कि - "यदि ईश्वर अवतार लेगा, तो वह कभी न कभी रोगी भी होगा। उसे भूख प्यास गर्मी ठंडी सर्दी जुकाम बुखार आंधी तूफान बाढ़ भूकंप आदि सभी समस्याएं सताएँगी, जैसे कि सभी मनुष्यों को सताती हैं। "तो यह बतलाएँ, कि सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान सर्वव्यापक आनन्दस्वरूप ईश्वर को ये बाधाएं सताएँ, और उसे दुख देवें, क्या ऐसा मानना ठीक है?" ऐसा सुनकर दूसरे व्यक्ति को बात समझ में आ गई। वह बोला - "यह तो ठीक नहीं है।" समझाने वाले ने कहा - इसलिए ईश्वर कभी भी अवतार नहीं लेता। "इस तरह से अवतार लेने वाली गलत बात को थोड़ी देर के लिए स्वीकार कर लेना, इसे अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं।"

(इन 4 प्रकार के सिद्धांतो में अनेक स्थानों पर विरोध या टकराव होता है। और जब किन्हीं दो व्यक्तियों के सिद्धांत में टकराव होता है, तब उन्हीं पर आपस में बातचीत चर्चा बहस या शास्त्रार्थ आदि होते हैं।)

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,

रोजड़, गुजरात।
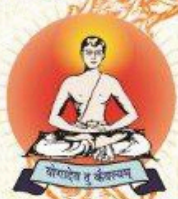
7. अवयव - जब दो व्यक्ति आपस में किसी विषय पर बातचीत करते हैं, तो वे वादी प्रतिवादी कहलाते हैं। वे अपने अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिए एक विशेष प्रक्रिया का सहयोग लेते हैं, जिसका नाम है पंचावयव। इसमें पांच वाक्य होते हैं, जिनको पूरा व्यवस्थित रूप से कहने पर अपने पक्ष की सिद्धि हो जाती है। इन पाँच अवयवों के नाम हैं -- प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। दोनों पक्ष वालों को अपने अपने पक्ष की सिद्धि के लिए पंचावयव प्रस्तुत करना पड़ता है।

पंचावयव दो प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है। एक - उदाहरण के साधर्म्य से। और दूसरा - उदाहरण के वैधर्म्य से।

साधर्म्य से पंचावयव का एक उदाहरण -

प्रतिज्ञा - शब्द अनित्य है।

हेतु - उत्पत्ति धर्म वाला होने से।

(व्याप्ति - जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है।)

उदाहरण - जैसे घड़ा।

उपनय - घड़े के समान शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है।

निगमन - इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

वैधर्म्य से पंचावयव का एक उदाहरण -

प्रतिज्ञा - शब्द अनित्य है।

हेतु - उत्पत्ति धर्म वाला होने से।

(व्याप्ति - जो जो वस्तु अनुत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह नित्य होती है।)

उदाहरण - जैसे आत्मा।

उपनय - आत्मा के समान, शब्द अनुत्पत्ति धर्म वाला नहीं है, अर्थात उत्पत्ति धर्म वाला है।

निगमन - इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

पंचावयव का स्वरूप आगे विस्तार से भी बताएंगे।

8. <u>तर्क</u> - जब किसी वस्तु का स्वरूप ठीक से मालूम न हो, उस पर विचार करते-करते, किसी कारण के प्राप्त हो जाने पर ऐसा प्रतीत हो, कि "यह वस्तु ऐसी होनी चाहिए।" ऐसे विचार (ऊहा) को तर्क कहते हैं। यह विचार उस वस्तु की सच्चाई तक पहुंचने में हमारी सहायता करता है। अभी इस स्थिति में यह विचार (ऊहा) अंतिम निर्णय नहीं है। जब इस तर्क के अनुकूल प्रमाण मिल जाएगा, तब यह तर्क पूर्ण रूप से सही सिद्ध हो जाएगा। फिर जब इस तर्क को,

प्रमाण के साथ जोड़ कर वाद में प्रस्तुत किया जाएगा, तो यह उस पक्ष को और मजबूत बना देगा।

जैसे, "बहुत से लोग मोक्ष प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ कर रहे हैं। यदि संसार में ही सारे सुख मिल जाते, तो कोई व्यक्ति मोक्ष के लिए पुरुषार्थ क्यों करता? "उनको देखकर ऐसा लगता है कि वास्तव में मोक्ष कुछ है।" जिसकी प्राप्ति कर लेने से व्यक्ति दुखों से छूट जाता है, और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति करता है। ऐसी ऊहा को तर्क कहते हैं। इसी प्रकार से तर्क से अनेक परोक्ष विषयों को जानने में सहायता मिलती है। इसे भी विस्तार से आगे बताएंगे।

9. निर्णय - जब वादी प्रतिवादी किसी विषय पर बातचीत करते हैं। तब यदि वादी का पक्ष हो, कि "शब्द अनित्य है।" और प्रतिवादी का पक्ष हो, कि "शब्द नित्य है।" दोनों व्यक्ति प्रमाण और तर्क से अपने अपने पक्ष की सिद्धि करने का प्रयत्न करते हैं। परंतु यदि एक विषय में दो विरोधी बातें हों, तो दोनों तो सत्य हो नहीं सकती। इसलिए प्रमाण एवं तर्क से बाचतीत करते हुए उन दोनों में से एक पक्ष सत्य सिद्ध हो जाता है। और दूसरा पक्ष असत्य सिद्ध हो जाता है। *ऐसी स्थिति में जो पक्ष सत्य सिद्ध हो गया, वही निर्णय कहलाता है। निर्णय हो जाने पर बातचीत समाप्त हो जाती है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

(न्याय सूत्र 1/2/1 से 3 तक)

10. वाद - ईमानदारी से सत्य असत्य का निर्णय करने के लिए, जब दो व्यक्ति आपस में किसी विषय पर बातचीत करते हैं, तो उसे वाद कहते हैं। इसके नियम हैं :- सबसे पहले दोनों व्यक्ति अपने अपने पक्ष की स्थापना करेंगे, कि "मैं ऐसा मानता हूँ।" फिर प्रमाण और तर्क से अपने पक्ष की सिद्धि तथा दूसरे का खंडन करेंगे। बिना प्रमाण या बिना तर्क के दोनों में से कोई नहीं बोलेगा। अपने सिद्धांत का स्वयं खंडन नहीं करेंगे। आवश्यकता पड़ने पर अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिए पंचावयव को भी प्रस्तुत करेंगे, परन्तु यह अनिवार्य नहीं है। किसी भी प्रकार के झूठ छल चालाकी धोखाधड़ी आदि का प्रयोग नहीं करेंगे। पूरी ईमानदारी से सत्य को समझने समझाने के लिए ही बातचीत करेंगे। ऐसी शुद्ध बातचीत का नाम वाद है। (इन नियमों की जानकारी लोगों को न होने से, ऐसी बातचीत प्रायः लोगों में नहीं देखी जाती।)

11. जल्प - जब दो व्यक्ति बात करते हैं, और उनमें से एक व्यक्ति या दोनों व्यक्ति ईमानदार न हों, बेईमान हों, और वे झूठ छल कपट चालाकी धोखाधड़ी से, जैसे तैसे करके एक दूसरे को हराना चाहते हों, सत्य का विनाश करना चाहते हों, अपनी बुद्धि

को ऊंचा और दूसरे को नीचा दिखाना चाहते हों, इस प्रकार की भावना से वे बातचीत करते हों, तो ऐसी बातचीत को जल्प कहते हैं। (जानबूझकर या अनजाने में, ऐसी बातचीत प्रायः लोगों में देखी जातीहै।)

12. वितण्डा - बातचीत करने की यह पद्धति भी जल्प जैसी ही है। इसमें भी वही उद्देश्य है। छल कपट आदि के द्वारा जैसे तैसे करके स्वयं को जिताना और दूसरे को हराना। *जल्प वाले सारे नियम इस में भी लागू होते हैं। जल्प से इस में अंतर केवल इतना ही है, कि वितण्डावादी व्यक्ति अपने पक्ष की स्थापना ही नहीं करता, और विपक्षी पर ही आक्रमण करता जाता है। जबकि जल्प करने वाले व्यक्ति ने अपने पक्ष की स्थापना तो की थी। (जानबूझकर या अनजाने में, ऐसी बातचीत भी प्रायः लोगों में देखी जाती है।)

बातचीत करने की ये दोनों पद्धतियाँ (जल्प और वितण्डा) अच्छी नहीं हैं, लड़ाई झगड़े वाली हैं। इसलिए बुद्धिमान लोग इस पद्धतियों से बातचीत नहीं करते। विशेष योगाभ्यासी लोगों के लिए, उच्च स्तर के तत्त्वज्ञानी लोगों के लिए तो, महर्षि गौतम जी ने न्याय दर्शन में विशेष निर्देश किया है, कि वे लोग इन दोनों (जल्प और वितण्डा) पद्धतियों से बातचीत न करें। केवल वाद अथवा शंका समाधान ही करें।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

(न्याय सूत्र 1/2/4 से 20 तक)

13. हेत्वाभास - पंचावयव में जब किसी साध्य की सिद्धि के लिए कोई हेतु (कारण) प्रस्तुत किया जाता है, यदि उस में कुछ दोष होने के से, वह साध्य की सिद्धि करने में असमर्थ होता है, "वह हेतु जैसा प्रतीत होता है, पर वास्तव में सही हेतु नहीं होता," तो उसे हेत्वाभास कहते हैं। हेत्वाभास पांच प्रकार के होते हैं। उनके नाम ये हैं। सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरणसम, साध्यसम, और कालातीत।

जैसे, किसी ने कहा - रोटी खाने से ही भूख मिटती है। यह हेतु नहीं, हेत्वाभास है। क्योंकि भूख केवल रोटी खाने से ही नहीं मिटती, बल्कि चावल खाने से भी मिटती है। फल आदि अन्य पदार्थों के खाने से भी मिटती है। यह हेतु अनेक पक्षों में जाता है। अतः यह हेतु नियम पूर्वक एक पक्ष में स्थिर न रहने से, अनेक पक्षों में जाने से, इसको सव्यभिचार (या अनैकांतिक) नामक हेत्वाभास कहते हैं।

इन पाँच हेत्वाभासों का विस्तार से वर्णन आगे किया जाएगा।

14. छल - शब्दकोश में एक-एक शब्द के अनेक अर्थ लिखे होते हैं। इस व्यवस्था /सुविधा का लाभ लेकर, जब कोई व्यक्ति, किसी दूसरे व्यक्ति के वचन को तोड़ मरोड़ कर, अपनी मनमानी से उसका गलत अर्थ करके, उसका खंडन करता है, तो ऐसे खंडन को छल कहते

हैं। जैसे किसी ने कहा,-- *शाम के 5:30 बज गए हैं। मेरा समय हो गया है। अब मैं ऊपर जा रहा हूँ। तो दूसरे व्यक्ति ने छल का प्रयोग किया और यह कहा कि अभी तो आपकी उम्र बहुत छोटी है, अभी से ऊपर जाने की क्या जल्दी है? इसका नाम छल है। पहले वक्ता का यह अभिप्राय नहीं था, जो अभिप्राय दूसरे व्यक्ति ने अपने मन से बनाकर उसका खंडन कर दिया।

ऐसे छल का प्रयोग दिन में अनेक बार लोग करते रहते हैं, कहीं जानबूझकर किसी का अपमान करने के लिए, कहीं मनोरंजन के लिए, और कहीं अनजाने में भी। इससे भी हमें बचना चाहिए। छल तीन प्रकार का होता है। वाक्छल, सामान्य छल और उपचार छल। इनका विस्तृत वर्णन भी हम आगे करेंगे।

15. जाति - जाति शब्द के अनेक अर्थ हैं। प्रचलित अर्थ है, गोत्व अश्वत्व मनुष्यत्व आदि। वैशेषिक दर्शन की भाषा में इसे 'सामान्य' के नाम से कहते हैं। न्यायदर्शन में जाति शब्द का यह अर्थ भी है। "परंतु न्याय दर्शन के इस प्रसंग में, जाति शब्द का अर्थ है, चालाकी या धोखाधड़ी से विपक्षी का अनुचित खंडन करना।" इसका प्रयोग करके दूसरे व्यक्ति को मूर्ख बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

जब कोई व्यक्ति अपने पक्ष की सिद्धि के लिए पंचावयव का सही प्रयोग करता है। तब दूसरा व्यक्ति समझ लेता है कि "मेरे पास इसका सही उत्तर नहीं है। मेरी बात झूठ सिद्ध हो चुकी है। फिर भी इसको मूर्ख बनाने की कोशिश करता हूं, शायद मेरी चाल चल जाए।" ऐसा सोच

कर वह कुछ साधर्म्य अथवा कुछ वैधर्म्य दिखाकर चालाकी से विपक्षी का अनुचित खंडन करता है, इसे जाति कहते हैं।

उदाहरण -

1- वादी द्वारा वैधर्म्य से स्थापना-

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु अनुत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह नित्य होती है। जैसे आत्मा।

आत्मा के समान, शब्द अनुत्पत्ति धर्म वाला नहीं है, अर्थात उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

2- प्रतिवादी द्वारा, साधर्म्यसमा जाति के माध्यम से खंडन -

शब्द नित्य है। अस्पर्श वाला होने से। जो जो वस्तु अस्पर्श वाली होती है, वह वह नित्य होती है। जैसे आत्मा।

आत्मा के समान, शब्द भी अस्पर्श वाला है। इसलिए अस्पर्श वाला होने से, शब्द नित्य है।

ऐसे चालाकी से किया गया अनुचित खंडन, जाति कहलाता है।

साधर्म्यसमा, वैधर्म्यसमा, उत्कर्षसमा आदि कुल मिलाकर 24 प्रकार की जातियां होती हैं।

इनका वर्णन विस्तार से हम आगे करेंगे।

***16. निग्रहस्थान -** बातचीत में एक व्यक्ति जब अपने पक्ष की सिद्धि प्रमाण तर्क या पंचावयव आदि के माध्यम से ठीक ठीक कर देता

है। तब यदि दूसरे व्यक्ति (प्रतिवादी) को कोई उत्तर ठीक से नहीं सूझता। तो ऐसी स्थिति में, या तो वह चुप रहता है, कुछ भी उत्तर नहीं देता।

अथवा कुछ गलत सलत उत्तर देता है। (प्रस्तुत प्रसंग को बदल कर कोई अलग ही विषय आरंभ कर देता है. अथवा उस पर झूठा आरोप लगाता है, या कोई बहाना बनाकर भागने का प्रयास करता है,आदि आदि), तो ऐसी स्थिति को निग्रहस्थान कहते हैं। इसका अर्थ होता है कि उसका पक्ष झूठ सिद्ध हो गया। वह हार गया। निग्रह शब्द का शाब्दिक अर्थ है, "पकड़ा गया"। अर्थात उसका झूठ पकड़ा गया। जब झूठ पकड़ा गया, तो यह हारने की स्थिति है। इसलिए इसको निग्रहस्थान कहते हैं। यहां आकर बातचीत समाप्त हो जाती है।

उदाहरण - वादी ने जब अपनी बात को ठीक-ठीक सिद्ध कर दिया, तो प्रतिवादी ने देखा, मेरे पास बोलने के लिए, कोई ठीक से उत्तर नहीं है। वह बहाना बनाकर भागने लगा , और उसने कहा - कि "मुझे बाजार से बेसन लाना है। कढ़ी बनानी है। घर पर अतिथि आने वाले हैं। यदि मैं अभी नहीं जाऊँगा, तो दुकान बंद हो जाएगी। इसलिए मैं अभी तो जा रहा हूं, कल आकर बाकी बात करूंगा।" इसे विक्षेप नामक निग्रहस्थान कहते हैं।

अन्य उदाहरण - एक व्यक्ति ने आरोप लगाया, कि "आप बहुत क्रोध करते हैं." दूसरे व्यक्ति ने इसका उत्तर दिया कि "आप मुझसे चार गुना अधिक क्रोध करते हैं". यह उत्तर गलत है। क्योंकि ऐसा उत्तर देकर उसने पहले व्यक्ति के आरोप को परोक्ष रूप से स्वीकार कर

लिया। इसलिए यह उत्तर गलत है। गलत होने के कारण यह मतानुज्ञा नामक निग्रहस्थान कहलाता है इत्यादि। वास्तव में सही उत्तर तब होता, जब वह इस बात को सिद्ध करता, कि मैं क्रोध नहीं करता हूँ। अस्तु।

प्रतिज्ञाहानि, प्रतिज्ञान्तर, प्रतिज्ञाविरोध, मतानुज्ञा आदि कुल मिलाकर 22 प्रकार के निग्रहस्थान होते हैं। इसकी विस्तृत व्याख्या भी हम आगे करेंगे।

महर्षि गौतम जी ने इस न्याय दर्शन में 16 पदार्थों का विस्तृत वर्णन किया है। यहां विस्तार से लिखना संभव नहीं है। फिर भी संक्षेप से सबकी जानकारी के लिए हमने थोड़ा-थोड़ा परिचय दिया है। और आगे कुछ विशेष बातें भी विस्तार से बताएंगे। विशेष रूप से, बातचीत के नियम, तथा बातचीत की 54 गलतियां।

"बातचीत के नियम चार प्रकार की पद्धतियों में बताए गए हैं। इनके नाम हैं, वाद जल्प वितण्डा और शंका समाधान।" अगले भागों में अब इनकी विस्तृत चर्चा की जाएगी।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

न्याय दर्शन के अनुसार चार प्रकार की बातचीत
वाद, जल्द, वितण्डा और शंका समाधान

(न्याय सूत्र 1/2/1,2,3 तथा 4/2/48,49 में)

(सूचना - इस भाग में 2 विधियाँ बताई जा रही हैं, वाद तथा जल्प। बाकी 2 विधियाँ, वितण्डा और शंका समाधान, अगले भाग में बताई जाएँगी।)

वैदिक तर्कशास्त्र = न्यायदर्शन में महर्षि गौतम जी ने बताया है, कि इस न्यायविद्या को न पढ़ने, न समझने से व्यक्ति, बातचीत में 54 प्रकार की गलतियां करता है। जैसे गणित विद्या पढ़े बिना व्यक्ति, गणित के हिसाब में गलतियां करता है। इसी प्रकार से न्याय विद्या को पढ़े बिना व्यक्ति, चिंतन तथा बातचीत में भी बहुत सारी गलतियां करता है। जैसे गणित विद्या, बिना किसी योग्य विद्वान अध्यापक से पढ़े, समझ में नहीं आती। इसी प्रकार से न्याय विद्या भी बिना किसी योग्य विद्वान अध्यापक से पढ़े, समझ में नहीं आती।

इसलिए फेसबुक पर, व्हाट्सएप पर, या अन्य किसी भी स्थान पर आमने सामने बैठकर बातचीत करने वाले सभी लोगों से मेरा विनम्र

निवेदन है, कि महर्षि गौतमकृत न्यायदर्शन को अच्छे ढंग से किसी योग्य विद्वान् से पढ़ें, सीखें।

इस न्याय विद्या को भी, गणित आदि के समान, बहुत अच्छे ढंग से सीख कर शुद्ध बातचीत करें, तथा 54 प्रकार की गलतियों से बचें। अपना और दूसरों का मूल्यवान समय एवं शक्ति नष्ट न करें। गलतियों से बचकर शुद्ध भाषा और सत्य सिद्धांत प्रस्तुत करें। सत्य की रक्षा करके पुण्य कमाएँ। असत्य का प्रचार करके पाप के भागी न बनें। अपना और सबका कल्याण करें ।

जैसी बातचीत आप लोग आजकल करते हैं, उसमें बहुत सारी गलतियां होने के कारण, उन सब गलतियों का आपको दंड भोगना पड़ेगा। यदि बोलें, तो ठीक प्रकार से बोलें, अन्यथा मौन रहकर और अधिक सीखने का प्रयत्न करें। यह व्यवहार सभी के लिए अधिक सुरक्षित है।

मैं यहाँ, न्याय दर्शन में बताई गई, बातचीत करने की चार विधियों का संक्षेप से उल्लेख करता हूं।

न्याय दर्शन के अध्याय 1, आह्निक 2, सूत्र 1, 2, 3 में बातचीत करने की तीन विधियां बताई गई हैं। जिनके नाम हैं, "वाद, जल्प और वितंडा"। इन तीनों विधियों को शास्त्रार्थ के नाम से भी कहा जाता है। और चौथी विधि "शंका समाधान" के नाम से न्याय दर्शन के चौथे अध्याय में (न्यायसूत्र 4/2/48 एवं 49 में,) बताई गई है। (इन चारों

विधियों में से पहली और चौथी अर्थात वाद तथा शंका समाधान, ये दो विधियां अच्छी हैं। सज्जन (ईमानदार) लोग इन दो विधियों से बातचीत करते हैं। बाकी दो विधियां {दूसरी और तीसरी} अर्थात जल्प और वितंडा अच्छी नहीं हैं। सज्जन लोगों को इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। महर्षि गौतम जी ने सज्जन लोगों को जल्प और वितण्डा विधि से बातचीत करने को {न्यायसूत्र 4/2/50} में मना (निषेध) भी किया है। इस विधि से दुष्ट लोग बात करते हैं। जैसे लोहा, लोहे को काटता है। इसी प्रकार से कुछ सज्जन लोग भी, दुष्ट लोगों को रोकने के लिए, झूठ के विनाश के लिए, सत्य की रक्षा करने के लिए, कभी-कभी इन विधियों का आंशिक रूप में, प्रयोग कर लेते हैं। परन्तु वह भी दोषपूर्ण ही माना जाता है। क्योंकि इन दोनों विधियों में थोड़ा छल कपट चालाकी आदि का प्रयोग करना पड़ता है। ऊँचे तत्त्वज्ञानी एवं विशेष योगाभ्यासी लोग इन विधियों का प्रयोग नहीं करते।)

पहली विधि - वाद का स्वरूप------

प्रमाणतर्कसाधनोपालम्भः सिद्धांताविरुद्धः पञ्चावयवोपपन्नः पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वादः।।

न्यायसूत्र 1/2/1.

जब दो व्यक्ति बातचीत करते हैं, तो सबसे पहले दोनों को अपने-अपने पक्ष की स्थापना करनी होती है। इसे "पक्ष और प्रतिपक्ष की

स्थापना करना", कहते हैं। इसके बिना कोई वाद = बातचीत नहीं हो सकती।

(अगर कोई व्यक्ति अपने पक्ष की स्थापना किए बिना ही आपस में बातचीत करते हैं, तो वह नियम के विरुद्ध है। उसका कोई परिणाम ठीक से नहीं निकलेगा । व्यर्थ समय नष्ट होगा। और हो सकता है, कि उनमें झगड़ा भी हो जाए।) अपने-अपने पक्ष की स्थापना करने के बाद , फिर दोनों व्यक्ति, अपने पक्ष को प्रमाण और तर्क से सिद्ध करेंगे, तथा प्रमाण और तर्क से ही दूसरे व्यक्ति के पक्ष का खंडन करेंगे।

वाद में अगला नियम है कि, दोनों व्यक्ति अपने सिद्धांत के विरुद्ध नहीं बोलेंगे। आवश्यकता पड़ने पर पंचावयव का प्रयोग भी करेंगे। (प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन. ये पाँच अवयव कहलाते हैं।)

यदि कोई व्यक्ति, दूसरे पक्ष वाले व्यक्ति पर प्रश्न उठाएगा, तो दूसरा व्यक्ति पहले उठाए गए प्रश्न का प्रमाण या तर्क से उत्तर देगा। उसके बाद अपने पक्ष में जो अगली बात कहनी होगी, तब वह कहेगा। जब तक वह पूछे गए प्रश्न का उत्तर नहीं देता, तब तक वह अपने पक्ष में कुछ नहीं बोल सकता।

यदि पूछे गए प्रश्न का उत्तर नहीं देता, और अपने पक्ष में कुछ और ही बोलता है, तो इसका अर्थ होता है कि उसका पक्ष झूठा है। क्योंकि

वह अपने विपक्षी के आक्षेप या प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाया। यदि उसका पक्ष सत्य होता, तो पहले वह पूछे गए प्रश्न का उत्तर देता, उसके बाद वह अपने पक्ष में कुछ अगली बात कहता। परंतु वह उत्तर नहीं दे पाया, अथवा प्रसंग को छोड़ कर कोई और ही बात कहने लगा, इसका अर्थ है उसके पास सही उत्तर नहीं है। "इस कारण से उसका पक्ष असिद्ध हो गया," ऐसा माना जाएगा, और वाद वहीं समाप्त हो जाएगा। इस स्थिति =("ठीक उत्तर न देना, या चुप रहना" आदि) को न्याय दर्शन की भाषा में "निग्रहस्थान" कहते हैं। उन 54 प्रकार की गलतियों में से 22 गलतियाँ तो इस प्रकार के निग्रहस्थान ही हैं।

(इस वाद का मुख्य उद्देश्य है सत्य असत्य का निर्णय करना। इसलिए इसमें झूठ छल कपट धोखा चालाकी आदि का प्रयोग जानबूझकर तो बिल्कुल नहीं किया जाता। यदि कोई व्यक्ति भूल से ऐसी गलतियां करे, तो दूसरा व्यक्ति उसे सावधान कर देगा। तब पहला व्यक्ति उस गलती को छोड़कर अपनी ओर से, जो कुछ अगली बात कहनी होगी, उसे कहेगा। यह शुद्ध बातचीत है। सज्जन लोग इस ढंग से बातचीत करते हैं। इसे वाद कहते हैं। न्याय दर्शन में विशेष योगाभ्यासियों के लिए दो प्रकार की ही बातचीत करने का विधान है। वाद और शंका समाधान। जल्प और वितण्डा करना, उनके लिए न्यायदर्शन में मना = निषिद्ध है।)

#########

दूसरी विधि -- जल्प का स्वरूप------

यथोक्तोपपन्नः छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो
जल्पः ।। न्याय दर्शन, 1/2/2.

अर्थात जितने नियम वाद में थे, वे सारे नियम जल्प में भी लागू होंगे। वे नियम ऊपर वाद के लक्षण में लिखे हैं। उसके अतिरिक्त जल्प विधि का प्रयोग करने वाले लोग छल, जाति और निग्रहस्थान का सहारा लेते हुए, झूठ छल कपट चालाकी से अपने पक्ष को जैसे-तैसे सिद्ध करते हैं, और दूसरे व्यक्ति के पक्ष का अनुचित रूप से खंडन करते हैं। इस प्रकार की बातचीत का नाम जल्प है। ("छल" का अर्थ है, वक्ता के अभिप्राय को तोड़ मरोड़ कर गलत ढंग से उसका खंडन करना। "जाति" का अर्थ है, चालाकी या धोखाधड़ी करना। और "निग्रहस्थान" का अर्थ है, गलत उत्तर देना, प्रसंग बदल देना, या कुछ भी उतर नहीं देना, चुपचाप बैठे रहना। आगे चलकर इनकी व्याख्या विस्तार से करेंगे।)

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

न्याय दर्शन के अनुसार चार प्रकार की बातचीत वाद, जल्द, वितण्डा और शंका समाधान

(न्याय सूत्र 1/2/3 तथा 4/2/48,49 में)

तीसरी विधि -- वितंडा का स्वरूप -----

स प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा ।। न्यायसूत्र 1/2/3.

अर्थात जितने नियम जल्प में बताए थे, वे सारे नियम यहां वितण्डा में लागू होंगे। जल्प तथा वितण्डा में अंतर इतना ही होगा, कि जो वितण्डा करने वाला व्यक्ति है, वह अपने पक्ष की स्थापना नहीं करेगा। अपने पक्ष की स्थापना किए बिना ही, दूसरे व्यक्ति के पक्ष पर आक्रमण करता जाएगा। और जैसे तैसे झूठ छल कपट चालाकी धोखाधड़ी बेईमानी आदि से दूसरे व्यक्ति को हराने का प्रयास करेगा, और स्वयं को जिताने का प्रयास करेगा। इस विधि को वितण्डा नाम से कहा जाता है।

(जल्प और वितण्डा, ये दोनों प्रकार की बातचीत अच्छी नहीं है। दुष्ट बेईमान स्वार्थी धोखेबाज और अज्ञानी लोग इस तरह की बातचीत करते हैं। उनका उद्देश्य सत्य असत्य का निर्णय करना नहीं होता, बल्कि "दूसरे व्यक्ति को छल कपट चालाकी आदि से जैसे तैसे हराना और अपनी बात को जिताना", यह उनका लक्ष्य होता है। संसार में ऐसी

खराब मनोवृत्ति वाले लोग करोड़ों की संख्या में देखे जाते हैं, जो इस तरह से बातचीत करते हैं।

उनमें से कुछ लोग अज्ञानतावश भी ऐसे गलत तरीके से बातचीत करते हैं। यद्यपि उनका उद्देश्य धोखा देना या दूसरे को हराकर अपने आपको उत्तम सिद्ध करना नहीं होता। फिर भी शुद्ध बातचीत {वाद} के नियमों की ठीक जानकारी न होने के कारण , वे अज्ञानता से भी इन दोनों विधियों का प्रयोग कर जाते हैं। ऊँचे तत्त्वज्ञानियों तथा विशेष योगाभ्यासियों के लिए इन दोनों विधियों से बातचीत करने का न्याय दर्शन में निषेध किया है।)

##########

चौथी विधि -- शंका समाधान -----

न्याय दर्शन के सूत्र 4/2/48 एवं 49 में बताया है, कि यदि किसी विषय में, गुरु शिष्य का वाद या संवाद चल रहा हो। गुरु और शिष्य के ज्ञान विज्ञान के स्तर में अंतर होने के कारण, गुरुजी यदि शिष्य से कहें , कि आपको अभी मेरी बात समझ में नहीं आ रही, इसलिए आप इस समय वाद न करें, = अपना पक्ष स्थापित न करें, बल्कि अपने ज्ञान को शुद्ध करने के लिए केवल *शंका समाधान करें।* तब शिष्य को वाद नहीं करना चाहिए, बल्कि शंका समाधान करना चाहिए। बातचीत करने की, यह चौथी विधि है।

शंका समाधान का नियम है कि - शिष्य शंका करेगा, अर्थात नम्रतापूर्वक जिज्ञासा भाव से प्रश्न पूछेगा, अपने पक्ष की स्थापना नहीं

करेगा। और गुरु जी उसका उत्तर देते जाएंगे। उसकी शंकाओं का समाधान करते जाएंगे।

इस विधि में प्रश्न पूछने वाला शिष्य, अपने पक्ष की स्थापना नहीं कर सकता, कि "मैं ऐसा मानता हूँ।"। और समाधान कर्ता गुरुजी का उत्तर सुनने के बाद, यह भी नहीं कह सकता, कि आपका उत्तर गलत है। या आपका पक्ष गलत है। या मैं आपकी बात को नहीं मानता। वह केवल प्रश्न पछेगा, तथा शांति से उत्तर को सुनेगा, और स्वीकार करेगा। अपना प्रश्न या शंका भी बड़ी नम्रता एवं जिज्ञासा भाव से पूछेगा।

शिष्य की भाषा इस प्रकार से होगी, कि हे गुरु जी! मैं इस विषय में कुछ समझना चाहता हूं। ....मैं ठीक प्रकार से समझ नहीं पाया। .... कृपया मुझे समझा दीजिये। .... आप मुझ पर कृपा करके, इस विषय में मेरा ज्ञान शुद्ध कर दीजिये, मेरा मार्ग दर्शन कर दीजिए। फिर गुरु जी, शिष्य की शंका का समाधान कर देंगे।

यदि फिर भी शंका रह जाए, तो वह शिष्य ऐसे ही नम्रतापूर्वक अगली शंका पूछेगा। तब गुरु जी अगली शंका का समाधान कर देंगे। शिष्य, ऐसे शंकाओं का समाधान सुनता जाएगा। बाद में एकांत में बैठकर, उस पर चिंतन करेगा। धीरे धीरे निष्पक्ष भाव से विचार चिंतन करने पर उसे सत्य समझ में आ जाएगा। ये शंका समाधान के नियम हैं।

#############

भाग 10

अब आप सबसे मेरा पुनः विनम्र निवेदन है कि आप लोग, जब भी आपस में किसी विषय पर बातचीत करें, तो ईमानदारी से, इन 4 में से 2 ही प्रकार से बातचीत करें। या तो वाद करें, या फिर शंका समाधान करें। जल्प एवं वितण्डा से बचना ही सबके लिए हितकारी है।

बातचीत करने वाले यदि दोनों व्यक्ति ईमानदार हों, पढ़े-लिखे विद्वान हों, लगभग बराबर की योग्यता के हों, तो वे वाद कर सकते हैं। जब वे दोनों वाद करते हैं, तो कभी-कभी योग्यता और सत्यग्राहिता में कुछ कमी होने से, या कभी सामयिक उद्वेग या अपने पक्ष का आग्रह अधिक हो जाने से, वे दो व्यक्ति सत्य असत्य का निर्णय ठीक प्रकार से नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में किसी तीसरे विद्वान् को, जो न्याय विद्या में विशेष पारंगत हो, उसे न्यायाधीश बनाकर वाद करना चाहिए। न्यायाधीशों की संख्या परिस्थिति एवं आवश्यकता के अनुसार 1/3/5/7 भी हो सकती है। जैसे उच्च तथा सर्वोच्च न्यायालय आदि में होती है। जितने भी विद्वान न्यायाधीश होंगे, वे इस न्याय विद्या में पारंगत (कुशल = Expert) होने चाहिएँ । दोनों पक्षों (वादी प्रतिवादी) को उन पर विश्वास होना चाहिए। और वे दोनों पक्षों की बात सुनकर , समझकर, निष्पक्षता से ठीक न्याय कर देवें। (यदि कभी जल्प और वितण्डा करने की स्थिति आ भी जाए, तो उस स्थिति में तो न्यायाधीश होने अनिवार्य ही हैं। अन्यथा समय नष्ट होगा। कोई ठीक से निर्णय नहीं हो पाएगा। और झगड़ा तथा मारपीट तक होने की भी पूरी संभावना है।)

भाग 10

यदि बातचीत करने वाले, वे दो व्यक्ति समान योग्यता एवं स्तर के न हों। एक व्यक्ति विद्या में बड़ा हो और दूसरा छोटा हो। तब वे वाद न करें, बल्कि शंका समाधान के ढंग से बातचीत करें, तो विशेष लाभ होगा।

इस प्रकार से आप सत्य असत्य को जानकर अपनी और दूसरों की बहुत ही उन्नति कर सकते हैं। उत्तम आचरण कर सकते हैं, और सुखी हो सकते हैं। गलतियों से तथा ईश्वर के दंड से भी बच सकते हैं।

अब इस श्रृंखला के अगले भागों में, प्रमाण तर्क आदि उन पदार्थों के विषय में विस्तार से बताया जाएगा, जिन का उल्लेख वाद जल्प वितण्डा एवं शंका समाधान, इन चार प्रकार की बातचीत के नियमों में किया गया था। और इसी प्रसंग में वे सारी 54 गलतियां भी क्रमशः बताई/समझाई जाएंगी।

- **स्वामी विवेकानंद परिव्राजक**
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

(न्याय सूत्र 1/1/4 में)

वाद जल्प वितण्डा आदि के जितने भी नियम हैं, अब हम उन की व्याख्या आरंभ करते हैं। शुद्ध बातचीत (वाद) के नियमों में बताया गया था, कि प्रमाण और तर्क के माध्यम से अपने पक्ष की सिद्धि तथा दूसरे पक्ष का खंडन करना चाहिए। सबसे पहले प्रमाणों की व्याख्या की जाएगी।

प्रत्यक्ष आदि 8 प्रमाणों का स्वरूप -

वाद के लक्षण में "प्रमाण" शब्द से "8 प्रमाण," यह अर्थ समझना चाहिए। उन 8 प्रमाणों के नाम इस प्रकार से हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, इतिहास, अर्थापत्ति, संभव और अभाव। न्याय दर्शन के आधार पर, हम क्रम से इन 8 प्रमाणों का स्वरूप प्रस्तुत करेंगे। सबसे पहले प्रत्यक्ष प्रमाण।

1- प्रत्यक्ष प्रमाण का स्वरूप --

न्याय दर्शन में सूत्र 1/1/4 में प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण बताया गया है। इस सूत्र की व्याख्या को समझने से हम यह जान पाएंगे, कि प्रत्यक्ष प्रमाण क्या होता है, और यह कैसे काम करता है।

बहुत से लोग ऐसा मानते हैं, कि मैं अमुक वस्तु को प्रत्यक्ष जानता हूं।

भाग 11

परंतु वे लोग प्रत्यक्ष को ठीक प्रकार से नहीं समझते, और भ्रांति अथवा संशय में होने पर भी स्वयं को सही मानते हैं। इसलिए मैं इस सूत्र की यहां पर विस्तृत व्याख्या करना चाहता हूं, जिससे कि लोग इस विषय को ठीक प्रकार से समझकर इससे लाभ उठा सकें। स्वयं भ्रांति में न रहें, और गलत प्रचार भी न करें।

प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण --

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्।। न्याय दर्शन, सूत्र 1/1/4.

अर्थात नेत्र आदि इंद्रियों का, फूल आदि किन्हीं पदार्थों के साथ सीधा संबंध होने से, जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं. उदाहरण के लिए -- एक व्यक्ति ने अपनी आंख से फूल को देखा। इस उदाहरण में आंख इंद्रिय है। और फूल अर्थ (पदार्थ) है। दोनों के अर्थात् आंख और फूल के संबंध से जो ज्ञान उत्पन्न हुआ, कि "सामने एक लाल रंग का फूल रखा है," इस ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

इस सूत्र में जो इंद्रिय शब्द है, इससे छह इंद्रियाँ समझनी चाहियें। आंख, नाक, कान, रसना और त्वचा, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। और एक आंतरिक इंद्रिय = मन। इन पाँच इंद्रियों के अपने-अपने विषय हैं- रूप गंध शब्द रस और स्पर्श। तथा मन इंद्रिय का विषय है, सुख दुख, आत्मा परमात्मा आदि। इनके परस्पर संबंध से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, इस ज्ञान को

प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। (आँख आदि इंद्रियों से जिन फूल आदि वस्तुओं का प्रत्यक्ष होता है, उसे "बाह्य प्रत्यक्ष" कहते हैं। तथा मन इंद्रिय से जिन सुख दुख आत्मा परमात्मा आदि का प्रत्यक्ष होता है, उसे आंतरिक प्रत्यक्ष कहते हैं।)

परंतु सूत्र में आगे तीन शर्तें और भी लिखी हैं। 1- वह ज्ञान शाब्दिक न हो, 2- भ्रांतिरूप ज्ञान न हो, और 3- संशयरूप ज्ञान भी न हो। अर्थात अपनी इंद्रिय और पदार्थ के साक्षात संबंध से प्राप्त किया हुआ ज्ञान हो, सत्य ज्ञान हो, तथा निश्चयात्मक ज्ञान हो; तभी इंद्रियों से उत्पन्न हुआ हुआ वह ज्ञान, प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है, अन्यथा नहीं।

इस सूत्र में प्रत्यक्षम् ज्ञानम्, शब्द के 3 विशेषण हैं।

पहला - अव्यपदेश्यम्।

दूसरा - अव्यभिचारी।

और तीसरा - व्यवसायात्मकम्।

इनको विस्तार से अच्छी प्रकार से समझने की आवश्यकता है।

सूत्र के ज्ञानम् शब्द का पहला विशेषण है - अव्यपदेश्यम्।

इसका अर्थ होता है जो वस्तु जिस इंद्रिय का विषय है, उस वस्तु का ज्ञान उसी इंद्रिय से होना चाहिए। यदि वस्तु है आंख इंद्रिय का विषय। और उसका ज्ञान प्राप्त हो रहा है, हमें कान इंद्रिय से। तो यह ज्ञान, दूसरे व्यक्ति के शब्दों के माध्यम से प्राप्त होने के कारण, व्यपदेश्य ज्ञान है। अर्थात् शाब्दिक

ज्ञान है। इसको "अव्यपदेश्यम् ज्ञानम्" नहीं कहेंगे। इसलिये इसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। इसे और अच्छी तरह से समझने का प्रयास करते हैं।

व्यपदेश्यम् शब्द का अर्थ होता है, दूसरे व्यक्ति के शब्दों द्वारा हमें प्राप्त हुआ ज्ञान. इसे शाब्दिक ज्ञान भी कहते हैं। यह ज्ञान यद्यपि कान इन्द्रिय से ही प्राप्त हुआ है, फिर भी यह शाब्दिक होने से, अव्यपदेश्यम् नहीं है। इसलिए प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है।और यहां सूत्र में कहा गया है, अव्यपदेश्यम्। वह जो ज्ञान हमें प्राप्त हो रहा है, वह दूसरे व्यक्ति के शब्दों से उत्पन्न, शाब्दिक ज्ञान नहीं होना चाहिए। बल्कि अपनी आँख आदि इंद्रिय से उत्पन्न होना चाहिये। तभी वह प्रत्यक्ष प्रमाण माना जाएगा।

उदाहरण-- मान लीजिए , मैंने कलकत्ता में एक संग्रहालय देखा। मैंने अपनी आंखों से देखा। और दिल्ली आकर आपको बताया कि "मैंने कलकत्ता में एक संग्रहालय देखा।" आपको भी ज्ञान हो गया , कि "कलकत्ता में एक संग्रहालय है, और मैंने उसे देखा भी है।" आपका यह ज्ञान शाब्दिक ज्ञान है। क्योंकि मेरे शब्दों को सुनकर आपको यह ज्ञान हुआ। संग्रहालय का ज्ञान, आपको अपनी आँखों से देखने से नहीं हुआ। इसलिए यह अव्यपदेश्यम् ज्ञान नहीं है। इस कारण से यह प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं माना जाएगा।

जब आप कलकत्ता जाकर अपनी आंखों से उस संग्रहालय को देखेंगे, तब वह आपका ज्ञान अव्यपदेश्यम् ज्ञान होगा, अर्थात् जो आँखों से देखने की

वस्तु है, उसका ज्ञान आपको अपनी आंखों से ही प्राप्त होगा, वही आपका प्रत्यक्ष कहलाएगा। उसी का नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी प्रकार से सभी इंद्रियों के विषय में समझ लेना चाहिए। यदि किसी फूल की गन्ध का ज्ञान आपको आपकी नासिका से हुआ, तब तो वह अव्यपदेश्यम् ज्ञान होगा, तथा प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाएगा। यदि आपको फूल की गन्ध का ज्ञान, किसी दूसरे व्यक्ति के शब्दों से हुआ, तो वह शाब्दिक ज्ञान होगा, तथा प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं कहलाएगा।

"अव्यपदेश्यम्" शब्द का दूसरा अर्थ यह भी है, कि वह ज्ञान सीधा रसना चक्षु आदि इंद्रियों से प्राप्त होगा, उसमें शब्द की कोई आवश्यकता नहीं है, बिना शब्द के ही ज्ञान होगा। जैसे दो मास के छोटे बच्चे को थोड़ा सा शहद चटा दिया जाए, तो उसे, उसकी रसना इंद्रिय से जो शहद का ज्ञान होगा, वह प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाएगा, जबकि उसे शहद के विषय में एक शब्द भी नहीं सुनाया गया है, और न ही वह शब्दों को उस समय समझ सकता है। फिर भी वह उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

सूत्र के ज्ञानम् शब्द का दूसरा विशेषण है - अव्यभिचारी।

व्यभिचारी ज्ञान का अर्थ है, जो ज्ञान बदल जाए। और अव्यभिचारी ज्ञान का अर्थ होगा जो ज्ञान बदले नहीं। अर्थात् भ्रांति न हो, सत्य ज्ञान हो। यहां सूत्र में कहा है , कि जो ज्ञान इंद्रियों से प्राप्त हो रहा है, वह अव्यभिचारी (न बदलने वाला) होना चाहिए, तभी वह प्रत्यक्ष प्रमाण माना जाएगा।

भाग 11

बदलने वाला ज्ञान कैसा होता है? **उदाहरण** - एक व्यक्ति ने कुछ हल्के प्रकाश में देखा, उसे साँप दिखाई दिया। फिर उसने लाइट जलाई, और तेज प्रकाश में दोबारा देखा , तो उसे वही वस्तु (जो पहले साँप दिख रहा था) रस्सी के रूप में दिखाई दी। पहली बार साँप दिखाई दिया, दूसरी बार रस्सी दिखाई थी। तो पहली बार वाला ज्ञान, दूसरी बार में बदल गया। यह जो ज्ञान बदल जाता है, इसका नाम है भ्रांति। ज्ञान बदलना नहीं चाहिए। अर्थात् भ्रांति नहीं होनी चाहिए। आंख से देखने पर भी भ्रांति हो सकती है। जैसे, रस्सी को आँख से देखकर भी साँप होने की भ्रांति हो गई। अतः सूत्र में कहा है, यदि आंखों से देखने पर भी भ्रांति हो रही है, तो वह व्यभिचारी ज्ञान है , इसको प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं माना जाएगा। आंखों से देखने पर भी, वह भ्रांति रहित सत्य ज्ञान होना चाहिए, वही अव्यभिचारी ज्ञान है, वही प्रत्यक्ष प्रमाण है।

और सूत्र के ज्ञानम् शब्द का तीसरा विशेषण है - व्यवसायात्मकम्।

व्यवसाय शब्द का अर्थ होता है निश्चय। जो ज्ञान हमें इंद्रियों से प्राप्त हो रहा है, वह निश्चयात्मक होना चाहिए, संशयात्मक नहीं। तभी वह प्रत्यक्ष प्रमाण माना जाएगा । यदि आंखों से देखने पर भी संशय हो रहा है, तथा निश्चय नहीं हो पा रहा कि, यह क्या वस्तु है? ऐसी स्थिति में वह संशयात्मक ज्ञान, प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं माना जाएगा।

उदाहरण - जैसे एक व्यक्ति ने कम प्रकाश में देखा। उसे संशय हो गया कि "यह वस्तु रस्सी है या सांप है?" बार-बार देखकर भी वह निश्चय नहीं कर

भाग 11

पाया, कि यह रस्सी है या सांप है? इस प्रकार के संशयात्मक ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं कहेंगे । फिर उसने लाइट जलाकर अधिक प्रकाश में अच्छी तरह ध्यान से देखा, अब उसे निश्चय हो गया कि "यह रस्सी ही है, सांप नहीं है।" इस प्रकार के निश्चयात्मक ज्ञान को व्यवसायात्मकम् ज्ञान कहेंगे । इस का नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है।

सारी बात का सार यह हुआ, कि -- इंद्रियों से पदार्थों का जो ज्ञान हम प्राप्त करते हैं, वह ज्ञान शाब्दिक न हो, उसमें भ्रांति न हो, और उसमें संशय भी न हो। अर्थात अपनी इंद्रियों से ही साक्षात रूप से प्राप्त किया गया ज्ञान हो, सत्य ज्ञान हो और निश्चयात्मक ज्ञान हो। ऐसे शुद्ध ज्ञान का नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है।

(**नोट** -- भ्रांति और संशय में अंतर यह है, कि *भ्रांति में व्यक्ति वस्तु का निर्णय तो कर लेता है, कि यह साँप है। परंतु उसका निर्णय गलत होता है। वह रस्सी को साँप मान लेता है, इसे भ्रांति कहते हैं। और संशय का अर्थ है, कि उसके मन में दो विचार चलते रहते हैं कि "यह रस्सी है या साँप है?" वह निर्णय कुछ भी नहीं कर पाता। इस स्थिति का नाम संशय है।)

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

2- अनुमान प्रमाण का स्वरूप -

जैसा कि इस प्रमाण का नाम है - अनुमान प्रमाण। इसका सीधा सा अर्थ है, अनु अर्थात पश्चात्। मान अर्थात ज्ञान। जो ज्ञान, प्रत्यक्ष के पश्चात होता है, उसे अनुमान प्रमाण कहते हैं। अर्थात जब भी अनुमान लगाया जाएगा, तो उससे पहले कुछ प्रत्यक्ष अवश्य होना चाहिए, जिसके आधार पर किसी परोक्ष वस्तु का अनुमान लगाया जाएगा।

इसका लक्षण निम्नलिखित है।

*अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतो दृष्टं च।। न्याय सूत्र 1/1/5.

किन्हीं दो पदार्थों को अनेक बार, अनेक स्थानों पर, साथ साथ देखने से उनके संबंध का ज्ञान होता है। और जब किसी परिस्थिति में उन दो में से एक वस्तु को प्रत्यक्ष देखकर, दूसरी परोक्ष वस्तु को बिना देखे जान लिया जाता है, तो इसको अनुमान प्रमाण कहते हैं। जैसे धुएं और अग्नि को हमने रसोई फैक्ट्री कारखाने रेलगाड़ी आदि में 15 / 20 बार साथ-साथ देखा, तो पता चल गया, कि धुएँ और अग्नि का संबंध है। अब 21 वीं बार जब कहीं जंगल आदि स्थान पर धुआँ देखेंगे, तो अग्नि को बिना देखे ही, पूर्व देखे हुए की स्मृति से अग्नि

का ज्ञान हो जाएगा, कि "जैसे पहले 20 बार धुएँ के साथ अग्नि थी, तो इस बार भी धुएँ के साथ अग्नि अवश्य ही है।" इसको अनुमान प्रमाण कहते हैं। अनुमान प्रमाण में जिसको (=धुएँ को) हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं, वह लिंग; और जिसको (=अग्नि को) बिना देखे जान रहे हैं, वह लिंगी कहलाता है। इस लिंगी को अनुमेय पदार्थ भी कहते हैं। इस उदाहरण में धुआं लिंग है, और अग्नि लिंगी अथवा अनुमेय है।

यह अनुमान प्रमाण तीन प्रकार का है। पूर्ववत्, शेषवत्, और सामान्यतो दृष्ट।

1- पूर्ववत् अनुमान -- पूर्व का अर्थ है, जो पदार्थ पहले हो। पहले होता है कारण पदार्थ, जैसे बादल। शेष का अर्थ है, जो बाद में हो। बाद में होता है, कार्य पदार्थ, जैसे वर्षा। जहां कारण पदार्थ को देखकर, कार्य पदार्थ का अनुमान किया जाए, उसे पूर्ववत् अनुमान कहेंगे। जैसे (कारण) बादलों को देखकर, (कार्य) वर्षा के होने का अनुमान किया जाता है। यह पूर्ववत् अनुमान है। जैसे माता जी ने आटा गूंथ कर तैयार कर दिया। तो (कारण) गूंथे हुए आटे को देखकर (कार्य) रोटियां बनाने का अनुमान किया जाता है। यह पूर्ववत् अनुमान है।

2- शेषवत् अनुमान -- जहां-जहां कार्य पदार्थ को देखकर, उसके कारण पदार्थ (उपादान कारण) का अनुमान किया जाता है, वह शेषवत् अनुमान है। जैसे (कार्य) सूती वस्त्र को देखकर उसके (उपादान कारण द्रव्य)

सूती धागों का अनुमान किया जाता है।

इसी प्रकार से (कार्य) गेहूँ की रोटी को देखकर उसके (उपादान कारण द्रव्य) गेहूँ के आटे का अनुमान किया जाता है, इसे भी शेषवत् अनुमान कहेंगे।

3- सामान्यतो दृष्ट अनुमान -- जहाँ किसी "सामान्य नियम" के आधार पर किसी परोक्ष वस्तु को जाना जावे, उसे सामान्यतो दृष्ट अनुमान कहते हैं। उदाहरण -- एक व्यक्ति ने देखा, घड़ा अपने आप नहीं बन रहा, बल्कि कुम्हार घड़े को व्यवस्थित ढंग से बना रहा है। फिर देखा, हथियार अपने आप नहीं बन रहे, बल्कि लुहार लोहे के हथियार व्यवस्थित ढंग से बना रहा है। इसी प्रकार से दर्जी को व्यवस्थित ढंग से कपड़े सिलते देखा। हलवाई को व्यवस्थित ढंग से मिठाई बनाते देखा। सुनार को व्यवस्थित ढंग से आभूषण बनाते देखा। ऐसे 10 / 15 जगहों पर उसने एक सामान्य नियम देखा, कि "जो भी वस्तु व्यवस्थित ढंग से बन रही है, वह अपने आप नहीं बन रही। उसे कोई न कोई निर्माता बना रहा है।"

फिर उसने एक अन्य अवसर पर, इस नियम के आधार पर एक और वस्तु को अनुमान से बिना देखे जान लिया। जैसे व्यवस्थित ढंग से बनी हुई सृष्टि को देखकर इसके निर्माता का ज्ञान कर लिया, कि "इस सृष्टि का भी कोई न कोई निर्माता अवश्य ही है, जिसने इस विशाल सृष्टि को व्यवस्थित रूप से बनाया है।" अब जिस वस्तु (= जगत् के निर्माता) को बिना देखे, उसने

भाग 12

सामान्य नियम के आधार पर जान लिया, इसको सामान्यतो दृष्ट अनुमान कहेंगे। क्योंकि इस वस्तु का ज्ञान उसे उक्त सामान्य नियम के आधार पर हुआ है।

(विशेष सूचना 1- पहले के दो अनुमानों (पूर्ववत् और शेषवत्) में जो पदार्थ लिंग और लिंगी थे, वे दोनों अनुमाता ने पहले देख रखे थे। जैसे बादल वर्षा, आटा रोटी, लकड़ी कुर्सी आदि। परंतु इस तीसरे सामान्यतो दृष्ट अनुमान में, अनुमेय या लिंगी पदार्थ = जगन्निर्माता को अनुमाता ने पहले कभी नहीं देखा, फिर भी जान लिया। इस तीसरे अनुमान में, पूर्वोक्त दो अनुमानों से यह विशेष अन्तर है।)

(विशेष सूचना 2- शेषवत् अनुमान में कार्य पदार्थ को देखकर "उपादान कारण" पदार्थ का अनुमान किया जाता है। जैसे रोटी को देखकर आटे का। परंतु सामान्यतो दृष्ट अनुमान में कार्य पदार्थ को देखकर "निमित्त कारण" पदार्थ का अनुमान किया जाता है। जैसे रोटी कार्य को देखकर उसके निमित्त कारण {= रोटी को बनाने वाले पाचक} का।)

(विशेष सूचना 3- शेषवत् अनुमान में कार्य पदार्थ को देखकर एक निश्चित पदार्थ का अनुमान किया जाता है। जैसे रोटी को देखकर आटे आदि का। परंतु सामान्यतो दृष्ट अनुमान में कार्य पदार्थ को देखकर उसके बनाने वाले का सामान्य ज्ञान होता है। जैसे

रोटी कार्य को देखकर, रोटी को बनाने वाला "कोई न कोई पाचक है अवश्य ही" । यहाँ यह पता नहीं चलता कि वह पाचक कौन है? उस पाचक का ज्ञान शब्द प्रमाण से होता है। अथवा कहीं पर पाचकों की निश्चित संख्या मालूम हो, तो परिशेष न्याय से भी पता चल सकता है। परिशेष न्याय का अर्थ है, बचे हुए पदार्थ का नियम। जैसे कि 3 पाचक थे। उनमें से दो से पूछ लिया, कि क्या ये रोटियाँ आपने बनाई हैं? उन दोनों ने मना कर दिया, हमने नहीं बनाई। तो जो तीसरा पाचक बच गया, उससे बिना पूछे हम अनुमान लगा लेंगे, कि इस तीसरे पाचक ने ये सब रोटियां बनाई हैं।)

##############

3- उपमान प्रमाण का स्वरूप --

(न्याय सूत्र 1/1/6 में)

*प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम्।। न्यायसूत्र 1/1/6.

अर्थात किसी प्रसिद्ध वस्तु की उपमा (उदाहरण) देकर किसी दूसरी वस्तु (साध्य) को समझाना, उपमान प्रमाण कहलाता है।

उदाहरण -- "जैसी गाय होती है, वैसी ही (उससे काफी कुछ मिलती जुलती) नीलगाय होती है।" यहाँ गाय प्रसिद्ध वस्तु है, जिसे प्रायः सब लोग जानते हैं। उसका उदाहरण या उपमा

भाग 12

देकर, साध्य = नीलगाय को समझा दिया।

यहाँ पर यह बात ध्यान रखने की है, कि "संसार में कोई भी उदाहरण 100% साध्य के समान नहीं होता, कुछ ही अंश में उदाहरण, साध्य के समान होता है।"

जैसे गाय भी 100% नीलगाय के समान नहीं है। फिर भी घोड़े और हाथी की अपेक्षा, नीलगाय, गाय से अधिक मिलती जुलती है। यहाँ गाय और नीलगाय के आकार प्रकार की समानता है। इस आधार पर गाय का उदाहरण दिया जाता है।

इसी प्रकार से एक और उदाहरण --

"जैसी कोयल की आवाज़ मीठी होती है, वैसी ही लता मंगेशकर जी की आवाज़ भी मीठी होती है।"

यहाँ पर "कोयल की आवाज़" का उदाहरण है, जो कि प्रसिद्ध है। और "लता जी की आवाज़" साध्य है। ये दोनों भी 100% एक समान नहीं हैं। फिर भी यह उपमान प्रमाण प्रसिद्ध है। उदाहरण कुछ ही अंश में साध्य के समान होता है। "यहाँ आवाज़ की समानता है।"

###############

4- शब्द प्रमाण का स्वरूप --

(न्याय सूत्र 1/1/7 में)

आप्तोपदेशः शब्दः ।। न्याय सूत्र 1/1/7.

भाग 12

अर्थात किसी आप्त व्यक्ति का वचन या उपदेश, शब्द प्रमाण कहलाता है। आप्त व्यक्ति में तीन लक्षण होते हैं।

1- वह किसी वस्तु के विषय में ठीक ठीक जानता हो = सत्य ज्ञानी हो।

2- परोपकारी स्वभाव का हो।

3- सत्यवादी हो।

ऐसा व्यक्ति आप्त कहलाता है। उसका वचन "शब्द प्रमाण" है। जैसे ईश्वर में ये तीनों लक्षण विद्यमान होने से, ईश्वर आप्त है। ईश्वर का वचन या उपदेश चार वेद, "शब्द प्रमाण" है। इसी प्रकार से ऋषि लोग भी आप्त हैं। उनके वचन उपदेश - दर्शन, उपनिषद आदि शास्त्र भी शब्द प्रमाण हैं।

ऐसे ही सांसारिक लोगों में भी कुछ लोग अपने सीमित विषय में आप्त कहलाते हैं। जैसे डॉक्टर इंजीनियर हलवाई दर्जी आदि। उनके सत्य वचन भी अपने अपने क्षेत्र में शब्द प्रमाण माने जाएंगे।

शब्द प्रमाण दो प्रकार का होता है। (न्याय सूत्र 1/1/8 में) --

एक - दृष्टार्थ। इसका अर्थ (अर्थात फल, या जो बात शब्द प्रमाण द्वारा कही गई है), इसी जन्म में दिखाई देता है। जैसे, किसी वैद्य ने कहा, व्यायाम करने, सात्विक भोजन दिनचर्या आदि उत्तम होने से स्वास्थ्य अच्छा बन जाता है। यदि कोई व्यक्ति इन

वचनों को आचरण में आए, तो उसे इसी जन्म में स्वास्थ्य प्राप्ति हो जाती है। अतः यह "दृष्टार्थ शब्द प्रमाण" है। यह शब्द प्रमाण लौकिक व्यक्तियों का वचन होता है, जो इस जन्म की बातें ही जानते हैं।

दूसरा - अदृष्टार्थ। इसका अर्थ (अर्थात फल, या जो बात शब्द प्रमाण द्वारा कही गई है), इस जन्म के बाद =अगले जन्म में, या मोक्ष में दिखाई देगा, इस जन्म में नहीं। जैसे, "जिसे स्वर्ग (अच्छे परिवार में पुनर्जन्म प्राप्त करने) की कामना हो, वह प्रतिदिन यज्ञ करे।" और "जिसे मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा हो, वह योगाभ्यास करके समाधि लगाए।"

यह अदृष्टार्थ शब्द प्रमाण, ईश्वर और ऋषियों का वचन होता है। क्योंकि ईश्वर और ऋषि लोग, इस जन्म, अगले जन्म और मोक्ष की बातें जानते हैं। अतः ईश्वर तथा ऋषियों के वचन दृष्टार्थ एवं अदृष्टार्थ, दोनों प्रकार के होते हैं। जबकि डॉक्टर इंजीनियर हलवाई दर्जी आदि सामान्य आप्तों के वचन, केवल दृष्टार्थ होते हैं।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 2/2/1 तथा 2 में)

न्याय दर्शन में मुख्य प्रमाण चार हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। इनकी चर्चा हम कर चुके हैं। इसके बाद (न्याय सूत्र 2/2/1 तथा 2/2/2 में) चार प्रमाण और भी बताए गए हैं। यद्यपि इनका अन्तर्भाव पूर्वोक्त प्रत्यक्ष आदि चार प्रमाणों के अंतर्गत कर लिया जाता है, फिर भी एक अलग दृष्टिकोण से, इनका कुछ अलग अस्तित्व भी है। इस प्रकार से संक्षेप में चार प्रमाण और विस्तार से आठ प्रमाण न्याय दर्शन में माने गए हैं। वे अन्य चार प्रमाण ये हैं - ऐतिह्य = इतिहास, अर्थापत्ति, संभव और अभाव।

5- इतिहास प्रमाण का लक्षण --

"इति ह आस" इतिहास, अर्थात ऐसा वास्तव में हुआ था, यह अर्थ है 'इतिहास' शब्द का। अर्थात भूतकाल में जो सच्ची घटनाएं हुई थीं, उनका वर्णन इतिहास प्रमाण कहलाता है। जैसे "श्री राम चन्द्र जी महाराज बड़े उत्तम राजा थे। उनकी माता जी का नाम कौशल्या था। पिताजी का नाम महाराज दशरथ था। उन्होंने अपने माता-पिता की बहुत अच्छी सेवा की इत्यादि," जो भूतकाल की सच्ची घटनाओं का वर्णन है, वह इतिहास नामक प्रमाण कहलाता है। ऐसे वर्णन में जिन झूठी बातों की मिलावट कर दी गई अर्थात जो घटनाएं हुई ही नहीं, फिर भी इतिहास की पुस्तकों में लिख दी गई, उनको इतिहास प्रमाण के अंतर्गत नहीं माना जाएगा। वह झूठ है। प्रमाण हमेशा सत्य का ही बोध कराता है, झूठ का नहीं। अतः जो झूठी बातें

हैं, उन्हें इतिहास प्रमाण से बाहर मान कर छोड़ देंगे, और जो घटनाएं वास्तव में हुई , उन्हीं का वर्णन इतिहास प्रमाण कहलाता है ।

##############

6- अर्थापत्ति प्रमाण का लक्षण --

एक बात के कहने से दूसरी बात, जो बिना कहे, उसके अर्थ से प्राप्त हो जाए, उसको अर्थापत्ति प्रमाण कहते हैं। उदाहरण -- जैसे किसी ने कहा - कि "बादलों के न होने पर वर्षा नहीं होती ।" इस बात के कहने से दूसरी बात, बिना कहे, उसके अर्थ से प्राप्त हो गई, कि - "बादल के होने पर, वर्षा होती है." इसे अर्थापत्ति प्रमाण कहते हैं।

परंतु इसका नाम अर्थापत्ति नहीं है कि - "बादल के होने पर, वर्षा अवश्य होती है". ऐसा अर्थ निकालना गलत है। क्योंकि ऐसा अर्थ निकालना, एक तो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध है। वक्ता इस बात को नहीं कहना चाहता। और दूसरा - सृष्टि नियम में भी ऐसा होना अनिवार्य नहीं है।

नियम यह है कि "कारण के होने पर कार्य होता है, कारण के न होने पर कार्य नहीं होता। परंतु यह आवश्यक नहीं है, कि कारण के होने पर कार्य अवश्य ही हो।" जैसे डिब्बे में आटा होने पर भी हम रोटी न बनाएं, तो कोई समस्या नहीं है। परंतु आटे के बिना रोटी नहीं बन सकती। "जब भी रोटी बनेगी, आटे से ही बनेगी," यह नियम है। इसी प्रकार से "जब भी वर्षा होगी, तो बादल से ही होगी। बिना बादल के वर्षा नहीं होगी। जब थोड़े से बादल होंगे, पूरे बादल नहीं होंगे, उस समय बादलों के होते हुए भी वर्षा नहीं होगी।" यह सृष्टि का नियम है। इसलिए जब भी अर्थापत्ति लगाएंगे, तो

सृष्टि नियम का भी ध्यान रखेंगे। *किसी बात को सिर्फ उलट देना मात्र, अर्थापत्ति नहीं कहलाती। जैसा कि ऊपर बादल और वर्षा के उदाहरण में दिखाया गया है।

इसी प्रकार से यदि कोई कहे कि "भारी पत्थर पहाड़ से मैदान की ओर लुढ़कते हैं।" तो इसकी अर्थापत्ति यह नहीं बनेगी, कि "हल्के पत्थर मैदान से पहाड़ पर चढ़ते हैं।" क्योंकि ऐसा अर्थ निकालने में वाक्य को उलट तो दिया, परंतु जो अर्थ निकाला, वह सृष्टि नियम के अनुकूल नहीं है, तो इसे अर्थापत्ति नहीं कहेंगे।

##############

7- संभव प्रमाण का लक्षण --

जो घटना संसार में हो सकती हो, सृष्टिक्रम के अनुकूल हो, उसे संभव प्रमाण कहते हैं। जो घटना नहीं हो सकती, या सृष्टिक्रम के विरुद्ध हो, उसे असंभव कहते हैं। जैसे किसी ने कहा - "मेरे पास 100 रुपए थे, मैंने 60 रुपए खर्च कर दिए. अब 40 रुपए बच गए", यह घटना सृष्टि क्रम के अनुकूल होने से संभव है। अतः सत्य है।

और यदि कोई कहे, कि "मेरे पास 100 रुपए थे. मैंने ₹150 खर्च कर दिए, उसके बाद भी मेरे पास ₹70 और बचे हैं." यह असंभव है। अतः झूठ है।

इसी प्रकार से एक व्यक्ति ने कहा, कि महाराष्ट्र के नासिक नगर में एक बाबा ने एक लकड़ी को कबूतर बना दिया। यह बात संभव नहीं है, सृष्टि क्रम से विरुद्ध होने के कारण झूठ है।

################

8- अभाव प्रमाण का लक्षण --

अभाव शब्द का अर्थ है - किसी वस्तु का न होना।

अभाव भी एक प्रमाण है। बहुत सी वस्तुएं इस अभाव प्रमाण से भी जानी जाती हैं। जैसे -- एक सेठ ने अपने नौकर से कहा, कि - "उस कमरे से एक कुर्सी ले आओ।" तो नौकर ने देखा, उस कमरे में कुर्सी नहीं है, कुर्सी का अभाव है। तब वह नौकर दूसरे कमरे में से कुर्सी लाकर सेठ जी से बोला- कि "उस कमरे में कुर्सी नहीं है। मैं दूसरे कमरे में से कुर्सी लाया हूँ।"

सेठ जी ने कहा - "तुमने कैसे जाना, कि उस कमरे में कुर्सी नहीं है?" नौकर ने कहा - "अभाव प्रमाण से। वहां पर मेज रेडियो पंखा और कंप्यूटर तो दिखाई दिया, इससे पता चला कि ये सब वस्तुएं हैं। परन्तु कुर्सी नहीं दिखाई दी। इसका अर्थ हुआ कि वहाँ पर कुर्सी नहीं है। यदि कुर्सी होती, तो वह भी कंप्यूटर पंखे आदि के समान दिखाई देती। परंतु वहां दिखाई नहीं दी, इससे पता चला, कि उस कमरे में कुर्सी का अभाव है।" इसे अभाव प्रमाण कहते हैं।

इस प्रकार से न्याय दर्शन में कुल मिलाकर 8 प्रमाण बताए गए हैं। बातचीत (वाद आदि) में जब प्रमाण प्रस्तुत करने होंगे, तो इन्हीं 8 में से कोई प्रमाण प्रस्तुत किया जाएगा। प्रमाण के बिना कोई भी पक्ष सिद्ध नहीं हो पाएगा।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 1/1/40 में)

तर्क का स्वरूप --

तर्क, प्रमाण से भिन्न वस्तु है। प्रमाण बलवान होता है। जबकि तर्क, प्रमाण से कमजोर होता है। क्योंकि प्रमाण से जो निर्णय प्राप्त होता है, वह निश्चयात्मक होता है। जबकि तर्क से जो सार निकलता है, वह सत्य की खोज में सहायक तो होता है, परंतु उतना निश्चयात्मक नहीं होता। उसमें गारंटी न होकर संभावना लगती है। इसलिये तर्क, प्रमाण से कुछ कमजोर होता है। कभी कभी कोई तर्क गलत भी हो सकता है। जो तर्क गलत होता है, वह किसी प्रमाण से, या किसी अन्य तर्क से कट जाता है, झूठा सिद्ध हो जाता है। ऐसे तर्क को कुतर्क कहते हैं।

बहुत से लोग कुतर्क करते हैं। न्यायविद्या को ठीक से न जानने के कारण, वे भ्रांतिवश ऐसा मानते हैं, कि हमारा तर्क बिल्कुल सही है, जबकि वह गलत होता है। कुतर्क होता है। क्योंकि वे तर्कशास्त्र = (न्याय दर्शन) को ठीक से पढ़ते नहीं, जानते नहीं। इसलिये प्रायः उन्हें अपनी गलती भी समझ में नहीं आती।

तर्क का लक्षण --

*अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितः तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः।। न्यायसूत्र 1/1/40.

अर्थात जब किसी वस्तु का स्वरूप ठीक से मालूम न हो, उस पर विचार करते-करते, किसी कारण के प्राप्त हो जाने पर ऐसा प्रतीत हो, कि यह वस्तु ऐसी होनी चाहिए। ऐसे विचार (ऊहा) को तर्क कहते हैं। यह विचार उस वस्तु की सच्चाई तक पहुंचने में हमारी सहायता करता है। अभी इस स्थिति में यह विचार (ऊहा) अंतिम निर्णय नहीं है। जब इस तर्क के अनुकूल प्रमाण मिल जाएगा, तब यह तर्क पूर्ण रूप से सही सिद्ध हो जाएगा। और यह तर्क, प्रमाण के साथ मिलकर उस पक्ष को और मजबूत बना देगा।

उदाहरण -- जैसे एक व्यक्ति को ठीक से पता नहीं था कि आत्मा नित्य है या अनित्य है? उसने सोचना आरंभ किया, कि संसार में कर्म फल व्यवस्था देखी जाती है। किसी आत्मा को मनुष्य का जन्म, किसी को पशु पक्षी का, किसी को जंगली जानवर का, किसी को समुद्री जीव जंतु का जन्म मिला है। यदि यह सब कर्मों का फल है, तो "इससे तो ऐसा ही लगता है, कि आत्मा पिछले जन्म में भी था, तब उसने कुछ कर्म किए। उन कर्मों से इस जन्म में उसे यह शरीर रूपी फल मिला। और अब जो कर्म कर रहा है, इसका फल उसे अगले जन्म में मिलेगा। इस कर्म फल व्यवस्था के आधार पर, तो ऐसा लगता है कि, आत्मा नित्य होना चाहिए।"

फिर इसके विपरीत पक्ष में वह सोचता है कि, यदि आत्मा अनित्य हो, तो कर्म फल व्यवस्था में दो दोष उत्पन्न होंगे। पहला दोष - तब यह मानना होगा कि आत्मा इस शरीर के साथ ही उत्पन्न हुआ है, पहले नहीं था। और पूर्व जन्म में आत्मा था ही नहीं, तो बिना ही कर्म किए, आत्मा को इस जन्म में, यह शरीर मिला। पहले कर्म किए बिना ही बहुत सा सुख दुख इस जन्म में भोगना पड़ा। दार्शनिक भाषा में इसे "अकृताभ्यागम दोष" कहते हैं।

और दूसरा दोष - इस जन्म में किए गए बहुत से कर्म व्यर्थ हो जाएंगे, जिनका फल इस जन्म में नहीं मिल पाएगा। क्योंकि आत्मा यदि अनित्य है तो इसी शरीर के साथ ही उत्पन्न हुआ है, और इसी शरीर के साथ ही नष्ट हो जाएगा। यदि नष्ट हो गया, तो इस जन्म के बहुत से कर्म व्यर्थ हो जाएंगे, जिन कर्मों का फल उसे इस जन्म में नहीं मिल पाया। दार्शनिक भाषा में इसे "कृतहानि दोष" कहते हैं।

इसलिए ऐसा ही प्रतीत होता है, कि आत्मा नित्य पदार्थ होना चाहिए। इस प्रकार के विचार (ऊहा) को तर्क कहते हैं।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,

रोजड़, गुजरात।

पंचावयव का स्वरूप --

जब दो व्यक्ति आपस में बातचीत = वाद करते हैं। उस बातचीत में अपने अपने पक्ष की सिद्धि के लिए, जब शब्द प्रमाण प्रस्तुत किए जाते हैं, तो कभी-कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, कि एक पक्ष वाला व्यक्ति उस शब्द प्रमाण का एक अर्थ प्रस्तुत करता है। और दूसरे पक्ष वाला व्यक्ति उसी शब्द प्रमाण का दूसरा अर्थ प्रस्तुत करता है।

तब उन दोनों में टकराव हो जाता है, तो उस समय, उस शब्द प्रमाण से निर्णय नहीं हो पाता, कि दोनों पक्ष वाले व्यक्तियों में से किस ने उस शब्द प्रमाण का अर्थ ठीक किया। तब "दोनों में से किस का अर्थ ठीक है," इस बात का निर्णय करने के लिए न्याय दर्शन में एक विशेष प्रक्रिया बताई गई है, जिसका नाम है, पंचावयव।

इस प्रक्रिया में अपने पक्ष की सिद्धि करने के लिए पांच वाक्य बोलने होते हैं। जिनके नाम हैं -- प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। इन पांच वाक्यों को बोलने से बात पूरी हो जाती है। दोनों पक्ष वालों को अपने अपने पक्ष की सिद्धि के लिए पंचावयव प्रस्तुत करना पड़ता है। अब दोनों का पक्ष विरोधी है, इसलिए दोनों पक्ष तो सत्य नहीं हो सकते, एक ही सत्य हो सकता है। जिसका पक्ष, पंचावयव से सत्य सिद्ध हो जाएगा, उसी के द्वारा किया

गया उस शब्द प्रमाण का अर्थ सत्य माना जाएगा। वही पक्ष विजयी होगा। जिस का पंचावयव कट जाएगा, असत्य सिद्ध होगा, उसके द्वारा किया गया उस शब्द प्रमाण का अर्थ झूठा माना जाएगा। क्योंकि न्याय दर्शन के नियमानुसार, सभी प्रमाणों का निर्णय एक ही होता है। इसलिये जो पक्ष पंचावयव से सिद्ध होगा, वही शब्द आदि सभी प्रमाणों से सिद्ध होगा। वही सत्य होगा।

इसलिए सत्य असत्य का निर्णय करने के लिए पंचावयव एक विशेष प्रक्रिया है, इसे समझना भी बहुत आवश्यक है। पंचावयव दो प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है। एक - उदाहरण के विशेष साधर्म्य से। और दूसरा - उदाहरण के विशेष वैधर्म्य से। आइए, इस पंचावयव को संक्षेप से समझने का प्रयास करें।

अवयव 1- प्रतिज्ञा -- जो बात सिद्ध करनी है, उस साध्य को विधिवत प्रस्तुत करना, प्रतिज्ञा कहलाती है। अर्थात अपने पक्ष की स्थापना करना। जैसे - "शब्द अनित्य है।" प्रतिवादी की प्रतिज्ञा इससे विपरीत होगी। जैसे - "शब्द नित्य है।"

अवयव 2- हेतु -- प्रतिज्ञा को सिद्ध करने के लिए, उदाहरण के विशेष साधर्म्य से, या उदाहरण के विशेष वैधर्म्य से कोई कारण बतलाना होता है, जो साध्य की सिद्धि करने में समर्थ हो, (अर्थात व्याप्ति सहित हो), ऐसे कारण को हेतु कहते हैं। हेतु दो प्रकार का होता है, उदाहरण के विशेष साधर्म्य से और उदाहरण के विशेष वैधर्म्य से। जैसे -- हेतु -- "उत्पत्ति धर्म वाला होने से।"

(व्याप्ति -- हेतु सही भी हो सकता है, और गलत भी। सही कारण को हेतु, और गलत कारण को हेत्वाभास कहते हैं। "हेतु सही है, या गलत है?" इस बात को पहचानने के लिए एक व्यापक नियम प्रस्तुत करना पड़ता है, जिसे व्याप्ति (Universal Law= कहते हैं। यह हेतु का ही एक भाग है, जिसका उल्लेख न्यायसूत्र में "साध्यसाधनम्" शब्दों से किया गया है।)

(जैसे -- हेतु और व्याप्ति -- {साधर्म्य से} -- "उत्पत्ति धर्म वाला होने से।" "जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है।")

(वैधर्म्य से हेतु को प्रस्तुत करते समय हेतु के शब्द वही रहते हैं, व्याप्ति में शब्द बदले जाते हैं। जैसे-- हेतु और व्याप्ति -- {वैधर्म्य से} -- "उत्पत्ति धर्म वाला होने से।" "जो जो वस्तु अनुत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य नहीं होती, अर्थात नित्य होती है।")

(नोट -- जब हेतु, उदाहरण के साधर्म्य से प्रस्तुत किया जाता है, तो व्याप्ति, उदाहरण और उपनय भी साधर्म्य से ही प्रस्तुत किए जाते हैं। और जब हेतु, उदाहरण के वैधर्म्य से प्रस्तुत किया जाता है, तो व्याप्ति, उदाहरण और उपनय भी वैधर्म्य से ही प्रस्तुत किए जाते हैं।)

अवयव 3- उदाहरण -- जो बात हमें सिद्ध करनी है, वह है शब्द की 'अनित्यता।' यह अनित्यता, प्रथम अवयव 'प्रतिज्ञा' में कहा गया साध्य धर्म है। और इस अनित्यता धर्म को

सिद्ध करने के लिए जो हेतु में प्रस्तुत किया गया साधक धर्म है, वह है, 'उत्पत्ति धर्म।' ये दोनों धर्म, व्याप्ति नियम पूर्वक जिस पदार्थ में होंगे, उसे उदाहरण कहेंगे।

जैसे कि -- उदाहरण, साधर्म्य व्याप्ति सहित --"जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है।" जैसे -- "घड़ा।" उदाहरण, वैधर्म्य व्याप्ति सहित --"जो जो वस्तु अनुत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य नहीं होती, बल्कि नित्य होती है।" जैसे -- "आत्मा।"

अवयव 4- उपनय -- साधर्म्य से उदाहरण प्रस्तुत करने पर साधर्म्य से उपनय -- उदाहरण की सहायता से साधक धर्म = हेतु को प्रतिज्ञा के साथ जोड़कर दिखाना। अर्थात "उदाहरण और प्रतिज्ञा , दोनों एक समान हैं," ऐसा दिखलाना, साधर्म्य से उपनय कहलाता है। जैसे -- "घड़े के समान, शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है।"

जब उदाहरण वैधर्म्य से प्रस्तुत किया जाएगा, तब उपनय भी वैधर्म्य से ही किया जाएगा। जैसे- "जैसा आत्मा अनुत्पत्ति धर्म वाला है, वैसा शब्द अनुत्पत्ति धर्म वाला नहीं है, अर्थात शब्द उत्पत्ति धर्म वाला है।"

अवयव 5- निगमन -- पहले हेतु को दोहराना, उसके बाद प्रतिज्ञा को दोहराना, यह निगमन कहलाता है। इससे बात का प्रस्तुतिकरण पूर्ण हो जाता है। जैसे - "इसलिए, उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।"

वादी द्वारा साधर्म्य से पंचावयव का एक उदाहरण --

1- प्रतिज्ञा- शब्द अनित्य है।

2- हेतु- उत्पत्ति धर्म वाला होने से। (व्याप्ति- जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है।)

3- उदाहरण - जैसे घड़ा।

4- उपनय - घड़े के समान, शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है।

5- निगमन - इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

वादी द्वारा वैधर्म्य से पंचावयव का एक उदाहरण --

1- प्रतिज्ञा - शब्द अनित्य है।

2- हेतु- उत्पत्ति धर्म वाला होने से। (व्याप्ति- जो जो वस्तु अनुत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह नित्य होती है।)

3- उदाहरण - जैसे आत्मा।

4- उपनय - आत्मा के समान, शब्द अनुत्पत्ति धर्म वाला नहीं है, अर्थात उत्पत्ति धर्म वाला है।

5- निगमन - इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

इस प्रकार से पंचावयव दोनों ढंग से प्रस्तुत किया जा

सकता है। उदाहरण के साधर्म्य से भी, और उदाहरण के वैधर्म्य से भी।

अब यही पंचावयव प्रतिवादी को भी अपने पक्ष की सिद्धि के लिए प्रस्तुत करना पड़ता है। (यद्यपि दोनों में से एक ही पंचावयव ठीक हो सकता है, क्योंकि सत्य एक ही होता है।) फिर भी नमूने के रूप में प्रतिवादी का पंचावयव भी हम प्रस्तुत कर रहे हैं। प्रतिवादी का पंचावयव निम्नलिखित है ------

प्रतिवादी द्वारा साधर्म्य से प्रस्तुत पंचावयव --

1- प्रतिज्ञा - शब्द नित्य है।

2- हेतु - अस्पर्श वाला होने से।

(व्याप्ति- जो जो वस्तु अस्पर्श वाली होती है, वह वह नित्य होती है।)

3- उदाहरण - जैसे आत्मा।

4- उपनय - आत्मा के समान, शब्द भी अस्पर्श वाला है।

5- निगमन - इसलिए अस्पर्श वाला होने से, शब्द नित्य है।

प्रतिवादी द्वारा वैधर्म्य से प्रस्तुत पंचावयव --

1- प्रतिज्ञा - शब्द नित्य है।

2- हेतु - अस्पर्श वाला होने से। (व्याप्ति - जो जो वस्तु स्पर्शगुण वाली होती है, वह वह नित्य नहीं होती, अर्थात अनित्य होती है।)

3- उदाहरण - जैसे घड़ा।

4- उपनय - घड़े के समान शब्द, स्पर्शगुण वाला नहीं है, अर्थात अस्पर्श वाला है।

5- निगमन - इसलिए अस्पर्श वाला होने से, शब्द नित्य है।

अब मोटे तौर पर तो ऐसा लगता है कि दोनों पक्षों की बात ठीक है। परंतु परस्पर विरोधी होने से, वास्तव में दोनों की बात ठीक नहीं है। इन दोनों में से एक पक्ष गलत है, जो कि आगे चलकर हेत्वाभास तथा जाति के प्रकरण में समझ में आएगा। फिर भी यहां नमूने के तौर पर दोनों का पंचावयव प्रस्तुत किया गया है। इनमें वादी वाले दोनों पंचावयव ठीक हैं। और प्रतिवादी वाले दोनों पंचावयव गलत हैं।

(सूचना -- न्यायदर्शन के भाष्य में पंचावयव की व्याख्या करते हुए, न्याय सूत्र 1/1/37 के भाष्य में महर्षि वात्सायन जी ने लिखा है, कि हेतु और दृष्टांत का समन्वय करना, यह बहुत सूक्ष्म विषय है। बहुत कठिनाई से समझ में आता है, और विशेष बुद्धिमान लोग ही इसे जान पाते हैं, यह सबको समझ में नहीं आता। जैसे अन्य भी गणित अथवा भौतिक विज्ञान आदि विषयों में अनेक कठिन विषय होते हैं, यह भी उसी प्रकार का कठिन विषय है। यदि आप लोगों को जल्दी से समझ में न भी आए, तो चिंता न करें, लंबे समय तक चिंतन करें। बार बार इसका अभ्यास करें, धीरे-धीरे समझ में आने लगेगा।)

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

बातचीत में 54 प्रकार की गलतियों की सूची -

न्याय दर्शन --

महर्षि गौतम जी द्वारा, न्यायदर्शन में सत्य को जानने तथा सत्य बोलने के क्षेत्र में, बहुत विस्तृत और गंभीर विद्या को प्रस्तुत किया गया है।

महर्षि गौतम जी का संदेश है कि, यदि कोई व्यक्ति सत्य को जानना और सत्य बोलना चाहता है। यदि वह सत्य से अपना लौकिक व्यवहार शुद्ध करना चाहता है; यदि वह मोक्ष को भी प्राप्त करना चाहता है, तो वह इस न्याय विद्या की सहायता से, मोक्ष प्राप्ति सहित इन सब कार्यों की सिद्धि कर सकता है।

सत्य को जानने तथा सत्य बोलने के लिए उसे न्याय दर्शन में बताई गई गलतियों से बचना होगा। अन्यथा वह कभी भी सत्य को न तो जान पाएगा, और न ही सत्य बोल पाएगा। इसका परिणाम यह होगा कि असत्य बोलने, भ्रांति फैलाने, धोखा देने आदि अपराध के कारण, ईश्वर की न्याय व्यवस्था से, उसे जन्म जन्मांतरों तक दण्ड भोगना पड़ेगा।

अतः सबका कर्तव्य है कि सब लोग ऐसे मिथ्या भाषण आदि अपराधों से बचकर शुद्ध सत्य को जानें, सत्य बोलें तथा पुण्य के भागी बनें। अपने लौकिक व्यवहार को भी शुद्ध करें, तथा मोक्ष को भी प्राप्त करें। न्यायदर्शन में बताई गई ये गलतियां कुल मिलाकर 54 प्रकार की हैं। इनकी सूची नीचे प्रस्तुत की जाती है।

5 प्रकार के हेत्वाभासों की सूची --

(न्याय सूत्र 1/2/5 से 9 तक)

1- सव्यभिचार हेत्वाभास।

2- विरुद्ध हेत्वाभास।

3- प्रकरणसम हेत्वाभास।

4- साध्यसम हेत्वाभास।

5- कालातीत हेत्वाभास।

3 प्रकार के छलों की सूची --

(न्याय सूत्र 1/2/10 से 14 तक)

1- वाक्छल।

2- सामान्यछल।

3- उपचारछल।

24 प्रकार की जातियों की सूची --

(न्याय सूत्र 5/1/1 से 37 तक)

1- साधर्म्यसमा	जाति।	2-वैधर्म्य समा	जाति।
3- उत्कर्षसमा	जाति।	4- अपकर्ष समा	जाति।
5- वर्ण्यसमा	जाति।	6- अवर्ण्यसमा	जाति।
7- विकल्पसमा	जाति।	8- साध्यसमा	जाति।
9- प्राप्तिसमा	जाति।	10- अप्राप्तिसमा	जाति।
11- प्रसंगसमा	जाति।	12- प्रतिदृष्टान्तसमा	जाति।
13- अनुत्पत्तिसमा	जाति।	14- संशयसमा	जाति।
15- प्रकरणसमा	जाति।	16- अहेतुसमा	जाति।
17- अर्थापत्तिसमा	जाति।	18- अविशेषसमा	जाति।
19- उपपत्तिसमा	जाति।	20- उपलब्धिसमा	जाति।
21- अनुपलब्धिसमा	जाति।	22- नित्यसमा	जाति।
23- अनित्यसमा	जाति।	24- कार्यसमा	जाति।

22 प्रकार के निग्रहस्थानों की सूची --

(न्याय सूत्र 5/2/1 से 25 तक)

1- प्रतिज्ञाहानि	निग्रहस्थान।	2- प्रतिज्ञान्तर	निग्रहस्थान।
3- प्रतिज्ञाविरोध	निग्रहस्थान।	4- प्रतिज्ञासंन्यास	निग्रहस्थान।

5- हेत्वन्तर निग्रहस्थान। 6- अर्थान्तर निग्रहस्थान।
7- निरर्थक निग्रहस्थान। 8- अविज्ञातार्थ निग्रहस्थान।
9- अपार्थक निग्रहस्थान। 10-अप्राप्तकाल निग्रहस्थान।
11- न्यून निग्रहस्थान। 12-अधिक निग्रहस्थान।
13- पुनरुक्त निग्रहस्थान। 14-अननुभाषण निग्रहस्थान।
15- अज्ञान निग्रहस्थान। 16-अप्रतिभा निग्रहस्थान।
17- विक्षेप निग्रहस्थान। 18-मतानुज्ञा निग्रहस्थान।
19-पर्यनुयोज्योपेक्षण निग्रहस्थान।
20- निरनुयोज्यानुयोग निग्रहस्थान।
21- अपसिद्धान्त निग्रहस्थान। 22- हेत्वाभास निग्रहस्थान।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

हेत्वाभास परिचय न्यायदर्शन --

(न्याय सूत्र 1/2/4 की भूमिका में)

बातचीत करते समय जब दो व्यक्तियों में परस्पर विचार भेद होता है। तब उस विचारभेद को सुलझाने के लिए वे आपस में जो वाद आदि करते हैं, उसमें इनके नाम वादी और प्रतिवादी होते हैं। इनका अपना अपना जो विचार होता है, उसे प्रतिज्ञा या पक्ष कहते हैं। इन दोनों को अपने अपने पक्ष को सही सिद्ध करने के लिए कोई कारण बताना पड़ता है, कि मेरा पक्ष, या मेरी प्रतिज्ञा, इस कारण से सही है। बताया गया कारण अर्थात हेतु सही होना चाहिए, ताकि वह साध्य की सिद्धि करने में समर्थ हो। यदि ऐसा हो, तब वह "हेतु" नाम से कहा जाता है।

जब हेतु, उदाहरण के विशेष साधर्म्य या विशेष वैधर्म्य से कहा जाता है, तब वह साध्य की सिद्धि करने में समर्थ होता है। हेतु में बताया गया धर्म, साध्य की सिद्धि तभी कर

सकता है, जब हेतु धर्म तथा साध्य धर्म में व्याप्ति (Universal Law) पूर्वक साध्यसाधनभाव हो।

और यदि बताया गया कारण गलत हो, व्याप्ति पूर्वक न हो, वह किसी प्रकार से कट जाता हो, अर्थात हेतु और साध्य धर्म में, साध्यसाधनभाव न हो, तथा स्थूल रूप से वह हेतु जैसा प्रतीत होता हो, तो उसे "हेत्वाभास" कहते हैं।

ऐसे हेत्वाभास जानबूझ कर के भी कहे जा सकते हैं अथवा अनजाने में भी कहे जा सकते हैं।इनका प्रयोग करना अनुचित, हानिकारक, तथा सत्य से दूर ले जाने वाला होता है। न्याय दर्शन में कुल मिलाकर हेत्वाभास पांच प्रकार के बताए गए हैं। इनके नाम हैं-- सव्यभिचार (या अनैकांतिक), विरुद्ध, प्रकरणसम, साध्यसम और कालातीत। इन का विस्तृत वर्णन न्यायदर्शन अध्याय 1, आह्निक 2 में सूत्र 5 से 9 तक किया गया है।।

5 प्रकार के हेत्वाभासों की सूची --

(न्याय सूत्र 1/2/4 से 9 तक)

1- सव्यभिचार हेत्वाभास।

2- विरुद्ध हेत्वाभास।

3- प्रकरणसम हेत्वाभास।

4- साध्यसम हेत्वाभास।

5- कालातीत हेत्वाभास।

अगले लेखों में हम प्रत्येक हेत्वाभास के विषय में विस्तार से बताएंगे।

(सूचना -- प्रत्येक विद्या में कुछ बातें सरल होती हैं, और बहुत सी कठिन। जैसे पहली कक्षा से पीएचडी तक गणित विद्या में कुछ बातें सरल और बहुत सी कठिन होती हैं। न्याय विद्या में भी ऐसा ही है। इस न्याय विद्या में भी जो सरल बातें हैं, वे तो सामान्य लोगों को समझ में आ चुकी होंगी, जैसे प्रमाण प्रमेय आदि 16 पदार्थों का परिचय। (यह सत्य की खोज कैसे करें? भाग 3 -- 8 में बताया जा चुका है।) परंतु जो कठिन बातें हैं, वे सामान्य लोगों को बहुत कम समझ में आएंगी। विशेष कठिन बातें हैं, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थानों के विषय में। (ये सब मिला कर 54 प्रकार की वे गलतियां हैं, जो प्रायः सभी लोग बातचीत में प्रतिदिन करते रहते हैं। क्योंकि सब ने इस न्याय विद्या को पढ़ा नहीं, इसलिए वे लोग जानते भी नहीं, कि हम कौन कौन सी और कैसी-कैसी गलतियां बातचीत में प्रतिदिन करते हैं।) अतः यदि आप को ऐसी कठिन बातें एक दो बार पढ़ने से समझ में न आएँ, तो चिंता न करें। वर्तमान में जितना समझ

में आए, उतना लाभ उठाएं। अधिक समझने के लिए इस न्याय विद्या को किसी योग्य विद्वान से विधिवत पढ़ें, बार बार पढ़ें, लंबे समय तक चिंतन मनन करें। तब कुछ समझ में आएगा। "इन लेखों से विशेष लाभ तो उन लोगों को होगा, जो संस्कृत भाषा जानते हैं। जिन्होंने कम से कम 10 वर्ष तक लगातार न्याय दर्शन को वात्स्यायन भाष्य सहित खूब परिश्रम से पढ़ा हो। कम से कम 2/3 बार गुरुजी से पढ़ा हो, और 20/25 बार स्वयं स्वाध्याय किया हो। या 4/5 बार दूसरों को पढ़ाया हो।" फिर भी निराश होने की बात नहीं है। इस उत्तम विद्या को समझने के लिए विशेष पुरुषार्थ करें। पुरुषार्थ करने से सामान्य लोगों को भी यह विद्या धीरे-धीरे समझ में आएगी।)

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 1/2/5 में)

1- सव्यभिचार हेत्वाभास की परिभाषा --

व्यभिचार का अर्थ होता है, अनेक पक्षों में जाने वाला। जो हेतु किसी एक पक्ष में ही स्थिर नहीं रहता, किंतु अनेक पक्षों में चला जाता है, उसे सव्यभिचार नामक हेत्वाभास कहते हैं। इस हेत्वाभास से कोई साध्य सिद्ध नहीं होता। (जैसे कोई गवाह दोनों पक्षों में गवाही देता है, उसकी गवाही मान्य नहीं होती।)

उदाहरण --

वादी द्वारा पक्ष की स्थापना --

- शब्द अनित्य है, उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।
- घड़े के समान, शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है।
- इसलिये उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, सव्यभिचार हेत्वाभास का प्रयोग करते हुए --

वैधर्म्य से हेतु --

- शब्द नित्य है, अस्पर्श वाला होने से।
- जो जो वस्तु स्पर्श वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

- घड़े के समान, शब्द स्पर्श वाला नहीं है, अर्थात अस्पर्श वाला है।
- इसलिये अस्पर्श वाला होने से, शब्द नित्य है।

समीक्षा --

यहाँ प्रतिवादी ने उदाहरण घड़े के वैधर्म्य से हेतु प्रस्तुत किया है। उदाहरण घड़े में दो धर्मों (स्पर्श और अनित्यता) में साध्यसाधनभाव दिखाने का प्रयास किया है। जो साध्यसाधनभाव, व्याप्ति न होने से, नहीं है। क्योंकि एक अन्य उदाहरण से व्याप्ति भंग हो जाती है। जैसे कि - "सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुण नामक 'परमाणु' स्पर्श गुण वाला है, और नित्य है।" अतः स्पर्श का, अनित्यता के साथ साध्यसाधनभाव सिद्ध नहीं हो पाया। क्योंकि स्पर्श गुण वाला घड़ा अनित्य है, और स्पर्श गुण वाला परमाणु नित्य है। इसलिए "अस्पर्श वाला होने से," यह हेतु दोनों पक्षों में जाने के कारण हेत्वाभास है।

हेतु दो प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के साधर्म्य से और उदाहरण के वैधर्म्य से। जैसा कि ऊपर दिखाया है, प्रतिवादी के द्वारा यह हेतु, उदाहरण (घड़े) के वैधर्म्य से प्रस्तुत किया गया है। यह हेतु तो अनैकांतिक अर्थात (नित्य तथा अनित्य)

दोनों पक्षों में जाने के कारण, साध्य की सिद्धि में असफल हो गया। अतः हेत्वाभास कहलाता है।

अब यदि यही हेतु, उदाहरण के साधर्म्य से प्रस्तुत किया जाए, तो भी कट जाएगा, और अनैकांतिक अर्थात दोनों पक्षों में जाने से, साध्य की सिद्धि में असफल हो जाएगा, अतः व्यभिचारी हेतु या हेत्वाभास कहलाएगा।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, सव्यभिचार हेत्वाभास का प्रयोग करते हुए --

साधर्म्य से हेतु --

- शब्द नित्य है, अस्पर्श वाला होने से।
- जो जो वस्तु अस्पर्श वाली होती है, वह वह नित्य होती है। जैसे आत्मा।
- आत्मा के समान, शब्द भी अस्पर्श वाला है।
- इसलिये अस्पर्श वाला होने से, शब्द नित्य है।

समीक्षा --

यह हेतु, उदाहरण आत्मा के साधर्म्य से प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत किया गया है। यह हेतु भी (नित्य एवँ अनित्य) दोनों पक्षों में जाने से अनैकांतिक हेत्वाभास है। क्योंकि आत्मा, अस्पर्श वाला होने से नित्य है, जबकि ज्ञान भी अस्पर्श वाला है, वह तो अनित्य है।

इस प्रकार से यह हेतु दोनों ही प्रकार के उदाहरणों के साथ साध्यसाधनभाव नहीं रखता। इसमें हेतु का लक्षण सिद्ध नहीं हो पाया, इसलिये इसे हेत्वाभास कहते हैं। और यह दोनों पक्षों में जाता है। इस कारण से इसे अनैकांतिक नामक हेत्वाभास कहते हैं।

दूसरा उदाहरण -- एक व्यक्ति ने कहा कि, यह प्राणी गाय है, क्योंकि इसके सींग हैं। यह हेतु ठीक नहीं है। क्योंकि यह हेतु गाय को छोड़कर अन्य पक्ष में भी चला जाता है। जैसे कि बकरी और भैंस के भी सींग होते हैं। इसलिये सींग होने मात्र के हेतु से उस प्राणी को गाय सिद्ध नहीं किया जा सकता। अनेक पक्षों में जाने के कारण यह अनैकांतिक हेत्वाभास है।

तीसरा उदाहरण --

प्रतिवादी का कथन --

आत्मा साकार है। हेतु -- "शरीर को धारण करने से।" जो जो शरीर धारण नहीं करता, वह निराकार होता है, जैसे ईश्वर। आत्मा, ईश्वर जैसा =शरीर को धारण न करने वाला, नहीं है। (अर्थात आत्मा शरीर को धारण करता है।) इसलिए शरीर को धारण करने से, आत्मा साकार है।

समीक्षा -- "आत्मा शरीर को धारण करता है, इसलिए वह साकार है।" यह अनैकांतिक (सव्यभिचार) हेत्वाभास है। क्योंकि

यदि ईश्वर शरीर धारण न करने से निराकार है। तो सूर्य पृथ्वी आदि पदार्थ भी शरीर धारण नहीं करते, वे भी निराकार होने चाहिएँ। परन्तु वे तो साकार हैं। इस प्रकार से यह हेतु दोनों पक्षों में जाने से अनैकांतिक हेत्वाभास है।

प्रश्न -- यदि आत्मा निराकार है, तो वह शरीर धारण क्यों करता है, जबकि निराकार होते हुए ईश्वर शरीर धारण नहीं करता।

उत्तर -- इसका कारण यह है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है, इसलिये उसे शरीर धारण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु आत्मा अल्पशक्तिमान है, बिना शरीर के उसका काम नहीं चलता। इसलिये उसे शरीर धारण करना पड़ता है। यदि आत्मा भी सर्वशक्तिमान होता, तो वह भी ईश्वर के समान शरीर धारण न करता। "आत्मा के द्वारा शरीर धारण करना," यह उसके साकार होने का हेतु (कारण) नहीं है। अतः इस हेतु (शरीर धारण करने) से आत्मा साकार सिद्ध नहीं होता।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 1/2/6 में)

2- विरुद्ध हेत्वाभास की परिभाषा --

जब कोई व्यक्ति अपना एक सिद्धांत स्थापित कर देता है, और उसका हेतु बता देता है। बाद में वह दूसरा सिद्धांत स्थापित करता है, और उसका भी हेतु बता देता है। तब प्रथम स्थापित सिद्धांत के "हेतु के द्वारा," द्वितीय स्थापित "सिद्धांत का" जब विरोध किया जाता है, तो ऐसे हेतु को विरुद्ध हेत्वाभास कहते हैं।

उदाहरण --

प्रथम सिद्धांत -- कार्य जगत नष्ट हो जाता है।

इसका हेतु - क्योंकि कोई भी कार्यवस्तु नित्य नहीं होती।

द्वितीय सिद्धांत -- कार्य वस्तु नष्ट होने पर भी रहती है।

इसका हेतु - क्योंकि किसी भी वस्तु का नाश हो नहीं सकता।

विरुद्ध हेत्वाभास -- "क्योंकि कोई भी कार्यवस्तु नित्य नहीं होती।" प्रथम सिद्धांत का यह हेतु, "कार्य वस्तु नष्ट होने पर भी रहती है", इस दूसरे सिद्धांत के विरुद्ध है।

कैसे विरुद्ध है? यदि कार्य वस्तु (घड़ा) नष्ट होने के बाद भी रहती है, तो वस्तु की अनित्यता सिद्ध नहीं होती। क्योंकि नष्ट होने के बाद भी यदि वस्तु रहे, यह तो नित्यता है। अनित्य होने का अर्थ

है, कि कार्य वस्तु अपने स्वरूप को छोड़ देवे। जैसे घड़ा।

"जो वस्तु अपने स्वरूप को छोड़ देती है, उसको अनित्य कहते हैं। और जो वस्तु नित्य है, वह अपने स्वरूप को नहीं छोड़ती।"

"अब वस्तु है भी, और वह अपने स्वरूप को छोड़ भी चुकी है।" तो ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं, एक साथ संभव नहीं हो सकती। इस प्रकार से, वक्ता का यह हेतु, अपने ही सिद्धांत का विरोध करता है, इसलिये यह विरुद्ध हेत्वाभास कहलाता है।

दूसरा उदाहरण --

प्रथम सिद्धांत -- ईश्वर पाप माफ नहीं करता। इसका हेतु -- न्यायकारी होने से।

द्वितीय सिद्धांत -- ईश्वर पाप माफ कर देता है। इसका हेतु -- दयालु होने से।

विरुद्ध हेत्वाभास -- न्यायकारी होना और पाप माफ कर देना, इन दोनों में विरोध है। अतः"न्यायकारी होने से", प्रथम सिद्धांत का यह हेतु; द्वितीय सिद्धांत -- "ईश्वर पाप माफ कर देता है", के विरुद्ध है। इस प्रकार से, वक्ता का यह हेतु, अपने ही सिद्धांत का विरोध करता है, इसलिए इसे विरुद्ध हेत्वाभास कहते हैं।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,

रोजड़, गुजरात।

3- प्रकरणसम हेत्वाभास की परिभाषा --

जहाँ से प्रकरण प्रारम्भ हुआ था, (प्रतिज्ञा से प्रकरण = वाद प्रारम्भ हुआ था,) उसी प्रतिज्ञा को ही घुमा फिरा कर हेतु के रूप में प्रस्तुत कर देना, प्रकरणसम नामक हेत्वाभास कहलाता है।

उदाहरण --

वादी का कथन --

शब्द अनित्य है। इसमें नित्यता धर्म उपलब्ध न होने से। जिस जिस वस्तु में नित्यता धर्म उपलब्ध नहीं होता, वह वह वस्तु अनित्य देखी जाती है। जैसे घड़ा इत्यादि।

प्रतिवादी का कथन -- शब्द नित्य है। इसमें अनित्यता धर्म उपलब्ध न होने से। जिस जिस वस्तु में अनित्यता धर्म उपलब्ध नहीं होता, वह वह वस्तु नित्य देखी जाती है। जैसे आकाश आदि।

समीक्षा --

प्रकरणसम हेत्वाभास में, वादी और प्रतिवादी ने, जो प्रतिज्ञा की थी, उन दोनों ने ही उसी प्रतिज्ञा को घुमा फिरा कर हेतु बना दिया। प्रतिज्ञा से अलग कोई विशेष हेतु नहीं दिया। इससे कोई निर्णय नहीं हो पाया, और प्रकरण की समाप्ति नहीं हो पाई। इसलिए यह प्रकरणसम हेत्वाभास है।

दूसरा उदाहरण --

वादी का कथन --

ईश्वर सर्वव्यापक है। इसमें एकदेशिता धर्म उपलब्ध न होने से। जिस जिस वस्तु में एकदेशिता धर्म उपलब्ध नहीं होता, वह वह वस्तु सर्वव्यापक देखी जाती है। जैसे आकाश इत्यादि।

प्रतिवादी का कथन --

ईश्वर एकदेशी है। इसमें सर्वव्यापकता धर्म उपलब्ध न होने से। जिस जिस वस्तु में सर्वव्यापकता धर्म उपलब्ध नहीं होता, वह वह वस्तु एकदेशी देखी जाती है। जैसे वृक्ष इत्यादि।

तीसरा उदाहरण --

वादी का कथन --

गृहस्थ आश्रम में दुख अधिक है। सुख कम होने से। जहाँ जहाँ सुख कम होता है, वहाँ वहाँ दुख अधिक होता है। जैसे कि हास्पिटल में मृत्यु होने पर।

प्रतिवादी का कथन --

गृहस्थ आश्रम में सुख अधिक है। दुख कम होने से। जहाँ जहाँ दुख कम होता है, वहाँ वहाँ सुख अधिक होता है। जैसे कि विवाह के उत्सव में।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,

रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

भाग 21

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 1/2/8 में)

4- साध्यसम हेत्वाभास की परिभाषा --

जब किसी प्रतिज्ञा को प्रस्तुत करके उसकी सिद्धि के लिए जो हेतु दिया जाता है, वह हेतु स्वयं सिद्ध न हो, बल्कि प्रतिज्ञा के समान, वह हेतु स्वयं सिद्ध करने योग्य हो, सरल शब्दों में कहें, तो जो कार्य हेतु से होना बताया जा रहा है, वह असंभव हो, तो वह साध्यसम हेत्वाभास कहलाता है।

उदाहरण --

प्रतिज्ञा - छाया एक द्रव्य है।

हेतु - गति वाली होने से।

समीक्षा --

यह सत्य है कि कोई पदार्थ गति वाला होने से, द्रव्य कहलाता है। जैसे पृथ्वी कार आदि। इनमें तो गति सिद्ध है। परन्तु छाया के संबंध में, अभी यह सिद्ध नहीं है, कि छाया में गति होती भी है, या नहीं। अर्थात जब छाया में गति होती ही नहीं, तो उसे द्रव्य होने का हेतु बतलाना, सत्य नहीं है, संभव नहीं है। संभव न होने के कारण, यह हेतु साध्यसम हेत्वाभास है। वास्तव में गति तो मनुष्य में होती है। मनुष्य के गतिमान होने पर उसकी छाया (परछाईं) भी गतिमान प्रतीत होती है। गति वास्तव में छाया में नहीं होती। अतः यह हेतु, स्वयं साध्य (असंभव) होने से, हेत्वाभास है। अर्थात इस प्रकार का

हेतु साध्य की सिद्धि करने में असमर्थ है। इस प्रकार के असमर्थ हेतु को साध्यसम हेत्वाभास कहते हैं।

दूसरा उदाहरण --

एक व्यक्ति ने कहा, ईश्वर पापियों को माफ कर देता है। सर्वशक्तिमान होने से। यह साध्यसम हेत्वाभास है। क्योंकि अभी यह सिद्ध नहीं है कि सर्वशक्तिमान का अर्थ, पाप माफ करने वाला है भी या नहीं? तो इस प्रकार का असंभव हेतु, जो स्वयं असिद्ध है, वह साध्यसम हेत्वाभास कहलाता है।

तीसरा उदाहरण --

एक व्यक्ति ने पूछा, सिलिंडर में गैस समाप्त हो गई है, अब रोटी कैसे पकाएँ? दूसरे सामान्य बुद्धि वाले व्यक्ति ने कहा, "यह मोमबत्ती ले लो, इससे पका लो।" यह साध्यसम हेत्वाभास है। क्योंकि यह सिद्ध नहीं है, कि मोमबत्ती से रोटी पक सकेगी या नहीं? अर्थात जब मोमबत्ती से रोटी पक ही नहीं सकती, तो इस प्रकार का असिद्ध हेतु, साध्यसम हेत्वाभास कहलाता है।

चौथा उदाहरण --

एक व्यक्ति ने कहा, ईश्वर समय समय पर अवतार लेता है। सर्वशक्तिमान होने से। यह साध्यसम हेत्वाभास है। क्योंकि अभी यह सिद्ध नहीं है कि सर्वशक्तिमान का अर्थ, अवतार लेने वाला है भी या नहीं? तो इस प्रकार का असंभव हेतु, जो स्वयं असिद्ध है, वह साध्यसम हेत्वाभास कहलाता है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,

रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

भाग 22

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 1/2/9 में)

5- कालातीत हेत्वाभास की परिभाषा --

जो हेतु, काल अर्थात समय का अतिक्रमण करता है, उसे कालातीत हेत्वाभास कहते हैं।

वादी का कथन --

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जैसे घड़ा..... ।

प्रतिवादी का कथन -- शब्द नित्य है। संयोग से अभिव्यक्त होने से। जैसे दीपक से वस्तुओं की अभिव्यक्ति होना।

प्रतिवादी द्वारा व्याख्या --

जहाँ-जहाँ अभिव्यक्ति होती है, वहाँ वहाँ वस्तुएँ नित्य होती हैं, अर्थात पहले से विद्यमान होती हैं। जैसे दीपक जलाने से कमरे में रखे हुए सामान की अभिव्यक्ति होती है। वहाँ सामान कमरे में पहले से ही रखा हुआ होता है।

वैसे ही ढोल और डंडे के संयोग से शब्द की अभिव्यक्ति होती है। अर्थात शब्द भी पहले से ही था। इसलिए संयोग से अभिव्यक्त होने से, शब्द नित्य है।

वादी का उत्तर -- आपका हेतु सही नहीं है। यह हेत्वाभास है। मान लीजिए 10 सैकंड तक दीपक जलाया। तो कमरे में रखी वस्तुओं

की अभिव्यक्ति भी 10 सैकंड तक ही हुई। फिर दीपक को बुझा दिया। जब अभिव्यक्ति का हेतु = दीपक बुझा दिया, तो वस्तुएँ दिखना बंद हो गयी। यहाँ वस्तुओं की अभिव्यक्ति 10 सैकंड तक ही होगी, उसके बाद नहीं।

जबकि शब्द का कारण = डंडे और ढोल के संयोग के नष्ट हो जाने पर भी शब्द की प्राप्ति (श्रवण) होती रहती है। वह ढोल और डंडे के संयोग काल का अतिक्रमण करती है। तो इसका अर्थ है कि यह शब्द की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि शब्द की उत्पत्ति है। क्योंकि जहां जहां उत्पत्ति होती है, वहां वहां कारण के नष्ट होने के बाद भी वह वस्तु बनी रहती है। जैसे ताजमहल के बनाने वाले मर गए, उसके बाद भी ताजमहल खड़ा हुआ है। यह ताजमहल की उत्पत्ति कहलाती है, अभिव्यक्ति नहीं।

इसी प्रकार से शब्द का श्रवण, डंडे और ढोल के संयोग के नष्ट होने पर भी हो रहा है। अतः वह, डंडे और ढोल के संयोग (रूपी कारण के) काल का अतिक्रमण कर रहा है। इसलिए ताजमहल के समान, यह शब्द की उत्पत्ति है, अभिव्यक्ति नहीं। अतः संयोग से, शब्द की उत्पत्ति को, शब्द की अभिव्यक्ति बताना, कालातीत हेत्वाभास है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

छल परिचय न्यायदर्शन --

एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। यह व्यवस्था प्रायः सभी भाषाओं में देखी जाती है। कभी-कभी वादी प्रतिवादी लोग इस व्यवस्था का दुरुपयोग करते हैं। वक्ता जब अपना पक्ष प्रस्तुत करता है, तब वह कहना कुछ और चाहता है, और श्रोता या दूसरे व्यक्ति द्वारा वक्ता के वचन का विघात करके अर्थात उसकी बात को तोड़ मरोड़ कर अपना मनमाना अर्थ निकाल लिया जाता है। फिर उस मनमाने अर्थ के आधार पर वक्ता का खंडन किया जाता है। इसे छल कहते हैं।

जैसे किसी ने कहा, "मैं ऊपर जा रहा हूं." तो दूसरे ने कहा, "इतनी जल्दी क्या है, अभी तो आपकी उम्र बहुत छोटी है." वक्ता का अभिप्राय था, मैं ऊपर अर्थात छत पर जा रहा हूं। दूसरे व्यक्ति ने उसका अर्थ तोड़ मरोड़ कर ऐसा कर दिया कि जैसे वह मरने जा रहा हो। इस प्रकार से बोलना छल कहलाता है।

यह जानबूझकर भी किया जाता है, और अनजाने में भी किया जाता है। कभी कभी लोग मनोरंजन के उद्देश्य से भी छल का प्रयोग जानबूझकर कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोग अपना वाकचातुर्य दिखाने के लिए, दूसरे व्यक्ति का अपमान करने के लिए, या अन्य किसी प्रयोजन से भी इसका प्रयोग कर लेते हैं। इसका प्रयोग करना अनुचित एवं हानिकारक है।

न्यायदर्शन में तीन प्रकार का छल बताया गया है।

*3 प्रकार के छल की सूची * --

(न्याय सूत्र 1/2/10 से 14 तक)

1- वाक्छल।

2- सामान्यछल।

3- उपचारछल।

अगले लेखों में प्रत्येक छल को समझाया जाएगा।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 1/2/12 में)

वाक् छल की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

वक्ता शब्द के सामान्य अर्थात (प्रचलित, सर्वप्रसिद्ध) अर्थ को मन में रखकर, शब्द का प्रयोग करता है। श्रोता उसके अभिप्राय से भिन्न (विशेष) अर्थ को ले कर वक्ता का खंडन करता है। यहाँ वाणी में छल हुआ, अर्थात शब्द का अर्थ बदला गया, यह वाक्छल कहलाता है।

उदाहरण --

वादी -- उस बालक के पास नवकम्बल (नया कम्बल) है।

प्रतिवादी -- उस बालक के पास नवकम्बल (नौ कम्बल) कहाँ हैं? उसके पास तो एक ही कम्बल है।

व्याख्या, ग्रन्थकार द्वारा --

यहाँ वादी ने नव शब्द, 'नए' = नवीन अर्थ में प्रयोग किया था, जो कि सामान्य रूप से सर्वप्रसिद्ध है। परंतु प्रतिवादी ने नव शब्द का संख्यावाचक 'नौ' (9) करते हुए, विशेष अर्थ लेकर वादी का खंडन किया। यहाँ शब्द का सामान्य (प्रचलित) अर्थ में प्रयोग करने पर, विशेष अर्थ लेकर खंडन करना, वाक् छल कहलाता है। यदि सरल शब्दों में कहें तो ऐसा समझना चाहिए कि, प्रतिवादी ने वादी के शब्द का अर्थ बदल कर, वादी का खंडन किया।

इस छल का खंडन, ग्रन्थकार द्वारा --

"नवकंबल" इस शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। एक सामान्य अर्थ, 'नया कंबल।' और दूसरा विशेष अर्थ , 'नौ कंबल।'

तो प्रतिवादी जी आप यह सिद्ध करें, कि वादी ने 'नया कंबल', इस अर्थ में शब्द का प्रयोग नहीं किया, बल्कि 'नौ कंबल' इस अर्थ में प्रयोग किया है। यदि आप इसे सिद्ध नहीं

कर सकते, तो यह आपका केवल झूठा आरोप मात्र है। आपने वादी द्वारा प्रयुक्त शब्द का, अपनी मनमानी से अर्थ बदलकर, छल का प्रयोग किया है। आपका किया हुआ यह खंडन उचित नहीं है।

हम देखते हैं, कि सामान्य शब्द का सामान्य अर्थ में प्रयोग किया जाता है। और विशेष शब्द का विशेष अर्थ में। जैसे किसी ने कहा , कि "बकरी को गांव ले जाओ। वहां से घी ले आना। अथवा ब्राह्मण को भोजन करा दो।" ये सब सामान्य शब्द हैं, सामान्य अर्थों में इनका प्रयोग किया जाता है। जिन अर्थों में इनका प्रयोग संभव है, उन्हीं अर्थों में इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है। "बकरी को गांव ले जाओ, इसका सामान्य अर्थ यही होता है, कि एक दो बकरी को गांव ले जाओ। इसका अर्थ यह नहीं होता कि 500 बकरियों को गांव ले जाओ।"

इसी प्रकार से वादी ने कहा, कि "यह बालक नवकंबल वाला है।" तो इसका यही संभव अर्थ है, कि "बालक का कम्बल नया है." "बालक के 9 कंबल हैं।" यह अर्थ तो

संभव नहीं है। और आपने ऐसा अर्थ बनाकर अपनी मनमानी से वादी का खंडन किया है, यह उचित नहीं है। किसी वक्ता के शब्दों का अर्थ करते समय, प्रसंग को भी ध्यान में रखना चाहिए। आपने प्रसंग पर ध्यान दिए बिना, वक्ता के अभिप्राय से भिन्न अर्थ की कल्पना कर के खंडन किया, यह छल का प्रयोग है। इसलिये आपका किया हुआ खंडन व्यर्थ है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

भाग 25
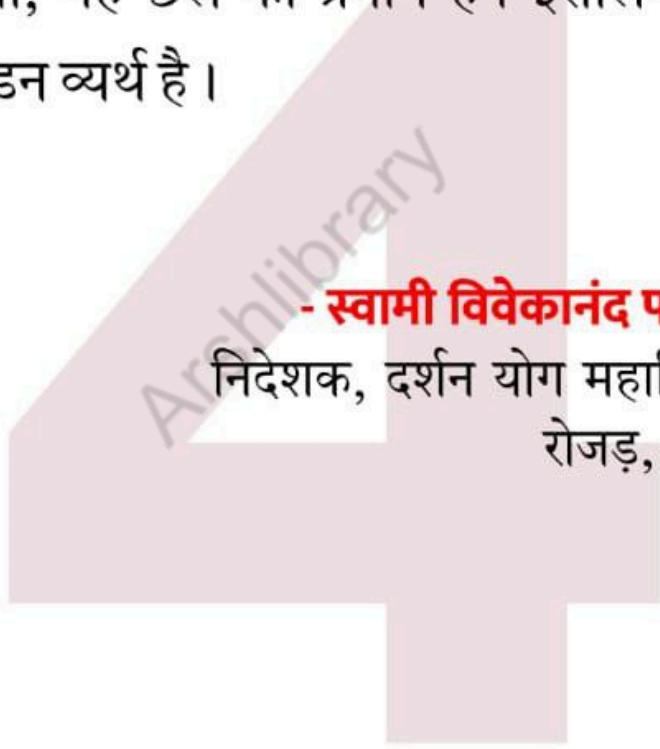
सामान्य छल की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

पहला व्यक्ति, किसी पदार्थविशेष के संबंध में कोई बात कहता है, (जिसका अर्थ संभव होता है।)

दूसरा व्यक्ति, उस पदार्थविशेष के संबंध में कही गई बात को, एक पदार्थ की सीमा से बढ़ाकर, उस वर्ग के सभी पदार्थों के लिए लागू कर के, उसे सामान्य बना देता है, (जिसका अर्थ असंभव हो जाता है।) इस प्रकार से किसी विशेष बात को, सामान्य बना देना, सामान्य छल कहलाता है।

पहला उदाहरण --

एक व्यक्ति बोला -- "श्री दयाल शर्मा जी एक बुद्धिमान व्यक्ति हैं।" (यह सम्भव अर्थ है। यह बात एक विशेष व्यक्ति के संबंध में कही गई है।)

दूसरा व्यक्ति बोला -- "हाँ, ठीक है, शर्मा लोग तो सभी बुद्धिमान होते हैं।" (दूसरे व्यक्ति ने, पहले व्यक्ति के वाक्य के विशेष अर्थ को, सामान्य बना दिया। अर्थात एक व्यक्ति दयाल शर्मा से बढ़ाकर, सभी शर्मा लोगों पर लागू कर दिया। इस प्रकार से उसका असंभव अर्थ कर दिया, जिस अर्थ को, पहले व्यक्ति ने कहा नहीं था।) यह सामान्य छल है।
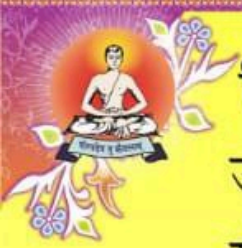
फिर पहला व्यक्ति (दूसरे व्यक्ति का खंडन करते हुए) उत्तर में बोला -- "यदि सारे शर्मा बुद्धिमान होते हैं, तो योगेन्द्र शर्मा मूर्ख क्यों है? वह भी तो शर्मा है ।"

दूसरा उदाहरण --

जैसे किसी ने कहा कि "मोहनलाल के खेत में चावल बहुत अच्छे उत्पन्न होते हैं ।" (यह सम्भव अर्थ है । यह बात एक विशेष खेत के संबंध में कही गई है ।)

तब दूसरे व्यक्ति ने कहा कि "यदि बीज अच्छे होंगे, तो किसी भी खेत में चावल अच्छे ही उत्पन्न होंगे ।" (दूसरे व्यक्ति ने, पहले व्यक्ति के वाक्य के विशेष अर्थ को, सामान्य बना दिया। मोहनलाल के एक खेत की सीमा से बढ़ाकर, सभी खेतों पर लागू कर दिया, और उसका असंभव अर्थ कर दिया। जिस अर्थ को, पहले व्यक्ति ने कहा नहीं था ।) यह सामान्य छल है ।

फिर पहला व्यक्ति (दूसरे व्यक्ति का खंडन करते हुए) उत्तर में बोला -- कि "यदि अच्छे बीज होने पर किसी भी खेत में चावल अच्छे उत्पन्न होते हैं, तो सुगनचंद के खेत में चावल अच्छे क्यों नहीं हुए, उसके बीज भी तो अच्छे ही थे?"

(इस प्रकार से, दूसरे व्यक्ति द्वारा की गई अर्थ की तोड़ मरोड़, वक्ता के अभिप्राय को बदल देने के कारण, छल कहलाता है। ऐसा नहीं करना चाहिए ।)

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,

रोजड़, गुजरात ।

उपचार छल की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

जब कोई व्यक्ति, एक वस्तु के धर्म (विशेषता) को, दूसरी वस्तु के धर्म (विशेषता) के नाम से कहता है, और वह धर्म दूसरी वस्तु में होता नहीं। यद्यपि वैसा कथन लोक व्यवहार में स्वीकृत है, फिर भी दूसरा व्यक्ति यदि उसका खंडन करता है, और ऐसा कहता है कि "यह धर्म तो इस वस्तु में हो ही नहीं सकता, फिर आप ऐसा क्यों कहते हैं?" अर्थात एक वस्तु का धर्म, दूसरी वस्तु के नाम से गौण कथन के रूप में कहना, इसको उपचार कहते हैं। इस उपचार को आधार बनाकर, दूसरे व्यक्ति द्वारा किया गया अनुचित खंडन, उपचार छल कहलाता है।

उदाहरण --

एक व्यक्ति बोला -- "आर्यसमाज का मंच पिछले 100 वर्षों से चिल्ला चिल्ला कर कह रहा है, कि ईश्वर कभी भी अवतार नहीं लेता।" (यह उपचार अर्थात गौण कथन है।)

दूसरा व्यक्ति बोला -- "मंच तो जड़ पदार्थ है, वह कैसे चिल्ला सकता है?"

(यह उपचार अर्थात गौण कथन को आधार बनाकर किया गया छल =उपचार छल है ।)

इस छल का खंडन ग्रन्थकार द्वारा --

उप = पास में । चार = ले जाना । उपचार = पास में ले जाना । अर्थात एक वस्तु का धर्म, दूसरी वस्तु के पास ले जाना, (उस के नाम से कहना) इसको उपचार कहते हैं । ऊपर के उदाहरण के अनुसार, "चिल्लाना" धर्म, मनुष्य का है । एक व्यक्ति, 'मनुष्य' के चिल्लाना धर्म को, 'मंच' के पास ले गया, और उसने मनुष्य के धर्म को, मंच के नाम से कह दिया, कि "मंच चिल्ला रहा है ।" तब दूसरा व्यक्ति बोला, "मंच कैसे चिल्ला सकता है? वह तो जड़ पदार्थ है ।" ऐसा खंडन करना अनुचित है। क्योंकि वक्ता का यह अभिप्राय नहीं था, कि मंच ही चिल्लाता है । उसने तो गौण अर्थ में यह कथन किया था। अब गौण कथन को, मुख्य कथन मानकर, दूसरे व्यक्ति द्वारा वक्ता के अभिप्राय को तोड़ मरोड़कर किया गया गलत खंडन, उपचार छल कहलाता है ।

संसार में शब्दों के मुख्य और गौण दोनों प्रकार के अर्थ प्रसिद्ध होते हैं। जब कहीं वक्ता ने गौण अर्थ में कुछ कथन किया हो, तो वहाँ उसके कथन से गौण अर्थ लेकर ही, विचार करना चाहिए। और यदि उसके कथन में कोई दोष हो, तभी उसका खंडन करना चाहिए। वक्ता द्वारा गौण अर्थ में कथन करने पर, दूसरे व्यक्ति द्वारा उसके कथन का मुख्य अर्थ लेकर, अपनी मनमानी से खंडन किया जाना अनुचित है।

इसमें अनुचितता क्या है? क्योंकि गौण कथन लोक व्यवहार में स्वीकृत है, इसलिये ऐसा कहने में दोष नहीं है। जब दोष नहीं है, फिर भी यदि कोई खंडन करे, तो यही अनुचितता है। उक्त उदाहरण में छलवादी अर्थात दूसरे व्यक्ति ने यही दोष किया है। यह पहले व्यक्ति का वास्तविक खंडन नहीं है। यह तो उसके द्वारा मनमानी से किया गया अनुचित खंडन है।

इसी प्रकार से, उपचार (गौण कथन) के अनेक उदाहरण लोक व्यवहार में प्रचलित हैं। जैसे किसी ने कहा, -

"मैं आटा पिसा कर आ रहा हूं." इस बात को सब लोग समझ लेते हैं, स्वीकार भी करते हैं। और कोई खंडन भी नहीं करता, कि "गेहूं पिसाया जाता है, आटा नहीं।" फिर भी यदि कोई व्यक्ति ऐसा खंडन करे, तो यह उपचार (गौण कथन) को आधार बनाकर किया गया गलत खंडन, उपचार छल कहलाएगा।

इसी प्रकार से एक अन्य उदाहरण है, कि किसी ने कहा - "दिल्ली स्टेशन आ गया." ऐसा कहने पर कोई नहीं कहता कि "रेलगाड़ी दिल्ली स्टेशन पर आई है, दिल्ली स्टेशन नहीं आया।" क्योंकि इस बात को सब समझते हैं, और स्वीकार भी करते हैं। फिर भी यदि कोई ऐसा खंडन करे, तो वह भी उपचार (गौण कथन) को आधार बनाकर किया गया गलत खंडन, उपचार छल कहलाएगा।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/1 से 37 तक)

जाति परिचय न्यायदर्शन --

जाति शब्द का अर्थ है -- चालाकी से खंडन करना। मुहावरे की भाषा में कहें - तो दूसरे पक्ष वाले, न्यायाधीशों और श्रोताओं सबको धोखा देना, उनकी आंखों में धूल झोंकना, मूर्ख बनाना, शब्दजाल फैलाकर उन्हें चक्कर में डालना इत्यादि। न्यायदर्शन में ऐसे कथन या व्यवहार को "जाति" नाम से कहा जाता है। इसका प्रयोग करना अनुचित एवं हानिकारक है।

जब वादी ने अपने पक्ष की स्थापना पंचावयव सहित बिल्कुल सही ढंग से पूरी कर दी। ऐसी स्थिति में प्रतिवादी देखता है, कि "अब इसका खंडन करने के लिए मेरे पास कोई उचित उत्तर तो है नहीं। वास्तव में मैं हार चुका हूं। मेरा पक्ष झूठ सिद्ध हो चुका है। फिर भी जीतने की भावना से थोड़ा प्रयास करता हूँ, कुछ शब्दजाल फैलाता हूँ। अगर वादी मेरे जाल में फँस गया, तो मैं जीत जाऊंगा। और यदि नहीं फँसा, तो मैं हार तो वैसे ही चुका हूं।

एक बार प्रयास करके देखने में क्या हानि है!" यह सोचकर वह अपना शब्दजाल फैलाता है, अर्थात चालाकी (धोखाधड़ी) से वादी का खंडन करता है। इसे जाति कहते हैं।

अधिकतर ये जातियां, हेत्वाभासों के आश्रय से व्यवहार में आती हैं। इनकी जानकारी अवश्य करनी चाहिए, ताकि हम चालाकी का प्रयोग न करें। और यदि दूसरा व्यक्ति चालाकी करे, तो हम उसकी चालाकी को समझकर उसे रोक सकें, तथा सत्य की रक्षा कर सकें।

न्यायदर्शन में साधर्म्यसमा, वैधर्म्यसमा, दृष्टांतसमा, नित्यसमा, कार्यसमा आदि 24 प्रकार की जातियाँ बताई गई हैं।*

24 प्रकार की जातियों की सूची * --

(न्याय सूत्र 5/1/1 से 37 तक)

1- साधर्म्यसमा जाति। 2- वैधर्म्य समा जाति।

3- उत्कर्षसमा जाति। 4- अपकर्ष समा जाति।

5- वर्ण्यसमा जाति। 6- अवर्ण्यसमा जाति।

7- विकल्पसमा जाति। 8- साध्यसमा जाति।

9- प्राप्तिसमा जाति। 10- अप्राप्तिसमा जाति।

11- प्रसंगसमा	जाति।	12- प्रतिदृष्टान्तसमा	जाति।
13- अनुत्पत्तिसमा	जाति।	14- संशयसमा	जाति।
15- प्रकरणसमा	जाति।	16- अहेतुसमा	जाति।
17- अर्थापत्तिसमा	जाति।	18- अविशेषसमा	जाति।
19- उपपत्तिसमा	जाति।	20- उपलब्धिसमा	जाति।
21- अनुपलब्धिसमा	जाति।	22-नित्यसमा	जाति।
23- अनित्यसमा	जाति।	24- कार्यसमा	जाति।

अगले लेखों में इन 24 जातियों को समझाया जाएगा।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/2 में)

साधर्म्यसमा जाति की परिभाषा

वादी के द्वारा दृष्टांत के वैधर्म्य से स्थापना करने पर, दृष्टान्त के साथ साध्य का किंचित साधर्म्य दिखाकर, जातिवादी के द्वारा अनुचित खंडन करना, साधर्म्यसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण --

1- वादी द्वारा वैधर्म्य से स्थापना।--

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु अनुत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह नित्य होती है। जैसे आत्मा।

आत्मा के समान, शब्द अनुत्पत्ति धर्म वाला नहीं है, अर्थात उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, साधर्म्यसमा जाति का प्रयोग करते हुए --

शब्द नित्य है। अस्पर्श वाला होने से। जो जो वस्तु अस्पर्श वाली होती है, वह वह नित्य होती है। जैसे आत्मा।

आत्मा के समान, शब्द भी अस्पर्श वाला है। इसलिए अस्पर्श वाला होने से, शब्द नित्य है।

प्रतिवादी द्वारा व्याख्या -- वादी ने आत्मा का दृष्टांत दिया है। आत्मा में स्पर्श गुण नहीं है। शब्द में भी स्पर्श गुण नहीं है। इसका अर्थ हुआ कि आत्मा और शब्द दोनों एक जैसे हैं। जब आत्मा नित्य है, तो शब्द भी आत्मा के समान नित्य सिद्ध हुआ, अनित्य नहीं।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

किंचित साधर्म्य दिखाकर किसी साध्य की सिद्धि नहीं होती। जैसे भैंस के भी सींग होते हैं, और गौ के भी सींग होते हैं। यह इन दोनों का किंचित साधर्म्य है। परंतु इतना थोड़ा सा (एक आध वस्तु = सींग का) साधर्म्य दिखाकर भैंस को गौ सिद्ध नहीं किया जा सकता।

बल्कि व्याप्ति पूर्वक विशेष साधर्म्य प्रस्तुत कर के किसी साध्य की सिद्धि होती है। जैसे गोत्व से गौ की। अर्थात (गलकम्बल, सींग, पूँछ, पाँव, कंधे पर उठा हुआ मांस = ककुद आदि) गौ के विशेष लक्षण यदि किसी प्राणी में मिलेंगे, तभी उसको गौ सिद्ध किया जा सकता है।

यहां पर जातिवादी ने यह चालाकी की है, कि आत्मा का और शब्द का थोड़ा सा साधर्म्य = (स्पर्श रहितता) को दिखाकर चालाकी से खंडन कर दिया। जबकि आत्मा के समान शब्द को नित्य तब माना जा सकता है, जब आत्मा के अनुत्पत्ति आदि विशेष लक्षण शब्द के तुल्य होवें।जैसे एक गौ के गलकम्बल आदि विशेष लक्षण, दूसरी गौ के तुल्य होते हैं।।

ऐसी स्थिति में वादी, न्यायाधीश महोदय से निवेदन करेगा, कि विपक्षी व्यक्ति ने मेरे पक्ष का अनुचित खंडन किया है। यह साधर्म्यसमा जाति का प्रयोग कर रहा है। चालाकी धोखाधड़ी कर रहा है। इसकी बात गलत है। कृपया आप न्यायपूर्वक ठीक ठीक निर्णय कर दीजिये।

तब न्यायाधीश लोग पूरी बात को समझ कर वादी के पक्ष में निर्णय कर देंगे, कि वादी का पक्ष ठीक है, और प्रतिवादी गलत बोल रहा है. अतः वादी जीत गया, और प्रतिवादी हार गया।

54 में से कोई भी गलती होने की स्थिति में, वादी और प्रतिवादी, इसी प्रकार से न्यायाधीशों से निवेदन करेंगे, और तब न्यायाधीश महोदय अपना निष्पक्ष निर्णय सुना देंगे। तब बातचीत समाप्त हो जाएगी।

जब वादी प्रतिवादी दो ही व्यक्ति आपस में बातचीत कर रहे हों, और वे न्यायाधीशों की आवश्यकता अनुभव न करते हों, तो वे दोनों ईमानदारी का प्रयोग करेंगे। तब जिसका पक्ष असिद्ध हो जाएगा, वह स्वयं स्वीकार कर लेगा, कि मेरी बात गलत है, आपकी बात सही है। मैं आपकी सत्य बात को स्वीकार करता हूं। इतना बोलने पर ही वह बातचीत समाप्त मानी जाएगी। अर्थात किसी चर्चा की समाप्ति पर ईमानदारी से ऐसा बोलना चाहिए। उसके बाद ही कोई दूसरी नई चर्चा आरंभ करनी चाहिए।।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/2 में)

2- वैधर्म्यसमा जाति की परिभाषा --

वादी के द्वारा दृष्टांत के साधर्म्य से स्थापना करने पर, दृष्टान्त के साथ साध्य का किंचित वैधर्म्य दिखाकर, जातिवादी के द्वारा चतुराई से अनुचित खंडन करना, वैधर्म्यसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण --

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना।--

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, (वैधर्म्यसमा जाति का प्रयोग करते हुए) --

शब्द नित्य है। अस्पर्श वाला होने से।

जो-जो वस्तु स्पर्शगुण वाली होती है, वह वह नित्य नहीं होती, अर्थात अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द, स्पर्शगुण वाला नहीं है, अर्थात अस्पर्श वाला है।

इसलिए अस्पर्श वाला होने से, शब्द नित्य है।

प्रतिवादी द्वारा व्याख्या -- वादी ने घड़े का दृष्टांत दिया है। घड़े में स्पर्श गुण है। जबकि शब्द में स्पर्श गुण नहीं है। इसका अर्थ हुआ कि घड़ा और शब्द दोनों एक जैसे नहीं हैं। इन दोनों में अंतर है। यदि स्पर्श गुण वाला घड़ा अनित्य है, तो शब्द तो स्पर्श वाला है नहीं। इसलिए शब्द, स्पर्श गुण रहित होने से, घड़े के समान अनित्य नहीं हो सकता, बल्कि शब्द तो नित्य है।

वादी द्वारा इसका उत्तर -- किंचित वैधर्म्य दिखाकर किसी साध्य की सिद्धि नहीं होती। जैसे घोड़े में सींग नहीं होते, तथा गौ में सींग होते हैं।

अब कोई व्यक्ति ऐसा कहे, कि "गाय एक पशु है। उसके सींग हैं। घोड़े के तो सींग हैं नहीं। इसलिए घोड़ा पशु कैसे हो सकता है?"

तो गौ और घोड़े में इतना थोड़ा सा सींग का वैधर्म्य दिखा कर यह सिद्ध नहीं किया जा सकता, कि घोड़ा पशु नहीं है।

बल्कि व्याप्ति पूर्वक विशेष वैधर्म्य प्रस्तुत कर के किसी साध्य की सिद्धि होती है। जैसे पक्षी और पशु की। अर्थात कोई ऐसा कहे कि गौ तो पशु है, परंतु कौआ पशु नहीं है। क्योंकि दोनों के लक्षण अलग अलग हैं। जैसे कि कौवे के पंख हैं। गौ के पंख नहीं हैं। कौआ आकाश में उड़ता है। गौ आकाश में नहीं उड़ती। कौए के दो पैर हैं, जबकि गौ के चार पैर हैं, इत्यादि। कौवे में पक्षी वाले लक्षण हैं, जबकि गौ में पशु वाले लक्षण हैं। इसलिए दोनों में विशेष वैधर्म्य होने से कौवे को पशु नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार से विशेष वैधर्म्य दिखाकर किसी बात को सिद्ध किया जा सकता है। परंतु यहां जातिवादी ने घड़े और शब्द में किंचित वैधर्म्य (स्पर्श गुण होना तथा न होना) दिखाकर चालाकी से वादी के पक्ष का खंडन किया है, यह अनुचित है।

एक अन्य उदाहरण --

किसी ने कहा -- अग्नि चेतन पदार्थ है। गर्म होने से। जो जो पदार्थ ठंडा होता है, वह वह जड़ होता है। जैसे पानी। अग्नि, पानी के समान ठंडी नहीं है, अर्थात गर्म है। इसलिए गर्म होने से अग्नि चेतन पदार्थ है।

इस प्रकार से किंचित वैधर्म्य दिखाकर यदि कोई व्यक्ति गलत बातें सिद्ध करने का प्रयास करे, तो वह वैधर्म्यसमा जाति के अंतर्गत आता है।

इन उदाहरणों से आप समझ सकते हैं कि कोई चालाक व्यक्ति न्यायविद्या का दुरुपयोग करके अग्नि जैसे जड़ पदार्थ को भी चेतन सिद्ध करने का झूठा प्रयास कर सकता है। इसी प्रकार से दुष्ट लोग इस विद्या का दुरुपयोग करके संसार में झूठ का प्रचार करते हैं, और लोगों को सत्य से दूर ले जाकर अविद्या रूपी अंधकार में भटका देते हैं। ऐसे लोगों से सावधान रहना चाहिए। यह तभी होगा, जब आप इस विद्या को गहराई से तथा ठीक ठीक समझेंगे।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/4 में)

3- उत्कर्षसमा जाति की परिभाषा --

जब उदाहरण का एक धर्म, साध्य में बढ़ा कर दिखाते हुए आरोप लगाया जाता है। अर्थात जब एक धर्म उदाहरण में तो हो, परन्तु वह धर्म साध्य में न हो, तब ऐसा कहा जाता है कि, "यदि उदाहरण और साध्य, दोनों एक समान हैं, तो उदाहरण वाला धर्म, साध्य में भी होना चाहिये।" इस प्रकार से उदाहरण और साध्य की असमानता दिखाकर खंडन करना, उत्कर्षसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण --

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना। --

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, उत्कर्षसमा जाति का प्रयोग करते हुए --

शब्द नित्य है। अस्पर्श वाला होने से। जो जो वस्तु स्पर्शगुण वाली होती है, वह वह नित्य नहीं होती, अर्थात अनित्य होती है। जैसे घड़ा। घड़े के समान, शब्द स्पर्शगुण वाला नहीं है, अर्थात अस्पर्श वाला है। इसलिए अस्पर्श वाला होने से, शब्द नित्य है।

प्रतिवादी द्वारा व्याख्या --

दृष्टान्त = घड़े में तो स्पर्श गुण है। जबकि साध्य = शब्द में स्पर्श गुण है नहीं। तो शब्द, घड़े के समान कैसे हो सकता है? यदि शब्द, घड़े के समान है, तो शब्द में भी घड़े वाला स्पर्श गुण होना चाहिये। जबकि शब्द में स्पर्श गुण है नहीं। इसलिए स्पर्श गुण वाला घड़ा भले ही अनित्य होवे, परंतु शब्द तो स्पर्श गुण रहित होने से, नित्य ही है।

वादी द्वारा इसका उत्तर -- यहाँ पर यह ध्यान देना चाहिए, कि संसार में किसी भी दृष्टांत और साध्य के सारे धर्म एक समान (=100% समान) नहीं होते हैं। दृष्टांत और साध्य इन दोनो में कुछ समानता होती है, और कुछ भिन्नता भी होती है। वादी ने जितने अंश में उदाहरण की साध्य के साथ समानता दिखाई है, उतने अंश में ही प्रतिवादी को ग्रहण करनी चाहिए। पूरी समानता मिलाने पर अव्यवस्था हो जाएगी। जबकि प्रतिवादी ने यही दोष यहाँ पर किया है। प्रतिवादी दृष्टान्त के सारे धर्म साध्य के साथ मिलाना चाहता है, जो कि न्याय नियम के विरुद्ध है।

अर्थात "दृष्टान्त = घड़े में जो स्पर्श गुण है, वह साध्य = शब्द में भी होना चाहिये, तभी शब्द, घड़े के समान हो सकता है।" ऐसे घड़े के स्पर्श गुण को, शब्द में बढ़ा कर दिखाते हुए, प्रतिवादी ने चतुराई से खंडन किया है। यह चालाकी से सिद्धांत पक्ष का अनुचित खंडन किया गया है।

एक अन्य उदाहरण --

वादी द्वारा साधर्म्य से पंचावयव --

आत्मा निराकार है।

परमाणुरहित होने से।

जो-जो वस्तु परमाणुरहित होती है, वह वह निराकार होती है।

जैसे ईश्वर।

ईश्वर के समान ही आत्मा भी परमाणुरहित है। इसलिए परमाणुरहित होने से, आत्मा निराकार है।

वादी द्वारा वैधर्म्य से पंचावयव --

आत्मा निराकार है।

परमाणुरहित होने से ।

जो जो वस्तु परमाणुरूप होती है , वह वह साकार होती है।

जैसे लोहा लकड़ी आदि। लोहा लकड़ी आदि के समान, आत्मा परमाणुरूप नहीं है। अर्थात परमाणुरहित है।

इसलिए परमाणुरहित होने से आत्मा निराकार है।

वादी की इस बात के उत्तर में प्रतिवादी लोग चालाकी से ऐसा कहते हैं। यदि आप आत्मा को निराकार मानेंगे, तो उसे सर्वव्यापक भी मानना पड़ेगा। क्योंकि जैसे निराकार ईश्वर सर्वव्यापक है, इसी प्रकार से यदि आत्मा भी निराकार हो, तो वह भी ईश्वर के समान सर्वव्यापक होना चाहिए। यदि आप आत्मा को सर्वव्यापक सिद्ध नहीं कर सकते, तो इससे सिद्ध होता है कि आत्मा निराकार नहीं, बल्कि एकदेशी होने से साकार है।

इन प्रतिवादियों के कथन में "उत्कर्षसमा जाति" का प्रयोग है।

ये लोग जो कह रहे हैं कि यदि आत्मा ईश्वर के समान निराकार है, तो वह ईश्वर के समान सर्वव्यापक भी होना चाहिए.

इसमें जो दृष्टांत ईश्वर का दिया गया है, उस दृष्टांत की एक विशेषता = व्यापकता को, साध्य अर्थात जीवात्मा में बढ़ा करके दिखला रहे हैं। यह उत्कर्षसमा जाति है। इस कथन में चालाकी से सत्य का खंडन किया जा रहा है। जो कि ईमानदारी नहीं, बल्कि धोखाधड़ी है।

- **स्वामी विवेकानंद परिव्राजक**
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/4 में)

4- अपकर्षसमा जाति की परिभाषा

जब कोई धर्म दृष्टांत में न हो, और वह धर्म साध्य में हो, तो उसे साध्य में से घटा कर दिखाते हुए आरोप लगाया जाता है, कि "यदि उदाहरण और साध्य, दोनों एक समान हैं, तो वह धर्म, दृष्टान्त के समान, साध्य में भी नहीं होना चाहिये। तभी दृष्टान्त, साध्य के समान होकर, साध्य को सिद्ध कर पाएगा।" इस प्रकार से दृष्टान्त और साध्य की असमानता दिखाकर, वादी के पक्ष का खंडन करना, अपकर्षसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण --

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना --

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, (अपकर्षसमा जाति का प्रयोग करते हुए) --

शब्द नित्य है। संयोग के नष्ट होने पर भी, नष्ट न होने से।

जो-जो वस्तु संयोग के नष्ट होने पर, नष्ट हो जाती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द, संयोग के नष्ट होने पर भी, नष्ट नहीं होता, अर्थात रहता ही है। इसलिए संयोग के नष्ट होने पर भी, नष्ट न होने से, शब्द नित्य है।

प्रतिवादी द्वारा व्याख्या --

वादी कहता है, जैसा घड़ा है, वैसा ही शब्द है। वादी की यह बात ठीक नहीं है। क्योंकि घड़े के अवयवों (=मिट्टी के कणों) का संयोग नष्ट होने पर, घड़ा भी नष्ट हो जाता है। यदि शब्द भी घड़े के समान हो, तो डण्डे और ढोल के संयोग से शब्द उत्पन्न होता है। डण्डे और ढोल का संयोग नष्ट होने पर घड़े के समान, शब्द भी नष्ट हो जाना चाहिए। परंतु डण्डे और ढोल का संयोग नष्ट होने के बाद भी, शब्द तो सुनाई देता है, वह नष्ट नहीं होता।इसलिए घड़े के समान, शब्द नहीं है।

अर्थात घड़ा भले ही अनित्य हो, शब्द तो नष्ट न होने से, नित्य ही है।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

यहाँ पर यह ध्यान देना चाहिए, कि दृष्टांत और साध्य के सारे धर्म एक समान नहीं होते हैं। दोनों में कुछ मात्रा में समानता होती है। और कुछ मात्रा में भिन्नता भी होती है। जातिवादी = प्रतिवादीदृष्टान्त के सारे धर्म, साध्य के साथ मिलाना चाहता है, जो कि न्याय नियम के विरुद्ध है।

जैसे दृष्टांत = घड़े में यह धर्म है, कि यदि उसका कारण (=मिट्टी के कणों का संयोग), न रहे, तो घड़े का अस्तित्व नहीं रहता। परंतु साध्य = शब्द का कारण (अर्थात ढोल और डण्डे का संयोग) न रहने पर भी, शब्द का अस्तित्व तो रहता है। अतः कारण के नष्ट हो जाने पर, घड़े के समान, शब्द का अस्तित्व भी नहीं रहना चाहिए।

जब कोई भी दृष्टांत 100% साध्य के तुल्य नहीं होता, तो घड़ा भी 100% शब्द के तुल्य नहीं होगा। इसलिये इस व्यवस्था का अनुचित लाभ लेते हुए, जातिवादी चतुराई से दृष्टांत वाले धर्म को, साध्य में से घटाकर जो आरोप लगाता है, यह धोखा देने वाली बात है, ईमानदारी की नहीं। इससे न तो शब्द की नित्यता सिद्ध होती है, और न ही शब्द के अनित्य होने का खण्डन होता है।

अन्य उदाहरण --

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना --

ईश्वर चेतन है। देखने सुनने वाला होने से। जो जो पदार्थ देखता सुनता है, वह वह चेतन होता है। जैसे आत्मा। आत्मा के समान ईश्वर भी देखता सुनता है। इसलिए देखने सुनने वाला होने से ईश्वर चेतन है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, (अपकर्षसमा जाति का प्रयोग करते हुए) --

वादी ने कहा, कि ईश्वर, आत्मा के समान है। वादी की यह बात ठीक नहीं है। क्योंकि आत्मा तो सर्वव्यापक नहीं है, जबकि ईश्वर सर्वव्यापक है; इसलिए दोनों एक समान नहीं हैं। यदि आत्मा और ईश्वर दोनों एक समान होते, तो जैसे आत्मा, सर्वव्यापक नहीं है, वैसे ही ईश्वर भी सर्वव्यापक नहीं होना चाहिए। तभी आत्मा का दृष्टांत, ईश्वर के तुल्य होगा और ईश्वर को चेतन सिद्ध कर पाएगा।

यह अपकर्षसमा जाति का प्रयोग है। आप देखिए, लोग चालाकी से न्याय विद्या का दुरुपयोग करते हुए, कितनी गलत बातों का प्रचार करते हैं!

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/4 में)

5- वर्ण्यसमा जाति की परिभाषा --

वर्ण्य का अर्थ है, जिसका अभी वर्णन करना है। अर्थात जो अभी सिद्ध नहीं है, साध्य है। क्योंकि पंचावयव में उदाहरण और साध्य की समानता होती है। इस समानता का आधार लेकर जातिवादी चालाकी से कहता है, कि "यदि उदाहरण और साध्य दोनों समान हैं, तो उदाहरण भी साध्य के तुल्य साध्य है, अर्थात असिद्ध है." इस प्रकार से सिद्ध उदाहरण को भी, साध्य कहते हुए आरोप लगाना, वर्ण्यसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण --

1- वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना।--

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, वर्ण्यसमा जाति का प्रयोग करते हुए --

वादी ने कहा कि जैसा उदाहरण है, वैसा ही साध्य है । दोनों एक समान हैं । तो हमारा कथन यह है, कि -- जैसे प्रतिज्ञा अभी साध्य अर्थात असिद्ध है। ऐसे ही यदि उदाहरण भी प्रतिज्ञा के समान है, तो उदाहरण भी साध्य अर्थात असिद्ध है। जब उदाहरण स्वयं ही सिद्ध नहीं है, तो वह साध्य की सिद्धि कैसे कर पाएगा? इसलिए आपके पक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती ।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

जातिवादी ने यहां चतुराई का प्रयोग करके ऐसा कहा है, कि जैसे प्रतिज्ञा अभी साध्य अर्थात असिद्ध है। ऐसे ही यदि उदाहरण भी प्रतिज्ञा के समान है, तो उदाहरण भी साध्य अर्थात असिद्ध है ।

जातिवादी का यह कथन बिल्कुल झूठ है, और न्यायविद्या के विरुद्ध है। न्यायविद्या में उदाहरण की परिभाषा ही यही है, जो दोनों पक्षों को स्वीकार हो, अर्थात दोनों पक्ष वाले लोगों की दृष्टि में एक समान स्वीकृत हो, सिद्ध हो, वही उदाहरण होता है।

जब उदाहरण दोनों पक्षों को पहले से ही स्वीकृत है, सिद्ध है, तो ऐसी स्थिति में उदाहरण को साध्य कहना, कोरा झूठ ही तो है। और ऐसे झूठ बोलकर लोगों को बहकाना जातिवादी का

अत्यंत अनुचित कार्य है। यदि प्रतिवादी के कथनानुसार उदाहरण को असिद्ध मान लिया जाए, तो यह अव्यवस्था उत्पन्न होगी, कि किसी भी साध्य की सिद्धि नहीं हो पाएगी। क्योंकि सारे ही उदाहरण साध्य के समान असिद्ध होंगे।

सूचना -- इस वर्ण्यसमा जाति का प्रयोग करते समय केवल इन्हीं सामान्य शब्दों से आरोप लगाया जाता है, कि जैसे प्रतिज्ञा अभी साध्य अर्थात असिद्ध है। ऐसे ही उदाहरण भी प्रतिज्ञा के समान होने से, साध्य अर्थात असिद्ध है। उदाहरण के रूप में कोई घट वस्त्र आदि निश्चित वस्तु का नाम लेकर खण्डन नहीं किया जाता।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/4 में)

6- अवर्ण्यसमा जाति की परिभाषा --

अवर्ण्य का अर्थ है, जो वर्णन करने योग्य नहीं है, सिद्ध करने योग्य नहीं है, अर्थात सिद्ध है। वह है उदाहरण। क्योंकि उदाहरण तो पहले से ही सिद्ध होता है। साध्य अभी सिद्ध करना बाकी है, और वह पंचावयव में उदाहरण के समान होता है। तो "जब उदाहरण के समान साध्य भी सिद्ध ही है। तो फिर आप व्यर्थ ही बात बढ़ा कर समय क्यों नष्ट कर रहे हैं।" ऐसा कह कर वादी का खंडन करना, अवर्ण्यसमा जाति कहलाती है।

*उदाहरण --1-

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना। --

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, अवर्ण्यसमा जाति का प्रयोग करते हुए --

वादी ने कहा कि जैसा उदाहरण है, वैसा ही साध्य है। दोनों एक समान हैं। तो हमारा कथन यह है, कि -- "जब उदहारण और साध्य एक समान हैं, तो जैसे उदाहरण सिद्ध है, वैसे ही साध्य भी सिद्ध है। जब साध्य और उदाहरण दोनों ही सिद्ध हैं, तो फिर आप सिद्ध क्या करना चाहते हैं? यूं ही सबका समय नष्ट करने से क्या लाभ?"

*वादी द्वारा इसका उत्तर --

उदाहरण पहले से सिद्ध होता है। दोनों पक्षों को स्वीकृत होता है। इसलिए उदाहरण को अवर्ण्य कहते हैं। पंचावयव में उदाहरण और साध्य की सामानता दिखाई जाती है। जातिवादी इसी बात को आधार बनाकर चालाकी से खंडन करता है कि, "जब साध्य और उदाहरण दोनों ही सिद्ध हैं, तो फिर आप सिद्ध क्या करना चाहते हैं?"

यहां जातिवादी को वादी के द्वारा स्थापित पक्ष का खंडन करना चाहिए था। वह तो उससे हो नहीं पाया। इसलिए उसने चालाकी से साध्य को भी उदाहरण के तुल्य सिद्ध बता दिया। इस प्रकार से दोनों को एक समान बताकर, व्यर्थ की बात कह कर, लोगों को भ्रमित करने का

उसने कुत्सित प्रयास किया है। इस प्रकार का प्रयास करना, न्याय विद्या का दुरुपयोग एवं अत्यंत अनुचित कार्य है।

यदि प्रतिवादी के कथनानुसार साध्य को उदाहरण के समान पहले से ही सिद्ध मान लिया जाए, तो यह अव्यवस्था उत्पन्न होगी, कि किसी भी साध्य की सिद्धि करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। क्योंकि सारे ही पदार्थ, उदाहरण के समान पहले से ही सिद्ध होंगे। इस स्थिति में न तो किसी विषय पर चर्चा बातचीत होगी, और न ही न्याय विद्या की आवश्यकता रहेगी। यह तो प्रत्यक्ष प्रमाण के विरुद्ध है।

सूचना -- इस अवर्ण्यसमा जाति का प्रयोग करते समय भी केवल इन्हीं सामान्य शब्दों से आरोप लगाया जाता है, कि जैसे उदाहरण सिद्ध है, तो उसके समान होने से, साध्य भी सिद्ध है। उदाहरण के रूप में कोई घट वस्त्र आदि निश्चित वस्तु का नाम लेकर खण्डन नहीं किया जाता।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

7- विकल्पसमा जाति की परिभाषा --

दृष्टान्त में साध्य को सिद्ध करने वाला धर्म (हेतु) व्याप्तिपूर्वक व्यवस्थित होने पर भी, उदाहरण के धर्मों में विकल्प दिखाकर, साध्य में धर्म का विकल्प आरोपित करते हुए, स्थापना वादी के पक्ष का खंडन करना, विकल्पसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण --

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना --

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान, शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, विकल्पसमा जाति का प्रयोग करते हुए

उत्पत्ति धर्म वाली वस्तुओं में धर्मों का विकल्प देखा जाता है। जैसे, उत्पत्ति धर्म वाली कुछ वस्तुएँ स्पर्श गुण वाली होती हैं,

जैसे घड़ा आदि। और कुछ अस्पर्श वाली भी होती हैं, जैसे सुख दुःख आदि। इसी प्रकार से, उत्पत्ति धर्म वाली कुछ वस्तुएँ अनित्य होती हैं, जैसे घड़ा आदि। और कुछ वस्तुएँ नित्य होती हैं, जैसे प्रध्वंसाभाव आदि। अतः शब्द भी, उत्पत्ति धर्म वाला होते हुए, प्रध्वंसाभाव के समान, नित्य ही है।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

यहां जातिवादी ने स्थापना वादी के हेतु (उत्पत्ति धर्म) का सीधा कोई उत्तर नहीं दिया। बल्कि चतुराई से उत्पत्ति धर्म वाले घड़े और सुख दुख में, धर्म का विकल्प (स्पर्श और अस्पर्श) दिखाया। वैसे ही इसी धर्म विकल्प को आधार बनाकर, उत्पत्ति वाले पदार्थों में धर्म विकल्प (नित्यता और अनित्यता) को आरोपित कर दिया। इस प्रकार से शब्द को नित्य सिद्ध करने का मिथ्या प्रयत्न किया है।

यह न्याय नहीं है। जातिवादी को, स्थापना वादी के हेतु या दृष्टांत का खंडन करना चाहिए था, जो कि वह कर नहीं पाया। इसलिए उसने इस जाति (चालाकी) का प्रयोग किया, जो कि गलत है।

प्रश्न - इन अनेक जातियों में उदाहरण लगभग एक समान हैं, तो इन जातियों के नाम अलग-अलग किस आधार पर रखे गए हैं?

उत्तर - ऊपर लिखी प्रत्येक जाति की परिभाषा को ध्यान से पढ़ें। यद्यपि अनेक जातियों में उदाहरण एक समान हैं। फिर भी जातियों की परिभाषा के अनुसार, जिस-जिस दृष्टिकोण से जातिवादी, स्थापनावादी पर आरोप लगाता है, तथा जिस भाषा में आरोप लगाता है, उसी के आधार पर उस जाति का नामकरण कर दिया जाता है। जैसे -- जहां दृष्टांत के साथ साध्य का थोड़ा सा "वैधर्म्य" दिखाकर, जातिवादी आरोप लगाता है, वहां उस जाति का नाम वैधर्म्यसमा जाति रख दिया जाता है। जहां दृष्टांत का एक "धर्म, साध्य में बढ़ाकर" दिखाते हुए आरोप लगाया जाता है, उसका नाम उत्कर्षसमा जाति रख दिया जाता है। ऐसे ही सब जातियों के नामकरण के विषय में समझ लेना चाहिए।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/4 में)

8- साध्यसमा जाति की परिभाषा --

हेतु, उदाहरण, उपनय तथा निगमन, इन चारों अवयवों का सामर्थ्य यह होता है, कि ये सब मिलकर साध्य अर्थात प्रतिज्ञा को सिद्ध कर देते हैं। जब तक ये सिद्ध नहीं करते, तब तक प्रतिज्ञा साध्य है। इस प्रतिज्ञा (साध्य) के समान, दृष्टांत को भी साध्य बतला कर, स्थापनावादी का खंडन करना, साध्यसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण --

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना। --

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान, शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, साध्यसमा जाति का प्रयोग करते हुए

वादी ने दृष्टांत और साध्य अर्थात् घड़े और शब्द में समानता दिखायी है कि "घड़े के समान, शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है।”

यदि घड़ा और शब्द एक समान हैं। "जैसा घड़ा है, वैसा ही शब्द है।" तो इससे यह भी सिद्ध हुआ कि "जैसा शब्द है, वैसा ही घड़ा भी है।" तो जैसे शब्द, साध्य (असिद्ध) है, वैसे ही घड़ा भी साध्य (असिद्ध) है। जब घड़ा स्वयं ही असिद्ध है, तो वह शब्द रूपी साध्य की सिद्धि कैसे करेगा? नहीं कर पाएगा। इसलिये वादी के कथन से कुछ भी सिद्ध नहीं होता।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

यहाँ पर जातिवादी के द्वारा 'सिद्ध' दृष्टांत को 'असिद्ध' कहकर वादी का खंडन किया गया है। यहाँ भी जातिवादी के कथन में चालाकी का प्रयोग है। क्योंकि यह बात तो प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है, कि दृष्टान्त = घड़ा अनित्य है। ऐसे में दृष्टान्त = घड़े को साध्य कहना अत्यंत अनुचित है। जातिवादी के ऐसे कथन भोले भाले लोगों को ठगने के लिए होते हैं। यह कोई ईमानदारी की बात नहीं हैं।

नोट -- वर्ण्यसमा जाति और साध्यसमा जाति, ये दोनों मिलती जुलती हैं। दोनों में केवल इतना ही अंतर है कि, वर्ण्यसमा जाति में सामान्य शब्दों का प्रयोग किया गया था कि उदाहरण, साध्य के समान असिद्ध है। और यहां साध्यसमा जाति में विशेष वस्तुओं के नाम लेकर, शब्दों का प्रयोग किया गया है। कि घड़ा, शब्द के समान असिद्ध है।

साध्यसम हेत्वाभास और साध्यसमा जाति में अंतर ।

1- साध्यसम हेत्वाभास -- इसमें प्रतिज्ञा को प्रस्तुत करके उसकी सिद्धि के लिए जो हेतु दिया जाता है, वह हेतु स्वयं सिद्ध नहीं है । प्रतिज्ञा के समान, वह हेतु स्वयं सिद्ध करने योग्य है । जैसे -

प्रतिज्ञा - छाया एक द्रव्य है ।

हेतु - गति वाली होने से ।

यह जो हेतु दिया है - गति वाली होने से ।

अभी यह भी सिद्ध नहीं है कि छाया में गति होती भी है या नहीं । इसलिए यह हेतु , स्वयं साध्य होने से, हेत्वाभास है ।

2- साध्यसमा जाति --

साध्यसमा जाति में ऐसा कहा जाता है, कि जो दृष्टान्त घड़ा है, वह साध्य है, अर्थात प्रतिज्ञा (शब्द अनित्य है) के तुल्य सिद्ध करने योग्य है । तो यहां दृष्टांत को साध्य बताया गया है ।

वहां हेतु सिद्ध नहीं है । यहाँ दृष्टांत को साध्य बता रहे हैं । यह अंतर है ।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात ।

9- प्राप्तिसमा जाति की परिभाषा --

हेतु, साध्य से संबद्ध होकर साध्य की सिद्धि नहीं कर सकता है। क्योंकि हेतु और साध्य, इन दोनों का संबंध होने पर, दोनों एक समान हो जाने से, यह पता नहीं चलेगा, कि कौन किसको सिद्ध कर रहा है? (हेतु साध्य को सिद्ध कर रहा है, या साध्य हेतु को?) इसलिए "हेतु, साध्य को प्राप्त होकर अर्थात संबद्ध होकर साध्य की सिद्धि नहीं कर सकता।" इस प्रकार से कहकर खंडन करना, प्राप्तिसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण 1 --

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना --

पर्वत में अग्नि है। धुएँ के होने से। जहाँ जहाँ धुआं होता है, वहाँ वहाँ अग्नि होती है। जैसे पाकशाला आदि में। पाकशाला आदि के समान, पर्वत में भी धुआँ है। इसलिये धुएँ के होने से, पर्वत में अग्नि है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, प्राप्तिसमा जाति का प्रयोग करते हुए

अग्नि और धुएँ का संबंध होने पर यह प्रश्न उपस्थित होगा कि - अग्नि, धुएँ को सिद्ध करती है? या धुआँ, अग्नि को?

यदि अग्नि साध्य और धुआँ हेतु हो, तो धुआँ साध्य, और अग्नि हेतु क्यों नहीं? क्योंकि संबंध तो दोनों का समान रूप से है।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

धुएँ और अग्नि में कार्यकारणसम्बन्ध है। अतः व्याप्ति सम्बन्ध से, धुआं हेतु बनेगा, अग्नि नहीं। क्योंकि अग्नि, धुएँ के बिना भी हो सकती है। जबकि धुआं, अग्नि के बिना नहीं हो सकता। व्याप्ति इस प्रकार से बनेगी कि -- "जहां जहां धुआँ होता है, वहां वहां अग्नि होती है।" इस व्याप्ति के अनुसार धुएं ने अग्नि को सिद्ध किया। इससे यह बात स्पष्ट है, कि धुआं हेतु बना, और अग्नि साध्य बनी।

यहां जातिवादी चालाकी से, वादी को उलझाने का प्रयत्न कर रहा है, कि हेतु और साध्य, दोनों का संबंध होने पर पता नहीं चलेगा, कि कौन किसको सिद्ध कर रहा है। यह शब्दजाल फैला कर, केवल उलझाने वाली बात है, वास्तविकता नहीं।

उदाहरण 2 --

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना --

जहाँ जहाँ हेतु साध्य के साथ संबद्ध हो जाता है, वहाँ वहाँ साध्य की सिद्धि हो जाती है। जैसे - डंडा, घड़े से संबद्ध होकर घड़े को तोड़ देता है। डंडे और घड़े के समान, जहां जहां भी हेतु का साध्य के साथ संबंध हो जाता है, वहां वहां पर, हेतु द्वारा साध्य की सिद्धि हो जाती है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, प्राप्तिसमा जाति का प्रयोग करते हुए --

यदि हेतु (डंडा), साध्य (घड़े) को प्राप्त = (संबद्ध) होकर सिद्ध करेगा = (तोड़ेगा), तो यह निर्णय कैसे होगा कि - "हेतु ने साध्य को प्राप्त किया? या साध्य ने हेतु को?" दोनो के संयोग में यह निर्णय कैसे होगा कि कौन हेतु है, और कौन साध्य है? अतः बिना निर्णय के, हेतु से साध्य की सिद्धि नहीं हो पाएगी।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

साध्य और हेतु कोई निश्चित पदार्थ नहीं है। व्यवहार में यह देखा जाता है, कि जब एक वस्तु, किसी दूसरी वस्तु को सिद्ध करती है। वह जिस भी वस्तु को सिद्ध करती है, उसका नाम "साध्य" होता है। और उस वस्तु को सिद्ध करने वाले साधन का नाम "हेतु" होता है। अब चाहे डंडा, घड़े के पास जाए। अथवा घड़ा, डण्डे के पास आए, दोनों स्थितियों में घड़े को तोड़ने का साधन तो डण्डा ही रहेगा। इसलिए डण्डा "हेतु" है, और टूटने वाला घड़ा "साध्य" है। इस प्रकार से हेतु और साध्य का निर्णय हो जाएगा, और हेतु साध्य को प्राप्त (संबद्ध) होकर उसकी सिद्धि कर देगा।।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

भाग 37

10- अप्राप्तिसमा जाति की परिभाषा --"

हेतु यदि साध्य से दूर हो, तो साध्य के साथ असंबद्ध होने से, साध्य की सिद्धि नहीं कर सकता।" ऐसा कह कर वादी का खंडन करना, अप्राप्तिसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण 1 --

प्रतिवादी द्वारा खंडन, अप्राप्तिसमा जाति का प्रयोग करते हुए

1- यदि हेतु (मनुष्य), साध्य (घड़े) से 10 फुट दूर ही रहे, तो इतनी दूरी से वह साध्य (घड़े) को तोड़ नहीं पाएगा।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

यदि घड़ा तोड़ना हो, तो दूर से पत्थर फेंक कर भी तोड़ सकते हैं। ऐसे दूर से भी हेतु से साध्य की सिद्धि हो जाती है। भौतिक रूप से हेतु (मनुष्य) को, साध्य (घड़े) तक पहुँचना अनिवार्य नहीं है।

उदाहरण 2 --

प्रतिवादी द्वारा खंडन, अप्राप्तिसमा जाति का प्रयोग करते हुए

जैसे एक कमरे में रखा हुआ दीपक, भौतिक रूप से दूर रहते हुए, दूसरे कमरे में रखी हुई वस्तुओं को प्रकाशित नहीं कर सकता।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

यदि दोनों कमरों के बीच वाला दरवाजा खोल दिया जाए, तो एक कमरे में रखा हुआ दीपक, भौतिक रूप से दूर होते हुए भी, दूसरे कमरे में रखी हुई वस्तुओं को प्रकाशित कर देगा। ऐसे ही दूर से भी हेतु से साध्य की सिद्धि हो जाती है।।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/9 में)

11- प्रसंगसमा जाति की परिभाषा

वादी के द्वारा अपना पक्ष प्रस्तुत करने पर, उसमें जो दृष्टांत दिया जाता है, उस दृष्टांत पर प्रतिवादी द्वारा आपत्ति उठाई जाती है, कि "आपने जो दृष्टांत प्रस्तुत किया है, वह दृष्टांत कोटि में कैसे आया? इसका कारण तो आपने बताया ही नहीं।" इस प्रकार से जातिवादी द्वारा, स्थापना वादी का खंडन करना, प्रसंगसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण --

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना।--

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, प्रसंगसमा जाति का प्रयोग करते हुए --

आप ने शब्द की अनित्यता सिद्ध करने के लिए, घड़े का उदाहरण दिया। "घड़ा, दृष्टान्त के रूप में, साध्य की सिद्धि कर रहा है। परंतु वह दृष्टान्त की कोटि में कैसे आया? इसका कारण तो आपने बताया नहीं।" आप पहले घड़े के विषय में यह बतलाएँ, कि घड़ा दृष्टांत कोटि में आया कैसे?

वादी द्वारा इसका उत्तर --

जैसे एक दीपक को देखने के लिए दूसरा दीपक नहीं चाहिए। वह दीपक अपने प्रकाश से स्वयं ही दिखाई देता है। ठीक इसी प्रकार से दृष्टांत स्वयं सिद्ध होता है। उसको सिद्ध करने के लिए कोई और कारण बताने की आवश्यकता नहीं होती। दृष्टान्त तो कहते ही उसको हैं कि "जिसको दोनों पक्ष पहले से ही स्वीकार करते हैं।" फिर यह तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, कि, घड़ा दृष्टान्त की कोटि में आया कैसे? इसका कारण तो आपने बताया नहीं।

इस प्रकार से जातिवादी द्वारा चालाकी से स्थापनावादी का व्यर्थ ही खण्डन करना, "दूसरों की आंख में धूल झोंकने" के समान है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,

रोजड़, गुजरात।

12- प्रतिदृष्टांतसमा जाति की परिभाषा--

जब वादी पंचावयव द्वारा अपने पक्ष की सिद्धि कर देता है। तब प्रतिवादी अपने पक्ष में, "वादी के दृष्टान्त के विपरीत, एक विरोधी दृष्टांत प्रस्तुत कर के वादी के पक्ष का खंडन करता है।" इस प्रकार से किया जाने वाला खंडन, प्रतिदृष्टांतसमा जाति कहलाती हैं।

*उदाहरण --

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना।

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, प्रतिदृष्टांतसमा जाति का प्रयोग करते हुए

शब्द नित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से।

प्रध्वंसाभाव के समान। जैसे प्रध्वंसाभाव उत्पन्न होकर, नष्ट नहीं होता। इसी प्रकार से शब्द भी उत्पन्न होकर, नष्ट नहीं होता। अतः शब्द नित्य है।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

हमने अपने पक्ष की सिद्धि में हेतु भी दिया और दृष्टांत भी प्रस्तुत किया। प्रतिवादी ने न तो हमारे हेतु, या दृष्टान्त का खंडन किया, और न ही कोई अपना हेतु प्रस्तुत किया। केवल एक प्रतिदृष्टांत प्रस्तुत कर दिया। इतने मात्र से हमारा दृष्टान्त अपने पक्ष का असाधक नहीं हो जाता। "जब तक प्रतिवादी, हमारे दृष्टांत को गलत सिद्ध न कर दे, तब तक हमारा दृष्टान्त सही है, और जब तक वह सही है, तब तक अपने पक्ष को सिद्ध करता ही है।" इसलिए प्रतिवादी के द्वारा, केवल प्रतिदृष्टान्त प्रस्तुत करने मात्र से, हमारे पक्ष का वास्तविक खंडन नहीं होता। यह तो प्रतिवादी द्वारा प्रतिदृष्टांतसमा जाति के माध्यम से अर्थात चालाकी से सबको धोखा दिया जा रहा है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/12 में)

13- अनुत्पत्तिसमा जाति की परिभाषा"

किसी वस्तु के उत्पन्न होने से पूर्व, उसकी उत्पत्ति के कारण का अभाव दिखा कर, चालाकी से उस अनित्य वस्तु को नित्य बताना," अनुत्पत्तिसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण --

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना।

शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होता है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, अनुत्पत्तिसमा जाति का प्रयोग करते हुए --

शब्द के उत्पन्न होने से पहले, शब्द की अनित्यता का कारण (प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होना) नहीं था। क्योंकि जब शब्द की उत्पत्ति का कारण = (प्रयत्न) ही नहीं है, तो शब्द की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? जब उत्पत्ति नहीं हुई, तो शब्द की अनुत्पत्ति हो गयी। अनुत्पत्ति होने से, यह सिद्ध हो गया, कि शब्द नित्य है।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

जब शब्द उत्पन्न हो जाएगा, तभी उसका नाम 'शब्द' होगा। उत्पन्न होने से पूर्व, जब वह है ही नहीं, तो उसे 'शब्द' कहना ही ग़लत है। जब शब्द उत्पन्न हो जाएगा, तब शब्द की अनित्यता का कारण भी (प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से,) निश्चित रूप से होगा ही। क्योंकि यह नियम है, कि जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह किसी कारण से ही उत्पन्न होती है, और जो कारण से उत्पन्न होती है, वह अनित्य भी होती ही है। जैसे घड़ा। अतः प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, घड़े के समान, शब्द अनित्य है।

(नोट -- वास्तव में यहाँ वादी का हेतु ठीक नहीं है, यह "अनैकांतिक हेत्वाभास" है। क्योंकि प्रयत्न के बाद उत्पत्ति और अभिव्यक्ति दोनों ही होते हैं। इस प्रकार से यहां वादी ने असावधानी से हेतु प्रस्तुत किया, और गलती कर दी है। इसका वास्तविक खण्डन 24वीं जाति के रूप में "कार्यसमा जाति" के नाम से आगे दिखाया जाएगा। फिर भी जातिवादी ने यहाँ पर भी शब्द की अनुत्पत्ति दिखाकर चतुराईपूर्वक उसका खण्डन कर दिया है, जो कि अनुचित है। इससे हमें यह सीखने को मिलता है, कि दोनों पक्ष वालों (वादी और प्रतिवादी) को बोलते समय बहुत सावधानी से बोलना चाहिए, तथा गलतियों से बचना चाहिए।)

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,

रोजड़, गुजरात।

14- संशयसमा जाति की परिभाषा --

वादी द्वारा अपना पंचावयव प्रस्तुत कर देने पर, जब प्रतिवादी कहता है, कि "साध्य का साधर्म्य, नित्य पदार्थ के साथ भी है, और अनित्य के साथ भी है। इसलिए संशय तो निवृत्त हुआ नहीं, कि साध्य, नित्य है या अनित्य।" इस प्रकार से संशय दिखाकर खंडन करना, संशयसमा जाति कहलाती है।*

उदाहरण --

1- वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना।

शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होता है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है।

*प्रतिवादी द्वारा खण्डन, संशयसमा जाति का प्रयोग करते हुए *

घट ऐंद्रियक है, और अनित्य है। जाति भी ऐंद्रियक है, परंतु जाति नित्य है। ऐसे ही शब्द भी ऐंद्रियक है। अब शब्द के प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न

होने वाला होने पर भी, शब्द का, अनित्य घट, और नित्य जाति, इन दोनों के साथ 'ऐंद्रियकत्व' साधर्म्य होने से यह संशय बना ही रहता है कि शब्द को, घट के समान अनित्य मानें, या जाति के समान नित्य?

वादी द्वारा इसका उत्तर --

'प्रयत्न के अनन्तर शब्द की उत्पत्ति होती है,' यह शब्द का विशेष धर्म है। 'इंद्रियग्राह्यता', जाति तथा घट का सामान्य धर्म हैं। इन दोनों का यह सामान्य धर्म, शब्द में भी है। सामान्य धर्म से संशय बना रहता है, परंतु विशेष धर्म से संशय नहीं रहता। यदि सामान्य धर्म और विशेष धर्म, दोनों को जान कर भी संशय बना रहे, तो संशय सदा ही बना रहेगा, कभी हटेगा ही नहीं। परंतु ऐसा तो नहीं होता। विशेष धर्म की जानकारी होने पर संशय हट ही जाता है। जैसे मनुष्य और ठूंठ में संशय होने पर, मनुष्य का विशेष धर्म = हाथ पैर हिलना, देख लेने पर, संशय हट जाता है।

वस्तुओं में साधर्म्य तो संशय हटने के बाद भी सदा ही रहता है। जबकि संशय सदा नहीं रहता, संशय की नित्यता न होने से, विशेष धर्म की प्राप्ति हो जाने पर, संशय हट जाता है। इसलिए जातिवादी ने चतुराई से यह अनुचित खंडन किया है। यह वादी के पक्ष का वास्तविक खंडन नहीं कहलाता।।

प्रतिदृष्टांतसमा और संशयसमा जाति में अंतर

प्रतिदृष्टांतसमा जाति में --

हेतु वही रहता है, उदाहरण नया होता है। जैसे -

वादी --

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी --

शब्द नित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से।

प्रध्वंसाभाव के समान।

संशयसमा जाति में --

वादी के उदाहरण के साथ, नया हेतु और नया उदाहरण देकर, वादी के उदाहरण के भिन्न धर्मों को आधार बनाकर संशय उत्पन्न किया जाता है। जैसे --

वादी --

शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होता है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी --

घट ऐंद्रियक है, और अनित्य है। जाति भी ऐंद्रियक है, परंतु जाति नित्य है। ऐसे ही शब्द भी ऐंद्रियक है। अब शब्द के प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने पर भी, शब्द का, अनित्य घट, और नित्य जाति, इन दोनों के साथ ऐंद्रियकत्व साधर्म्य होने से यह संशय बना ही रहता है कि शब्द को, घट के समान अनित्य मानें, या जाति के समान नित्य?

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/16 में)

15- प्रकरणसमा जाति की परिभाषा --

वादी अनित्य पदार्थ के साधर्म्य से अपने पक्ष की स्थापना करता है। प्रतिवादी नित्य पदार्थ के साधर्म्य से अपने पक्ष की स्थापना करता है।

वादी के द्वारा हेतुपूर्वक अपना पक्ष प्रस्तुत किये जाने पर भी, वह प्रकरण को समाप्त नहीं कर पाता। तब प्रतिवादी कहता है कि, "अनित्य पदार्थ एवं नित्य पदार्थ, दोनों के साथ साध्य का साधर्म्य होने से प्रकरण तो समाप्त नहीं हुआ। इसलिये हम दोनों बराबर हैं।" ऐसा कहकर वादी का खंडन करना, प्रकरणसमा जाति कहलाती है।

(जैसे साधर्म्य से दोनों पक्षों ने अपनी अपनी बात कही। ऐसे ही दोनों पक्ष वाले वैधर्म्य से भी अपनी अपनी बात कहते हैं, और प्रकरण समाप्त नहीं हो पाता। इसे भी प्रकरणसमा जाति ही कहते हैं।)

उदाहरण --

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना।--

शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होता है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है।

*प्रतिवादी द्वारा खंडन, साधर्म्य से *--

शब्द नित्य है। अस्पर्श वाला होने से। जो जो वस्तु अस्पर्श वाली होती है, वह वह नित्य होती है। जैसे आत्मा।

आत्मा के समान शब्द भी, अस्पर्श वाला है। इसलिए अस्पर्श वाला होने से, शब्द नित्य है।

"अनित्य पदार्थ - घड़ा, एवं नित्य पदार्थ - आत्मा, दोनों के साथ साध्य का साधर्म्य (उत्पत्ति और अस्पर्श) होने से प्रकरण तो समाप्त नहीं हुआ। इसलिये हम दोनों बराबर हैं।"

उदाहरण 2 --

वादी द्वारा वैधर्म्य से स्थापना।--

भाग 42

शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न नहीं होती है, अर्थात सदा से अनुत्पन्न होती है, वह वह नित्य होती है। जैसे आत्मा। आत्मा के समान, शब्द प्रयत्न के पश्चात अनुत्पन्न होने वाला नहीं है, अर्थात उत्पन्न होने वाला है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, वैधर्म्य से --

शब्द नित्य है। अस्पर्श वाला होने से।

जो-जो वस्तु स्पर्शगुण वाली होती है, वह वह नित्य नहीं होती, अर्थात अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द, स्पर्शगुण वाला नहीं है, अर्थात अस्पर्श वाला है।

इसलिए अस्पर्श वाला होने से, शब्द नित्य है।

"अनित्य पदार्थ (घड़े) एवं नित्य पदार्थ (आत्मा), दोनों के साथ साध्य का वैधर्म्य होने से प्रकरण तो समाप्त नहीं हुआ। इसलिये हम दोनों बराबर हैं।"

वादी द्वारा इसका उत्तर --

प्रतिवादी ने कहा -- "अनित्य पदार्थ एवं नित्य पदार्थ, दोनों के साथ साध्य का साधर्म्य होने से प्रकरण तो समाप्त नहीं हुआ। इसलिये हम दोनों बराबर हैं।" प्रतिवादी के इस कथन से यह सिद्ध होता है कि उसने "अनित्य वस्तु के साथ शब्द का साधर्म्य है," इस बात को स्वीकार किया। जब स्वीकार किया, तो हमारा अर्थात वादी का पक्ष सिद्ध हो गया। जब हमारा पक्ष सिद्ध है, तो प्रतिवादी का पक्ष सिद्ध हो नहीं सकता, क्योंकि इन दोनों पक्षों में विरोध है। इसलिये हमारा पक्ष सिद्ध हो जाने पर, निर्णय हो गया, और बातचीत समाप्त हो गई।

प्रकरणसम हेत्वाभास और प्रकरणसमा जाति में अंतर

1- प्रकरणसम हेत्वाभास --

प्रकरणसम हेत्वाभास में, वादी और प्रतिवादी दोनों ने, जो प्रतिज्ञा की थी, उसी को घुमा फिरा कर हेतु बना दिया। प्रतिज्ञा से अलग नया हेतु कुछ नहीं दिया। इससे प्रकरण की समाप्ति नहीं हो पाई। जैसे -

वादी - शब्द अनित्य है। इसमें नित्यता धर्म उपलब्ध न होने

से। जिस जिस वस्तु में नित्यता धर्म उपलब्ध नहीं होता, वह वह वस्तु अनित्य देखी जाती है। जैसे घड़ा इत्यादि।

प्रतिवादी - शब्द नित्य है। इसमें अनित्यता धर्म उपलब्ध न होने से। जिस जिस वस्तु में अनित्यता धर्म उपलब्ध नहीं होता, वह वह वस्तु नित्य देखी जाती है। जैसे आकाश आदि।

2- प्रकरणसमा जाति --

इसमें वादी और प्रतिवादी दोनों, प्रतिज्ञा को ही घुमा फिरा कर नहीं बोलते। बल्कि प्रतिज्ञा से अलग हेतु प्रस्तुत करते हैं। फिर भी उनका हेतु, हेत्वाभास होने से, प्रकरण की समाप्ति नहीं कर पाता। जैसे -

वादी - शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने से। घड़े के समान।

प्रतिवादी - शब्द नित्य है। अस्पर्श वाला होने से। आत्मा के समान।।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/18 में)

16- अहेतुसमा जाति की परिभाषा --

"हेतु, तीनों कालों में असिद्ध है। क्योंकि उसकी सिद्धि, तीनों कालों में किसी भी प्रकार से नहीं होती। इसलिए वह अहेतु के तुल्य है।" ऐसा कहकर खंडन करना, अहेतुसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण--

प्रतिवादी द्वारा खंडन, अहेतुसमा जाति का प्रयोग करते हुए

हेतु की तीनों कालों में असिद्धि इस प्रकार से होती है।

उदाहरण --

१) यदि हेतु को, साध्य से पूर्व माना जाए, और साध्य आएगा बाद में, ऐसा माना जाए। तो साध्य के बिना हेतु सिद्ध किसको करेगा?

२) यदि हेतु, साध्य के बाद माना जाए, तब हेतु के बिना, साध्य तो स्वयं ही सिद्ध हो गया। तब हेतु की आवश्यकता ही क्या है?

३) यदि हेतु और साध्य दोनों एक साथ माने जाएँ । तो कौन किसको सिद्ध करेगा? इस बात का निर्णय नहीं हो सकता। इसलिए प्रस्तुत किया गया हेतु, किसी भी साध्य को सिद्ध न कर पाने से, असिद्ध होने से, अहेतु के तुल्य है। जब तीनों कालों में हेतु सिद्ध नहीं हो पाया, तो वह आपके पक्ष की सिद्धि भी नहीं कर पाएगा।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

हेतु, तीनो कालों में असिद्ध नहीं है। हेतु से साध्य की सिद्धि हो जाने से।

१) कुम्हार ने सूर्य के प्रकाश में घड़े को बनाया। यहाँ हेतु = सूर्य प्रकाश पहले से था। और साध्य = घड़ा बाद में बना। यहां हेतु ने साध्य को सिद्ध किया।

२) कमरे में कुछ सामान रखा था। बल्ब जलाने पर वह दिखने लगा। यहां हेतु = बल्ब का प्रकाश बाद में उपस्थित हुआ, जबकि साध्य = सामान पहले से रखा था, यहां भी हेतु ने साध्य को सिद्ध किया। अर्थात् बल्ब के प्रकाश ने वस्तुओं को दिखाया।

३) धुएँ को देखकर, अग्नि का ज्ञान हो गया। यहाँ पर धुआँ हेतु है, अग्नि साध्य है। इस उदाहरण में हेतु = धुएं ने

वर्तमान काल में उपस्थित साध्य = अग्नि को सिद्ध किया । इस उदाहरण में दोनों एक साथ उपस्थित हैं। अर्थात तीनों कालों में हेतु, साध्य को सिद्ध करता है।

वादी द्वारा दूसरी बात --

जैसे प्रतिवादी ने तीनों कालों में हेतु की असिद्धि दिखाई। वैसे ही प्रतिवादी का पक्ष अर्थात प्रतिषेध पक्ष भी तीनों कालों में सिद्ध नहीं होता। जब प्रतिवादी का पक्ष तीनों कालों में सिद्ध नहीं हुआ, तो हमारा = वादी का पक्ष सिद्ध है।

प्राप्तिसमा और अहेतुसमा जाति में अंतर:

प्राप्तिसमा जाति में ---

जो बात उठाई गई थी , कि साध्य और हेतु दोनों इकट्ठे उपस्थित हैं, तो ऐसी स्थिति में कौन किसको सिद्ध कर रहा है, यह पता नहीं चल रहा। वहाँ यह बात दोनों की स्थान की दूरी के संदर्भ में कही गई थी। अर्थात यदि साध्य और हेतु दोनों संबद्ध हैं, दोनों में 10/20 फुट स्थान की कोई दूरी नहीं है, तो संबद्ध होने पर, दोनों एक समान हो गए। एक समान होने से यह निर्णय नहीं हो पा रहा, कि हेतु कौन है, तथा साध्य कौन है?

अहेतुसमा जाति में ---

भी ऐसी ही बात कही गई है, कि जब हेतु एवं साध्य दोनों इकट्ठे उपस्थित हैं, तो कौन किसको सिद्ध कर रहा है? यहां पर यह बात काल के दृष्टिकोण से कही गई है। अर्थात यदि दोनों एक साथ = एक ही काल में उपस्थित हैं, तो यह पता नहीं चल रहा है कि - साध्य, हेतु को सिद्ध कर रहा है? या हेतु, साध्य को सिद्ध कर रहा है?

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

17- अर्थापत्तिसमा जाति की परिभाषा

जब वादी दृष्टांत के साधर्म्य से अपने पक्ष की स्थापना कर देता है। तब प्रतिवादी ऐसे कहता है, कि "यदि अनित्य पदार्थ के साधर्म्य से साध्य अनित्य है, तो अर्थापत्ति से यह सिद्ध हुआ कि नित्य पदार्थ के साधर्म्य से साध्य नित्य है। अतः साध्य को नित्य ही मानना चाहिए।" ऐसा कह कर वादी का खंडन करना, अर्थापत्तिसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण ---

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना।--

शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होता है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, अर्थापत्तिसमा जाति का प्रयोग करते हुए --

"यदि अनित्य घड़े के साधर्म्य से शब्द अनित्य है, तो अर्थापत्ति से यह सिद्ध हुआ, कि नित्य आत्मा के साधर्म्य से शब्द नित्य है। नित्य आत्मा के

साथ शब्द का साधर्म्य है, अस्पर्श। अतः शब्द को नित्य ही मानना चाहिए।

"प्रतिवादी द्वारा व्याख्या ---

यदि प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, घड़े के समान शब्द को अनित्य माना जाए। तो अर्थापत्ति से यह सिद्ध होता है कि अस्पर्श वाला होने से, आत्मा के समान शब्द को नित्य माना जाए।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

प्रतिवादी ने अपने पक्ष की सिद्धि में तो कुछ भी नहीं बोला। अपने पक्ष की सिद्धि में कुछ भी न बोलने से, उसका पक्ष सिद्ध नहीं हुआ। और वादी ने (अर्थात मैंने) पूरा पंचावयव प्रस्तुत कर के अपने पक्ष की सिद्धि की है, अतः वादी का पक्ष सिद्ध हो गया। जब वादी का पक्ष सिद्ध हो गया। तो अर्थापत्ति से प्रतिवादी के पक्ष की असिद्धि हो गई। प्रतिवादी ने यहाँ पर यही भूल की है। उसने अपने पक्ष (शब्द नित्य है) की सिद्धि में तो कुछ हेतु आदि कहा नहीं, केवल वादी के वाक्य को उलटकर रख दिया। इससे (शब्द की नित्यता आदि) कुछ भी सिद्ध नहीं होता।

दूसरी बात -- अर्थापत्ति से जो बात प्राप्त होती है वह, वाक्य को उलटने के साथ साथ, प्रत्यक्ष, शब्द आदि अन्य प्रमाणों के अनुकूल भी होनी चाहिए, तभी वह अर्थापत्ति ठीक मानी जाती है। अन्यथा वह अर्थापत्ति का भ्रम है। {यह न्याय दर्शन का नियम है, जो न्यायसूत्र 2/2/4 के भाष्य में, तथा इसी सूत्र न्यायदर्शन 5/1/17 के भाष्य में वात्स्यायन ऋषि जी ने बताया है।}

भाग 44

किसी वाक्य को मात्र उलट देने से किसी बात की सिद्धि नहीं होती। जैसे कोई कहे, कि "पत्थर ठोस होता है, और वह पहाड़ से नीचे गिरता है।" इस वाक्य को मात्र उलट देने से यह अर्थ बनेगा, कि पानी द्रव (लिक्विड) होता है, और वह पहाड़ के ऊपर चढ़ता है। परन्तु यह बात तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के विरुद्ध होने से गलत है। अतः यह अर्थापत्ति है ही नहीं, बल्कि अर्थापत्ति होने का भ्रम है।

ठीक अर्थापत्ति इस प्रकार से होती है । किसी ने कहा, तत्वज्ञान से मोक्ष होता है. तो इसकी अर्थापत्ति यह बनेगी कि मिथ्याज्ञान से बंधन होता है। यह अर्थापत्ति ठीक है, क्योंकि यहाँ वाक्य को केवल उलटमात्र नहीं दिया है, बल्कि उलटने के साथ साथ, यह बात प्रत्यक्ष एवं शब्द आदि प्रमाणों के अनुकूल भी है, और सब ऋषियों ने स्वीकार भी की है। (स्मरणीय है कि, "प्रत्यक्ष अनुमान आदि सभी प्रमाणों का निर्णय एक ही होता है, भिन्न भिन्न नहीं होता, या परस्पर विरुद्ध नहीं होता।" जहां जहां अनेक प्रमाणों का निर्णय परस्पर विरोधी होता है, वह न्याय नहीं, बल्कि न्याय की भ्रांति कहलाती है। (देखें न्यायसूत्र 1/1/1 के वात्स्यायन भाष्य में.) यहाँ भी मूल कथन, तथा अर्थापत्ति से प्राप्त हुई बातों में कोई विरोध नहीं है। मूल कथन -- तत्वज्ञान से मोक्ष होता है. और अर्थापत्ति -- मिथ्याज्ञान से बंधन होता है। अतः यह अर्थापत्ति ठीक है।

अर्थापत्तिसमा जाति का एक अन्य उदाहरण --

भाग 44

महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने (-सत्यार्थ प्रकाश, प्रथम समुल्लास, ईश्वर नाम संख्या 67.) में कहा - जिसका आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर धारण करता है, इसलिये परमेश्वर का नाम निराकार है।

अब यहाँ प्रतिवादी कहता है, कि, "ईश्वर शरीर को धारण नहीं करता, इसलिए निराकार है। तो अर्थापत्ति से यह सिद्ध हुआ कि - जीवात्मा शरीर धारण करता है, इसलिए वह साकार है।

"**वादी द्वारा इसका उत्तर --**

यहां पर प्रतिवादी ने, ईश्वर के संबंध में महर्षि दयानंद जी द्वारा कहे गए वाक्य को, केवल उलटमात्र दिया है, तथा उसे जीवात्मा पर लागू कर दिया है। और अपने पक्ष (आत्मा साकार है), की सिद्धि में कुछ भी हेतु आदि प्रस्तुत नहीं किया। इतने मात्र से आत्मा साकार सिद्ध नहीं होता।

दूसरी बात -- प्रतिवादी ने जो बात अर्थापत्ति से निकाली है, कि "आत्मा साकार है।" वह भी वास्तव में अर्थापत्ति नहीं है, बल्कि अर्थापत्ति का भ्रम है। क्योंकि वह बात अनुमान प्रमाण से विरुद्ध है। अनुमान प्रमाण से तो यही सिद्ध होता है, कि "आत्मा निराकार है।"

जैसे कि --

आत्मा निराकार है।

परमाणुरहित होने से।

जो-जो वस्तु परमाणुरहित होती है, वह-वह निराकार होती है।

जैसे ईश्वर।

ईश्वर के समान ही, आत्मा भी परमाणुरहित है। इसलिए परमाणुरहित होने से, आत्मा निराकार है।

इसलिए यह अर्थापत्तिसमा जाति का प्रयोग है, और भोले भाले लोगों को भ्रमित करने के लिए चालाकी से किया गया, सत्य का अनुचित खंडन है। इससे आत्मा साकार सिद्ध नहीं होता।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

भाग 45

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/23 में)

18- अविशेषसमा जाति की परिभाषा

जब वादी ने उदाहरण के साधर्म्य से अपने पक्ष की स्थापना कर दी, तब प्रतिवादी ऐसा कहता है कि --- "साध्य और उदाहरण में , एक धर्म की समानता होने से, दूसरे धर्म की सिद्धि होती है। इसी प्रकार से सब पदार्थों में एक धर्म = सत्ता के सिद्ध होने से, सबकी समानता सिद्ध होती है।" इस प्रकार से सब वस्तुओं को 'एक समान' बताकर खंडन करना, यह अविशेषसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण ---

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना।--

शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होता है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, अविशेषसमा जाति का प्रयोग करते हुए --

यदि घड़े और शब्द के समान धर्म = 'प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होना' के आधार पर इन दोनों की अनित्यता सिद्ध होती है, तो सब पदार्थों में एक धर्म = सत्ता के सिद्ध होने से, सबकी समानता सिद्ध होती है। परंतु प्रत्यक्ष व्यवहार में हम देखते हैं कि, सभी पदार्थ एक समान नहीं होते।

इसलिए किसी एक धर्म = 'प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होना' के आधार पर, दो वस्तुओं = घड़े और शब्द को एक समान = अनित्य नहीं कह सकते। इसलिये शब्द नित्य है।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

'प्रयत्न के पश्चात उत्पत्ति होना', यह धर्म, व्याप्ति पूर्वक होने से, अनित्यता धर्म को सिद्ध करता है।

परंतु एक धर्म = सत्ता से कौन सा, दूसरा धर्म सिद्ध होता है, यह प्रतिवादी ने नहीं बताया, जिससे कि सब पदार्थ एक समान माने जाएँ।

यदि सबकी समानता वाला दूसरा धर्म, अनित्यता को ही प्रतिवादी कहना चाहता हो। तो प्रतिवादी का पक्ष ऐसा बनेगा कि - सब पदार्थों में सत्ता होने से, सभी पदार्थ अनित्य हैं। जब

सभी पदार्थ अनित्य हैं, तब "सभी पदार्थ" तो साध्य बन गए। तब साध्य से अलग उदाहरण कोई बचा ही नहीं। "बिना उदाहरण के कोई हेतु सिद्ध नहीं होता।" इसलिए बिना उदाहरण के प्रतिवादी के हेतु से, उसके पक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती।

दूसरी बात -- यदि प्रतिवादी यह कहता है, कि "सभी पदार्थ अनित्य हैं।" तो "सभी पदार्थ" उसके इस कथन में 'शब्द' का भी समावेश हो गया। अतः शब्द भी अनित्य सिद्ध हो गया। इस प्रकार से प्रतिवादी हमारे पक्ष का खंडन नहीं कर पाया। उसने सब पदार्थों की अनित्यता को स्वीकार करते हुए, शब्द को भी अनित्य स्वीकार कर लिया।

वास्तविक स्थिति तो यह है कि, सत्तात्मक पदार्थ नित्य तथा अनित्य दोनों प्रकार के देखे जाते हैं। जैसे ईश्वर, आत्मा आदि पदार्थ नित्य हैं, और सूर्य पृथ्वी शरीर घड़ा मकान आदि पदार्थ अनित्य हैं। इसलिए भी प्रतिवादी का यह कथन, (कि सब पदार्थों में एक धर्म = सत्ता के सिद्ध होने से, सबकी समानता सिद्ध होती है,) ठीक नहीं है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

(न्याय सूत्र 5/1/25 में)

19- उपपत्तिसमा जाति की परिभाषा --

"यदि एक पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया कारण सिद्ध होता है, तो दूसरे पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया कारण भी सिद्ध होता है।" इस प्रकार से दोनों कारणों की सिद्धि दिखाकर खंडन करना, उपपत्तिसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण --

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना --

शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होता है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, उपपत्तिसमा जाति का प्रयोग करते हुए --

शब्द नित्य है। अस्पर्श वाला होने से। जो जो वस्तु अस्पर्श वाली होती है, वह वह नित्य होती है। जैसे आत्मा।

आत्मा के समान शब्द भी अस्पर्श वाला है। इसलिए अस्पर्श वाला होने से, शब्द नित्य है।

प्रतिवादी द्वारा व्याख्या --

यहाँ आपका हेतु भी सिद्ध हो रहा है, और हमारा भी। यदि अनित्यता का कारण सिद्ध होने से, शब्द अनित्य है। तो नित्यता का कारण भी सिद्ध होने से, शब्द नित्य है।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

जब प्रतिवादी ने दोनों पक्षों के कारणों को स्वीकार कर लिया, तो दो में से एक अनित्यता का कारण भी स्वीकार कर लिया। इससे शब्द की अनित्यता का खंडन नहीं हुआ। यदि फिर भी शब्द की अनित्यता का खंडन माना जाए, तो प्रतिवादी का वचन सत्य नहीं होगा, कि दोनों पक्षों के कारण सिद्ध होते हैं। जबकि प्रतिवादी ने दोनों कारणों की सिद्धि स्वीकार की है। इससे शब्द की अनित्यता का कारण भी स्वीकार हो जाने से, वादी के पक्ष का खंडन नहीं हुआ, बल्कि सिद्ध हुआ।

यदि प्रतिवादी कहे, कि एक ही वस्तु = शब्द के विषय में दो विरोधी धर्म = नित्यता और अनित्यता को कहने से विरोध नामक दोष उत्पन्न होता है। तो वादी का उत्तर यह है कि, यह विरोध नामक दोष तो दोनों पक्षों में समान है। यह किसी के भी पक्ष की सिद्धि नहीं करेगा।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

20- उपलब्धिसमा जाति की परिभाषा --

जब वादी अपने पक्ष की सिद्धि में एक कारण प्रस्तुत करता है। तो प्रतिवादी उस के अतिरिक्त एक और नया कारण बताकर वादी के पक्ष का खंडन करता है। इस प्रकार से खंडन करने को, उपलब्धिसमा जाति कहते हैं।

उदाहरण ---

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना।--

शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा। घड़े के समान शब्द भी, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होता है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, उपलब्धिसमा जाति का प्रयोग करते हुए --

आपने शब्द की अनित्यता का जो कारण बताया कि, "प्रयत्न के पश्चात शब्द उत्पन्न होता है। इसलिये शब्द

www.darshanyog.org darshanyog@gmail.com

अनित्य है।" परंतु इस कारण के बिना भी, "वायु की टक्कर से जब वृक्ष की शाखा टूट जाती है। तो शाखा के टूटने से जो शब्द उत्पन्न होता है, वह भी तो अनित्य है।" तो शब्द की अनित्यता का केवल एक ही कारण नहीं है, अन्य भी कारण हैं। इसलिए आपका कथन ठीक नहीं है।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

जब वादी ने शब्द की अनित्यता का एक कारण बताया, तो उस कथन में इतना ही कहा था, कि इस कारण से शब्द की उत्पत्ति होती है। यह नहीं कहा था, कि "शब्द की उत्पत्ति का केवल यही एक कारण है, अन्य कोई कारण है ही नहीं। अन्य कारण होने का निषेध नहीं किया था।"

यदि अन्य किसी कारण से भी शब्द उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है, तो भी शब्द की अनित्यता ही सिद्ध होती है। फिर आप खंडन किस बात का कर रहे हैं?

उपलब्धिसमा जाति का एक अन्य उदाहरण --

एक व्यक्ति ने कहा - कि "रोटी खाने से भूख मिटती है।" दूसरे ने उसका खंडन किया - "चावल खाने से भी तो भूख मिटती है." यहां भी दूसरे व्यक्ति ने वही गलती की, अर्थात उपलब्धिसमा जाति का प्रयोग किया। पहले व्यक्ति ने

www.darshanyog.org darshanyog@gmail.com

कहा था - कि रोटी खाने से भूख मिटती है। ऐसा नहीं कहा था कि - "केवल रोटी खाने से ही भूख मिटती है।" ऐसी स्थिति में, दूसरे व्यक्ति के कथनानुसार, यदि चावल से भी भूख मिटती है, तो इसमें पहले व्यक्ति का खंडन क्या हुआ, कुछ भी नहीं।

दूसरे व्यक्ति ने , पहले व्यक्ति के पक्ष = भूख मिटने का समर्थन ही किया, खंडन कहां हुआ!

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/29 में)

21- अनुपबलब्धिसमा जाति की परिभाषा

वादी कहता है कि "किसी वस्तु की उत्पत्ति से पहले वह वस्तु जब नहीं दिखती, और यदि वह वस्तु हो, तो उसके न दिखने का कारण = आवरण या कोई पर्दा आदि तो कम से कम दिखना चाहिए, तभी माना जा सकता है, कि वह वस्तु पर्दे के पीछे छिपी है।" फिर वादी आगे कहता है कि "उस वस्तु को ढकने वाले पर्दे आदि की अनुपलब्धि होने से, अर्थात पर्दा आदि प्राप्त न होने से, यह सिद्ध होता है कि, उस वस्तु की उत्पत्ति से पूर्व, वह वस्तु नहीं है। उत्पत्ति के बाद वह हो जाएगी। इसलिए वह वस्तु अनित्य है।"

इस स्थिति में जातिवादी चालाकी से यह कहता है, कि "उस पर्दे की अनुपलब्धि नहीं मिल रही। इसका मतलब अनुपलब्धि के न मिलने से पर्दे की उपलब्धि है। जब पर्दे की उपलब्धि है, तो इसका मतलब वह वस्तु पर्दे के पीछे छिपी है। यदि छिपी है, तो वह वस्तु है। यदि वह वस्तु है, तो वह नित्य है।"

इस प्रकार से पर्दे आदि की "अनुपलब्धि का न मिलना" कहकर जातिवादी चालाकी से वादी के पक्ष का खंडन करता है, इसको अनुपलब्धिसमा जाति कहते हैं।*

उदाहरण ---

वादी ने कहा --

उच्चारण से पहले शब्द नहीं सुनाई देता, इसका अर्थ है कि शब्द नहीं है। यदि होता, तो उसके न सुनाई देने का कारण = कोई आवरण आदि होना चाहिए। परंतु शब्द के आवरण की अनुपलब्धि होने से, यह सिद्ध होता है, कि उच्चारण से पहले शब्द नहीं है। वह उच्चारण करने से उत्पन्न होता है, अतः शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन अनुपबलब्धिसमा जाति का प्रयोग करते हुए --

आवरण की अनुपलब्धि के प्राप्त न होने से आवरण की अनुपलब्धि नहीं है। और जब अनुपलब्धि नहीं है, तो इसका अर्थ हुआ कि आवरण है। जब आवरण है, और फिर भी शब्द नहीं सुनाई दे रहा। तो इसका अर्थ हुआ, कि उच्चारण से पहले भी आवरण से ढका हुआ शब्द है। अतः शब्द नित्य है।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

यदि कोई वस्तु होती है, सामने दिखाई देती है, तो हमें उसकी शरीर से बाहर कार्य करने वाली आँख आदि से इंद्रियों से, और शरीर के अन्दर कार्य करने वाले मन एवं आत्मा से, इन दोनों प्रकारों से अनुभूति होती है। तब हम मानते हैं कि वह वस्तु है। और जब कोई वस्तु नहीं होती, हमें उसकी प्राप्ति नहीं होती, तो हम बाहर और अन्दर दोनों प्रकार से यह अनुभव करते हैं कि वह वस्तु नहीं है।

यदि गाय पर्दे के पीछे छिपी हो, तो गाय नहीं दिखेगी। गाय के न दिखने पर कम से कम, पर्दा तो दिखना चाहिए, जो विद्यमान गाय को ढक रहा हो। यदि पर्दा ही न दिखता हो , और गाय भी न दिखती हो, तब इसका अर्थ हुआ कि पर्दे की अप्राप्ति है, अर्थात पर्दा नहीं है।

तब जातिवादी यदि ऐसा कहे, कि "पर्दे की अप्राप्ति ही प्राप्त नहीं हो रही, इसलिए पर्दे की प्राप्ति है। और गाय पर्दे के पीछे छिपी है।" तो इस तरह से चालाकी से, गाय के न होते हुए भी, वह शब्द जाल बिछा कर, धोखे से गाय को सिद्ध करना चाहता है। ऐसी ही चालाकी जातिवादी ने शब्द के विषय में भी की है। अर्थात उत्पत्ति से पहले शब्द के न होते

हुए भी, उसने शब्द को सिद्ध करने का, जालसाजी से मिथ्या प्रयास किया है। यह अनुपलब्धिसमा जाति का प्रयोग है।

"जब अनुपलब्धि का स्वरूप ही यही है, कि उसमें कुछ भी प्राप्त नहीं होता।" ऐसी स्थिति में यह कहना कि "अनुपलब्धि प्राप्त नहीं हो रही है।" यह केवल शब्द जाल मात्र है। इसलिए आपका यह कथन ठीक नहीं है, कि --> "आवरण की अनुपलब्धि के प्राप्त न होने से आवरण की अनुपलब्धि का अभाव है।"

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/32 में)

22- अनित्यसमा जाति की परिभाषा

प्रतिवादी कहता है कि "यदि अनित्य पदार्थ = दृष्टान्त के साथ साधर्म्य होने से, साध्य पदार्थ की अनित्यता सिद्ध होती है। ऐसे तो साध्य के साथ सभी पदार्थों का 'पदार्थत्व' रूपी साधर्म्य होता है।इससे हर वस्तु साध्य जैसी अनित्य हो जाएगी। यह तो ठीक नहीं है।" इस प्रकार से प्रत्येक पदार्थ की अनित्यता दिखाकर प्रतिवादी, वादी का खंडन करता है, इसे अनित्यसमा जाति कहते हैं।

उदाहरण

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना --

शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होता है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन अनित्यसमा जाति का प्रयोग करते हुए --

घड़ा अनित्य है। आपने घड़े के साधर्म्य से शब्द को घड़े जैसा अनित्य बताया। ऐसे ही घड़ा एक पदार्थ है। जैसे घड़े में पदार्थत्व है, वैसे सभी पदार्थों में पदार्थत्व पाया जाने से, सभी पदार्थ घड़े के समान हो जाएंगे। जैसे घड़ा अनित्य है, तो सभी पदार्थ अनित्य हो जाएंगे। परंतु सभी पदार्थ तो अनित्य हो नहीं सकते। इससे सिद्ध हुआ कि "साधर्म्य होने से किसी साध्य की सिद्धि नहीं होती।" अतः प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने पर भी शब्द अनित्य सिद्ध नहीं होता, किंतु नित्य ही है।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

प्रतिवादी के कहने का तात्पर्य है कि "साधर्म्य होने से किसी साध्य की सिद्धि नहीं होती।" यदि अनित्य वस्तु के साधर्म्य से अनित्यत्व की सिद्धि नहीं होती। तो प्रतिवादी के पक्ष का भी, हमारे अर्थात वादी के पक्ष के साथ साधर्म्य है। और वह है, "प्रतिज्ञा आदि पांच अवयवों का होना।" हमारे

पक्ष में भी प्रतिज्ञा आदि पांच अवयव हैं। और प्रतिवादी के पक्ष में भी यही पांच अवयव हैं। इसलिए हमारे पक्ष के साथ प्रतिवादी के पक्ष का साधर्म्य होने से प्रतिवादी का पक्ष भी सिद्ध नहीं होता।

दूसरी बात --

दृष्टान्त में जो धर्म साध्यसाधनभाव से जाना जाता है, वह हेतु के रूप में कहा जाता है। जैसे (प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होना) (जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है वह वह अनित्य होती है)। ऐसा हेतु, व्याप्ति पूर्वक होने से विशेष साधर्म्य या विशेष वैधर्म्य वाला होता है। किंचित साधर्म्य अथवा किंचित वैधर्म्य वाला नहीं होता। और आपने किंचित साधर्म्य और किंचित वैधर्म्य वाले हेतु के आधार से हमारा खंडन किया है, जो कि न्याय विद्या के नियम से विरुद्ध है। इसलिए आप द्वारा किया गया खंडन अनुचित है, और उससे हमारे पक्ष का खंडन वास्तव में नहीं होता।

हमारा हेतु (प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होना) व्याप्ति पूर्वक है। इसलिये विशेष साधर्म्य वाला होने से, साध्य को सिद्ध करने मे समर्थ है।

अविशेषसमा जाति और अनित्यसमा जाति में अंतर --

इन दोनो जातियों में उदाहरण एक समान है। केवल अंतर इतना है कि अविशेषसमा जाति में यह आरोप लगाकर वादी का खंडन किया गया कि साध्य और उदाहरण की समानता से सभी वस्तुएं "एक समान" हो जाएंगी, जो कि उचित नहीं है।

और अनित्यसमा जाति में भी वही उदाहरण देकर इस प्रकार से वादी का खंडन किया गया कि साध्य और उदाहरण की समानता से सभी वस्तुएं "अनित्य" हो जाएंगी, जो कि उचित नहीं है। सिर्फ आरोप लगाने की भाषा का ही अंतर है, और कोई विशेष अंतर नहीं है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/35 में)

*23- नित्यसमा जाति की परिभाषा

अनित्य वस्तुओं में यदि अनित्यता सदा रहती है, तो वस्तुओं का सदा रहना सिद्ध होने से, साध्य पदार्थ भी अनित्य नहीं हो सकता। क्योंकि "जब अनित्यता "धर्म" सदा रहेगा, तो "धर्मी" पदार्थ भी सदा रहेगा। अतः वह नित्य है।" इस प्रकार से अनित्य पदार्थ को नित्य पदार्थ बताते हुए खंडन करना, नित्यसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना --

शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होता है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा खंडन, नित्यसमा जाति का प्रयोग करते हुए --

आप कहते हैं, शब्द अनित्य है। आपके इस कथन पर हमारा प्रश्न है कि शब्द में अनित्यता सदा रहती है, या नहीं रहती? यदि आप कहें - "शब्द में अनित्यता सदा रहती है। तो अनित्यता "धर्म" के सदा रहने से, शब्द "धर्मी" भी सदा रहने वाला सिद्ध हुआ।" इसका अर्थ हुआ कि शब्द नित्य है।"

और यदि आप कहें - "अनित्यता शब्द में सदा नहीं रहती, तो जब अनित्यता नहीं रहेगी, तब नित्यता रहेगी। इससे शब्द नित्य हो जाएगा।" इसलिए शब्द तो नित्य ही है।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

आपने अर्थात प्रतिवादी ने यह कहा, कि "शब्द में अनित्यता "धर्म" के सदा रहने से शब्द "धर्मी" भी सदा रहने वाला सिद्ध हुआ।”

आपने अपने इस कथन में यह स्वीकार किया कि "शब्द में अनित्यता 'रहती' है।" जब आपने यह स्वीकार कर ही लिया, कि शब्द में अनित्यता रहती है। तो आपके द्वारा यह कहना ही गलत है, कि "शब्द अनित्य नहीं है।”

यदि आप शब्द में अनित्यता को स्वीकार नहीं करते, तो आपने जो अपने वाक्य में हेतु बोला था, (शब्द में अनित्यता धर्म के सदा रहने से), आपका यह हेतु झूठा है। हेतु के झूठा होने से आपके द्वारा किया गया खंडन असिद्ध तथा व्यर्थ है।

दूसरी बात --

यह संसार का नियम है कि "जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह नष्ट भी होती है। 'वह नष्ट होती है,' यही तो उसकी अनित्यता है।" इसी प्रकार से "शब्द उत्पन्न होता है, तो वह नष्ट भी होगा. जब शब्द नष्ट होगा, तो उसमें अनित्यता सिद्ध हो गई।" ऐसी स्थिति में यह प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, कि शब्द में वह अनित्यता सदा रहती है या नहीं रहती? आपका यह प्रश्न ही मूर्खतापूर्ण एवं भ्रमोत्पादक है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

24- कार्यसमा जाति की परिभाषा --

प्रयत्न के पश्चात कुछ वस्तुओं की उत्पत्ति देखी जाती है, और कुछ वस्तुओं की अभिव्यक्ति। इस प्रकार से, "प्रयत्न के कार्य अनेक होने से, उत्पत्ति को अभिव्यक्ति कहकर खंडन करना," कार्यसमा जाति कहलाती है।

उदाहरण --

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना --

शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होता है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है।

2- प्रतिवादी द्वारा खंडन, कार्यसमा जाति का प्रयोग करते हुए --

शब्द नित्य है। प्रयत्न के कार्य अनेक (उत्पत्ति और अभिव्यक्ति) होने से।

प्रतिवादी द्वारा व्याख्या --

आप कहते हैं प्रयत्न के पश्चात शब्द की उत्पत्ति हुई। जबकि प्रयत्न के कार्य अनेक (उत्पत्ति और अभिव्यक्ति)

www.darshanyog.org darshanyog@gmail.com

होते हैं। तो "आपके हेतु से यह पता नहीं चलता कि प्रयत्न के पश्चात शब्द की उत्पत्ति हुई या अभिव्यक्ति हुई?"

हमारा कहना तो यही है, कि जैसे पर्दा हटाने पर, कमरे में पहले से रखी हुई वस्तुएं अभिव्यक्त होती हैं, अर्थात दिखाई देने लगती हैं। वैसे ही प्रयत्न करने पर शब्द की अभिव्यक्ति होने लगती है, शब्द सुनाई देने लगता है। इसलिए शब्द नित्य है।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

आपने अपने कथन में स्वीकार किया कि - "जहाँ पर्दा हटाने पर वस्तुएं दिखाई देती हैं। ऐसे स्थल पर वस्तुओं की अभिव्यक्ति होती है।" ठीक है, हमें स्वीकार है।

"परंतु जब प्रयत्न के पश्चात शब्द सुनाई देता है, तो वहां शब्द को ढकने वाला पर्दा या आवरण तो कोई उपलब्ध होता ही नहीं, जिसे हटाने पर शब्द सुनाई देने लगे।"

जब किसी पर्दे या आवरण ने शब्द को ढका ही नहीं, तो इससे सिद्ध हुआ कि यह शब्द की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि उत्पत्ति है। इसलिये शब्द की उत्पत्ति होने से, शब्द अनित्य है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

षट्पक्षी प्रकरण = (व्यर्थ बातचीत) न्याय दर्शन

स्थापनावादी ने अपने पक्ष की सिद्धि के लिए (सूत्र - 5/1/14) में जो हेतु रखा था । शब्द अनित्य है, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। घड़े के समान।

यह हेतु ठीक नहीं था। यह हेतु वास्तव में अनैकांतिक हेत्वाभास था। (न्यायसूत्र - 5/1/37) में जब जातिवादी ने कार्यसमा जाति का प्रयोग करके वादी के पक्ष में हेतु का अनैकांतिकत्व दोष दिखाया। तो उस दोष का निवारण करने के लिए स्थापनावादी ने (न्यायसूत्र 5/1/38) में उसका ठीक-ठीक समाधान कर दिया। और इस प्रकार से स्थापनावादी ने अपने पक्ष की रक्षा कर ली। परंतु यह रक्षा उसे क्यों करनी पड़ी, क्योंकि वादी के हेतु में अनैकांतिकत्व दोष था।

अब यदि वादी (न्यायसूत्र 5/1/38 में ठीक उत्तर न देकर,) न्यायसूत्र 5/1/39 के अनुसार गलत उत्तर देवे, तो आगे व्यर्थ की बहस चलेगी। इसे वाद नहीं कहेंगे। बल्कि वह जल्प कहलायेगा।

तो आगे किस प्रकार से, बेकार की बहस चलेगी। वादी और प्रतिवादी दोनों ही गलतियां करेंगे। उसके 6 पक्ष बनाकर एक नमूना (उदाहरण) न्याय दर्शन में "षट्पक्षी प्रकरण" के नाम से प्रस्तुत किया गया है। इसमें 6 पक्ष दिखाए गए हैं। जिनमें पहला तीसरा और पांचवा पक्ष स्थापनावादी का है, और दूसरा चौथा तथा छठा पक्ष प्रतिवादी अर्थात जातिवादी का है।

आइए, इस बेकार की बहस (बकवास) का एक उदाहरण देखते हैं। इस बहस से हमें यह सीखना है, कि यदि बातचीत में हम लापरवाही करेंगे, तो वादी और प्रतिवादी दोनों से गलतियां हो सकती हैं। इसलिये हम सावधानी का प्रयोग करेंगे और ऐसी गलतियां नहीं करेंगे। व्यर्थ की बहस से बचने के लिए इस षट्पक्षी प्रकरण को जानना आवश्यक है।

उदाहरण --

प्रथम पक्ष -- (सूत्र - 5/1/14)

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना --

शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होता है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है। यह प्रथम पक्ष हुआ।

द्वितीय पक्ष -- (सूत्र - 5/1/37)

प्रतिवादी द्वारा कार्यसमा जाति के माध्यम से खंडन --

शब्द नित्य है। प्रयत्न के कार्य अनेक (उत्पत्ति और अभिव्यक्ति) होने से।

व्याख्या -- आप कहते हैं प्रयत्न के पश्चात शब्द की उत्पत्ति हुई। जबकि प्रयत्न के कार्य अनेक (उत्पत्ति और अभिव्यक्ति) होते हैं। तो आपके हेतु से यह पता नहीं चलता कि प्रयत्न के पश्चात शब्द की उत्पत्ति हुई या अभिव्यक्ति हुई?

हमारा कहना तो यही है, कि जैसे पर्दा हटाने पर, कमरे में पहले से रखी हुई वस्तुएं अभिव्यक्त होती हैं अर्थात दिखाई देने लगती हैं। वैसे ही प्रयत्न करने पर शब्द की अभिव्यक्ति हुई। शब्द सुनाई देने लगा। इसलिए शब्द नित्य है।

आपके पक्ष में अनैकांतिक हेत्वाभास होने का दोष है। यह द्वितीय पक्ष हुआ।

तृतीय पक्ष -- (सूत्र - 5/1/39)

वादी द्वारा प्रतिवादी के द्वितीय पक्ष का खंडन --

आप के पक्ष में भी यही अनैकांतिक हेत्वाभास होने का दोष है। क्योंकि आपका पक्ष भी कुछ बात का खंडन करता है, और कुछ बात का नहीं।

अर्थात शब्द को नित्य सिद्ध करने में जो आपने द्वितीय पक्ष में सामान्य हेतु कहा है, कि "प्रयत्न के पश्चात यह शब्द की अभिव्यक्ति है , उत्पत्ति नहीं है ।" इस पक्ष में आपने कोई विशेष हेतु नहीं दिया। "इसलिए विशेष हेतु का अभाव होने से दोनों पक्षों में समान रूप से अनैकांतिक हेत्वाभास होने का दोष है ।" यह तृतीय पक्ष हुआ ।

चतुर्थ पक्ष -- (सूत्र - 5/1/41)

प्रतिवादी द्वारा वादी के तृतीय पक्ष का खंडन --

आपने तृतीय पक्ष के माध्यम से, जो हमारे द्वितीय पक्ष में अनैकांतिकत्व दोष दिखाया है । "आपके द्वारा कहे गए तृतीय पक्ष में भी वही अनैकांतिकत्व दोष है ।" यह चतुर्थ पक्ष हुआ ।

पाँचवाँ पक्ष -- (सूत्र - 5/1/42)

वादी द्वारा प्रतिवादी के चतुर्थ पक्ष का खंडन --

आपने अपने द्वितीय पक्ष को दोष सहित स्वीकार कर के, अपने चौथे पक्ष के रूप में जो यह कहा, कि "हमारे पक्ष 2 के उत्तर में, अर्थात आपके पक्ष 3 में भी वही दोष है, अनैकांतिकत्व। आप द्वारा चौथे पक्ष के रूप में ऐसा कहना, यह मतानुज्ञा नामक निग्रहस्थान है, अर्थात आपने हमारे आरोप को स्वीकार कर लिया ।" यह पाँचवाँ पक्ष हुआ ।

छठा पक्ष -- (सूत्र - 5/1/43)

प्रतिवादी द्वारा वादी के पाँचवें पक्ष का खंडन --

जब हमने द्वितीय पक्ष के रूप में यह कहा था, कि आपके हेतु में अनैकांतिकत्व दोष है। तब आपने तृतीय पक्ष के रूप में हम पर वही आरोप लगाया, कि आपके पक्ष में भी अनैकांतिकत्व दोष है।

"इस प्रकार से आपने भी हमारे आरोप को स्वीकार किया। तो आप द्वारा भी तृतीय पक्ष के रूप में ऐसा कहना, यह मतानुज्ञा नामक निग्रहस्थान है, अर्थात आपने भी हमारे आरोप को स्वीकार किया।" यह छठा पक्ष हुआ।

इस षट्पक्षी प्रकरण की समीक्षा --

चौथे और छठे पक्ष में कोई अंतर न होने से उनमें पुनरुक्त दोष है।

तीसरे और पांचवें पक्ष में भी पुनरुक्त दोष है। पांचवें और छठे पक्ष में भी पुनरुक्त दोष है।

तीसरे और चौथे पक्ष में मतानुज्ञा निग्रहस्थान है।

पहले तथा दूसरे पक्ष में विशेष हेतु का अभाव है। इस प्रकार से इस षट्पक्षी प्रकरण में, दोनों में से कोई भी पक्ष सिद्ध नहीं हुआ। दोनों ही असिद्ध हुए। इसलिये इसे व्यर्थ बातचीत कहते हैं। चालू भाषा में इसी का नाम 'बकवास' है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/2/1-25 तक)

निग्रहस्थान परिचय न्यायदर्शन --

जब वादी या प्रतिवादी गलत उत्तर देता है; या मौन रहता है, कुछ भी उत्तर नहीं दे पाता, तो उसे निग्रहस्थान कहा जाता है। "निग्रह" शब्द का शाब्दिक अर्थ है, "पकड़ लेना।" "स्थान" का अर्थ है "स्थिति"। उसकी गलती पकड़ ली गई, यह ऐसी स्थिति है। अर्थात उसकी बात झूठ सिद्ध हो गई। वह हार गया। यह हार जाने की स्थिति है। इस स्थिति के प्राप्त होने पर व्यक्ति पराजित घोषित कर दिया जाता है, और बातचीत समाप्त हो जाती है।

निग्रहस्थान, वादी या प्रतिवादी दोनों को प्राप्त हो सकते हैं। दोनों में से कोई भी व्यक्ति, उत्तर देते समय, जानबूझकर या अनजाने में गलती कर सकता है। इसलिये वह निग्रहस्थान में आ जाता है, अर्थात हार जाता है।

निग्रहस्थान अधिकतर प्रतिज्ञा आदि अवयवों के आश्रय से होते हैं। ये प्रतिज्ञाहानि, प्रतिज्ञाविरोध, हेत्वन्तर, अप्रतिभा,

मतानुज्ञा आदि 22 प्रकार के होते हैं। इनका विस्तृत वर्णन न्याय दर्शन, अध्याय 5, आह्निक 2 में है।।

22 प्रकार के निग्रहस्थानों की सूची --

1- प्रतिज्ञाहानि निग्रहस्थान।

2- प्रतिज्ञान्तर निग्रहस्थान।

3- प्रतिज्ञाविरोध निग्रहस्थान।

4- प्रतिज्ञासंन्यास निग्रहस्थान।

5- हेत्वन्तर निग्रहस्थान।

6- अर्थान्तर निग्रहस्थान।

7- निरर्थक निग्रहस्थान।

8- अविज्ञातार्थ निग्रहस्थान।

9- अपार्थक निग्रहस्थान।

10- अप्राप्तकाल निग्रहस्थान।

11- न्यून निग्रहस्थान।

12- अधिक निग्रहस्थान।

13- पुनरुक्त निग्रहस्थान।

14- अननुभाषण निग्रहस्थान।

15- अज्ञान	निग्रहस्थान।
16- अप्रतिभा	निग्रहस्थान।
17- विक्षेप	निग्रहस्थान।
18- मतानुज्ञा	निग्रहस्थान।
19- पर्यनुयोज्योपेक्षण	निग्रहस्थान।
20- निरनुयोज्यानुयोग	निग्रहस्थान।
21- अपसिद्धान्त	निग्रहस्थान।
22- हेत्वाभास	निग्रहस्थान।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

*1- प्रतिज्ञाहानि निग्रहस्थान की परिभाषा

ग्रन्थकार द्वारा --

*प्रतिवादी के दृष्टांत के धर्म को, अपने दृष्टान्त में स्वीकार करके, अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ देना प्रतिज्ञाहानि निग्रहस्थान है।

उदाहरण--

वादी द्वारा अपने पक्ष की स्थापना --

शब्द अनित्य है। ऐन्द्रियक (इन्द्रियों से जानने योग्य) होने से। जो जो वस्तु ऐन्द्रियक होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान, शब्द भी ऐन्द्रियक है। इसलिए ऐन्द्रियक होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा इसका खंडन--

जाति ऐन्द्रियक है, और वह नित्य है। शब्द भी ऐन्द्रियक है। तो शब्द को भी जाति के समान नित्य क्यों न माना जाए?

वादी द्वारा इसका उत्तर --

यदि जाति ऐन्द्रियक है, और नित्य है। तो ठीक है, घड़ा भी जाति के समान नित्य हो सकता है।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

जब वादी ने अपने पक्ष की स्थापना की, तब प्रतिवादी ने साध्य वस्तु (शब्द) के धर्म (अनित्यता) के विपरीत धर्म (नित्यता) से अपना विरोधी दृष्टांत (जाति) को प्रस्तुत कर के, वादी का खंडन कर दिया। और वादी ने भूल से उस विरोधी दृष्टांत (जाति) के धर्म (नित्यता) को अपने दृष्टांत (घड़े) में स्वीकार कर लिया। ऐसा करने से वह अपनी प्रतिज्ञा को ही छोड़ बैठा।

ऐसी स्थिति में वादी ने अपने पक्ष के साधक दृष्टांत घड़े में, विरोधी दृष्टांत जाति के धर्म नित्यता को स्वीकार कर लिया। जब उसका उदाहरण घड़ा ही नित्य हो गया, तो किस आधार पर अब वह निगमन तक अपने पक्ष की सिद्धि अर्थात शब्द की अनित्यता को सिद्ध कर पाएगा? नहीं कर पाएगा।

इस प्रकार से उसने अपना पूरा पक्ष ही छोड़ दिया। जब पक्ष ही छोड़ दिया, तो उसकी प्रतिज्ञा भी छूट गई। क्योंकि प्रतिज्ञा तो पक्ष के सहारे से ही रहती है। वादी ने अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ देने की गलती की, इसलिए इसको प्रतिज्ञाहानि निग्रहस्थान कहते हैं।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/2/3 में)

2- प्रतिज्ञान्तर निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

वादी ने जिस बात को सिद्ध करने की प्रतिज्ञा की थी, प्रतिवादी के दृष्टान्त के द्वारा, वादी के हेतु का खंडन हो जाने पर, प्रतिवादी के दृष्टान्त के साथ तुलना करते हुए, अपने दृष्टान्त का भिन्न धर्म दिखाकर, वादी अपनी प्रतिज्ञा को दोबारा नये रूप में प्रस्तुत करता है, इसको प्रतिज्ञान्तर निग्रहस्थान कहते हैं।

उदाहरण --

वादी द्वारा अपने पक्ष की स्थापना --

शब्द अनित्य है। ऐन्द्रियक (इन्द्रियों से जानने योग्य) होने से। जो जो वस्तु ऐन्द्रियक होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान, शब्द भी ऐन्द्रियक है।

इसलिए ऐन्द्रियक होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा इसका खंडन --

जाति ऐन्द्रियक है, और वह नित्य है। शब्द भी ऐन्द्रियक है। तो शब्द भी जाति के समान नित्य है। वह अनित्य कैसे हो सकता है?

वादी का उत्तर -- (नए पक्ष के साथ) ऐन्द्रियक होते हुए जाति तो सर्वव्यापक है। जबकि ऐन्द्रियक होते हुए घड़ा सर्वव्यापक नहीं है, बल्कि एकदेशी है। और घड़े के समान शब्द भी एकदेशी है। इसलिए शब्द अनित्य है। (पहली प्रतिज्ञा -- शब्द अनित्य है। दूसरी प्रतिज्ञा -- शब्द एकदेशी है।)

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

यहाँ पर वादी ने पहले शब्द को अनित्य सिद्ध करने के लिए हेतु दिया, ऐन्द्रियक (इन्द्रियों से जानने योग्य) होने से। घड़े के समान। जब प्रतिवादी ने हेतु में दोष दिखाकर एक विरोधी दृष्टान्त प्रस्तुत किया, कि ऐन्द्रियक होते हुए जाति नित्य है। तब वादी ने विरोधी दृष्टांत जाति और अपने दृष्टान्त घड़े में एक धर्म का भेद दिखलाकर कहा, कि जाति तो सर्वव्यापक है, जबकि घड़ा एकदेशी है। इसलिये एकदेशी घड़े के समान, एकदेशी शब्द अनित्य है।

यह सर्वव्यापकता और एकदेशी होने का भेद वादी को क्यों दिखाना पड़ा? अपने साध्य शब्द को अनित्य सिद्ध करने के लिए। कि जैसे घड़ा एकदेशी है ऐसे ही शब्द भी एकदेशी है। घड़ा भी अनित्य है, अतः शब्द भी अनित्य है।

इस प्रकार से, वादी की पहली प्रतिज्ञा थी "शब्द अनित्य है।" इसको सिद्ध करने के लिए उसे दूसरी प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि "शब्द एकदेशी है।"

इसे निग्रहस्थान कैसे कहा जाएगा? इस रूप में कहा जाएगा, कि एक प्रतिज्ञा को सिद्ध करने का साधन दूसरी प्रतिज्ञा नहीं होती, बल्कि हेतु और उदाहरण, प्रतिज्ञा को सिद्ध करने वाले साधन होते हैं।

अब वादी ने अपनी पहली प्रतिज्ञा को सिद्ध करने के लिए, दूसरी प्रतिज्ञा का सहारा लिया, जो अनर्थक है। इसलिए अनर्थक होने से यह निग्रहस्थान है।

विकल्प समा जाति और प्रतिज्ञान्तर निग्रहस्थान में अंतर --

"विकल्पसमा जाति में" - वादी का हेतु ठीक है। परंतु प्रतिवादी ने वादी द्वारा प्रस्तुत उदाहरण के अतिरिक्त एक और उदाहरण प्रस्तुत कर के, दोनों उदाहरणों में धर्मविकल्प दिखाया है। इसके आधार से वादी का खंडन किया है।

उदाहरण --

वादी --

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान, शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी --

उत्पत्ति धर्म वाली वस्तुओं में धर्मों का विकल्प देखा जाता है। अर्थात ऐसी वस्तुएँ दोनों प्रकार की होती हैं। जैसे, उत्पत्ति धर्म वाली कुछ वस्तुएँ स्पर्श गुण वाली होती हैं, जैसे घड़ा आदि। और कुछ अस्पर्श वाली भी होती हैं, जैसे सुख दुःख आदि। इसी प्रकार से, उत्पत्ति धर्म वाली कुछ वस्तुएँ अनित्य होती हैं, जैसे घड़ा आदि। और कुछ वस्तुएँ नित्य होती हैं, जैसे प्रध्वंसाभाव आदि। अतः शब्द भी, उत्पत्ति धर्म वाला होते हुए, प्रध्वंसाभाव के समान, नित्य ही है।

"प्रतिज्ञान्तर निग्रहस्थान में" - वादी का हेतु गलत है।

यहाँ प्रतिवादी ने हेतु का अनैकांतिकत्व दिखाकर अपना उदाहरण प्रस्तुत कर के वादी का खंडन किया है। उसके बाद फिर वादी ने , प्रतिवादी के उदाहरण की टक्कर में एक और नया उदाहरण देकर धर्म विकल्प दिखाया है।

उदाहरण --

वादी --

शब्द अनित्य है। ऐन्द्रियक (इन्द्रियों से जानने योग्य) होने से। जो जो वस्तु ऐन्द्रियक होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

प्रतिवादी --

जाति ऐन्द्रियक है, और वह नित्य है। शब्द भी ऐन्द्रियक है। तो शब्द भी जाति के समान नित्य है। वह अनित्य कैसे हो सकता है?

वादी का उत्तर --

(नए पक्ष के साथ) ऐन्द्रियक होते हुए जाति तो सर्वव्यापक है। जबकि ऐन्द्रियक होते हुए घड़ा सर्वव्यापक नहीं है, बल्कि एकदेशी है। और घड़े के समान शब्द भी एकदेशी है। इसलिए शब्द अनित्य है।।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

3- प्रतिज्ञाविरोध निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा -

प्रतिज्ञा और हेतु में सीधा विरोध होना, प्रतिज्ञाविरोध नामक निग्रहस्थान कहलाता है।

उदाहरण --

प्रतिज्ञा - द्रव्य, गुण से भिन्न होते हैं।

हेतु - रूपादि से भिन्न किसी वस्तु की उपलब्धि न होने से।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

इस उदाहरण में प्रतिज्ञा और हेतु का परस्पर विरोध है। कैसे?

प्रतिज्ञा थी कि - द्रव्य, गुण से भिन्न होते हैं। और हेतु यह दिया, - रूपादि से भिन्न किसी वस्तु की उपलब्धि न होने से।

यहां ध्यान देने की बात यह है, कि "यदि रूपादि से भिन्न किसी वस्तु की उपलब्धि होती ही नहीं," तो प्रतिज्ञा सिद्ध नहीं हो पाएगी, कि "द्रव्य, गुण से भिन्न होता है।"

www.darshanyog.org darshanyog@gmail.com

और यदि "द्रव्य, गुण से भिन्न होता है," तो फिर हेतु सिद्ध नहीं हो पाएगा, कि "रूप आदि से भिन्न कोई वस्तु संसार में मिलती ही नहीं।"

ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं। इसलिए दोनों संभव नहीं हो सकती। यहां वक्ता के कथन में - हेतु ने प्रतिज्ञा का विरोध किया है। इस कारण से यह निग्रहस्थान कहलाता है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

4- प्रतिज्ञासंन्यास निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

वादी ने जिस विषय को सिद्ध करने की प्रतिज्ञा की थी, उसके खंडित हो जाने पर, उस प्रतिज्ञात विषय को बिल्कुल ही छोड़ देना, प्रतिज्ञासंन्यास नामक निग्रहस्थान कहलाता है।

उदाहरण --

वादी द्वारा अपने पक्ष की स्थापना --

शब्द अनित्य है। ऐन्द्रियक (इन्द्रियों से जानने योग्य) होने से। जो जो वस्तु ऐन्द्रियक होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान, शब्द भी ऐन्द्रियक है। इसलिए ऐन्द्रियक होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा इसका खंडन --

जाति ऐन्द्रियक है, वह तो अनित्य नहीं है। शब्द भी ऐन्द्रियक है। तो शब्द भी अनित्य नहीं हो सकता! वह भी नित्य है।

वादी द्वारा इसका उत्तर

(घबराकर) अरे तो कौन कहता है, शब्द अनित्य है? शब्द तो नित्य ही है।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

जब प्रतिवादी ने, स्थापनावादी के पक्ष का खंडन कर दिया। तो बेचारा वादी उसके खंडन से घबरा गया। और घबराकर उसने अपने पक्ष को ही छुपा दिया, या पूरी तरह से छोड़ ही दिया। इस प्रकार से अपने पक्ष को छुपा देना, या पूरी तरह से ही छोड़ देना, प्रतिज्ञासंन्यास नामक निग्रहस्थान कहलाता है। यह कोई ठीक उत्तर नहीं है। इसलिये गलत उत्तर होने से इसे निग्रहस्थान कहते हैं।

प्रतिज्ञाहानि और प्रतिज्ञासंन्यास निग्रहस्थान में अंतर --

प्रतिज्ञाहानि निग्रहस्थान --

इसमें वादी मूर्खता के कारण प्रतिवादी के दृष्टांत के धर्म को अपने दृष्टांत में स्वीकार करके अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ बैठता है। जैसे, यदि जाति ऐन्द्रियक होते हुए नित्य है, तो घड़े को भी ऐन्द्रियक होते हुए नित्य मान लेते हैं।

प्रतिज्ञासंन्यास निग्रहस्थान --

इसमें वादी, प्रतिवादी के आक्रमण से घबराकर अपनी प्रतिज्ञा को स्पष्ट शब्दों में पूरी तरह से ही छोड़ देता है। जैसे कि -- "कौन कहता है, शब्द अनित्य है। शब्द तो नित्य ही है।"

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

भाग 58

5- हेत्वन्तर निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

वादी द्वारा सामान्य हेतु प्रस्तुत किया गया। उसका प्रतिवादी द्वारा खंडन हो जाने पर, वादी अपना हेतु बदलकर दूसरा नया हेतु रखता है। इसको हेत्वन्तर निग्रहस्थान कहते हैं।

उदाहरण --

वादी द्वारा अपने पक्ष की स्थापना --

प्रतिज्ञा - यह संसार एक उपादान तत्त्व से बना है। हेतु - सभी कार्य द्रव्यों में परिमाण देखा जाने से।

उदाहरण - जिन जिन कार्य द्रव्यों में परिमाण देखा जाता है, वे सब एक ही उपादान कारण से बने हुए होते हैं। जैसे घड़ा सकोरा तवा इत्यादि पदार्थ, एक ही उपादान कारण मिट्टी से उत्पन्न होते हैं।

उपनय - जैसे मिट्टी से बने प्रत्येक कार्य द्रव्य में परिमाण देखा जाता है। वैसे ही सारा संसार भी परिमाण से युक्त है।

निगमन - इसलिये सभी कार्य द्रव्यों में परिमाण देखा जाने से, यह संसार एक उपादान तत्त्व से बना है।

प्रतिवादी द्वारा इसका खंडन --

जो पदार्थ "अनेक उपादान" द्रव्यों से बनते हैं, उनमें भी परिमाण देखा जाता है। जैसे कि त्रिफला चूर्ण। या त्रिकटु चूर्ण इत्यादि।

इस प्रकार से अनैकांतिकत्व दोष होने से आपका हेतु खंडित हो गया।

वादी द्वारा इसका उत्तर --

जो त्रिफला चूर्ण, अथवा त्रिकटु चूर्ण इत्यादि अनेक उपादान द्रव्यों से बनते हैं, अंत में उनका भी एक ही उपादान कारण द्रव्य = मूल प्रकृति है। उस प्रकृति के तीन कणों में जो स्वभाव अर्थात सुख दुख मोह है। वैसा ही स्वभाव, सुख दुख मोह इस संसार के सभी कार्य द्रव्यों में देखा जाता है। इस प्रकार से एक स्वभाव (अर्थात सुख दुख मोह) से युक्त सभी कार्य द्रव्यों में परिमाण देखा जाने से, यह संसार एक उपादान तत्त्व से बना है।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या ---

इस उदाहरण में -- वादी ने पहले एक सामान्य हेतु प्रस्तुत किया। (सभी कार्य द्रव्यों में परिमाण देखा जाने से।) जब प्रतिवादी ने उसमें अनैकांतिकत्व दोष दिखाकर उसका खंडन कर दिया। तो वादी ने पहला हेतु खंडित हो जाने पर, दूसरा हेतु प्रस्तुत किया। (एक स्वभाव [अर्थात सुख दुख मोह] से युक्त सभी कार्य द्रव्यों में परिमाण देखा जाने से,) दूसरा हेतु प्रस्तुत करने से यह सिद्ध हुआ कि पहला हेतु अपने साध्य को सिद्ध करने में असमर्थ था, इसलिए उसका खंडन हो गया। फिर दूसरा विशेष हेतु प्रस्तुत करना पड़ा। तो दूसरा हेतु प्रस्तुत करने पर, पहला हेतु साध्य की सिद्धि में असमर्थ होने के कारण, यह हेत्वन्तर निग्रहस्थान कहलाता है।

अब दूसरा विशेष हेतु कहने पर, यदि कोई दृष्टांत प्रस्तुत किया जाएगा, तो प्रतिज्ञा सिद्ध नहीं हो पाएगी। क्योंकि वहां दृष्टांत में, एक अन्य उपादान प्रस्तुत करना पड़ेगा। तब दो उपादान हो जाएंगे। एक उपादान, प्रतिज्ञा वाले द्रव्यों का। और दूसरा उपादान, दृष्टांत वाले द्रव्यों का। ऐसा करना प्रतिज्ञा के विरुद्ध होगा, क्योंकि प्रतिज्ञा में तो यही कहा गया था कि संसार में केवल एक ही उपादान है।

इसके अतिरिक्त, यहाँ पर वादी ने एक भूल और की, कि उसने सारे जगत् को प्रतिज्ञा (साध्य कोटि) में ले लिया। इसलिये उदाहरण के लिए, जगत् से अलग कोई पदार्थ बचा नहीं। इसका परिणाम यह होगा कि, वादी अपने पक्ष की सिद्धि के लिए, दूसरा हेतु प्रस्तुत करने के बाद भी कोई उदाहरण नहीं दिखा पायेगा, क्योंकि जगत से बाहर कोई वस्तु है ही नहीं, जिसे उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सके। तब भी बिना उदाहरण के, हेतु द्वारा पक्ष की सिद्धि न कर पाने के कारण, निग्रहस्थान बना ही रहेगा। "यह कौन-सा निग्रहस्थान होगा"? ऐसा प्रश्न उपस्थित होने पर, यह उत्तर होगा, कि उदाहरण प्रस्तुत न करने पर "न्यून नामक निग्रहस्थान" होगा। इसकी चर्चा आगे निग्रहस्थान संख्या 11 पर, भाग 64 में की जाएगी।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

6- अर्थान्तर निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा--

प्रसंग में जो बात चल रही हो, उससे हट के असंबंधित बात को कहना अर्थान्तर नामक निग्रहस्थान कहलाता है।

उदाहरण --

वादी द्वारा अपने पक्ष की स्थापना--

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

* प्रतिवादी द्वारा इसका उत्तर* --

प्रतिज्ञा -- शब्द नित्य है।

हेतु -- अस्पर्श वाला होने से। यह जो "हेतु" शब्द है, यह हिनोति धातु से बनता है। इसमें तुनि प्रत्यय लगाया जाता है, और

यह कृदंत शब्द कहलाता है। व्याकरण शास्त्र में शब्द चार प्रकार के होते हैं। कुछ संज्ञा शब्द होते हैं, कुछ क्रिया शब्द होते हैं, कुछ उपसर्ग होते हैं, तथा कुछ अव्यय होते हैं।....

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

वादी ने जब अपने पक्ष की स्थापना विधिवत कर दी, उसका हेतु दृष्टांत सब कुछ ठीक था। तो प्रतिवादी को कोई ठीक से उत्तर सूझा नहीं। उसने अपने पक्ष में प्रतिज्ञा प्रस्तुत की। फिर उसका हेतु कह दिया। अब आगे वह अपने पक्ष की सिद्धि कर नहीं पाया। इसलिए उसने व्याकरण शास्त्र का सहारा लेकर हेतु शब्द की व्याख्या शुरू कर दी। हेतु शब्द, हिनोति धातु से बनता है। इसमें तुनि प्रत्यय लगाया जाता है, और यह कृदंत शब्द कहलाता है। शब्द चार प्रकार के होते हैं इत्यादि इत्यादि ।

इस प्रकार से प्रतिवादी प्रसंग से भटक गया और ऐसी बातें कहने लगा, जिनका उसके पक्ष की सिद्धि से या प्रसंग से कोई संबंध नहीं था। ऐसी बातें कहने से मूल विषय की सिद्धि नहीं होती, इसलिए इसको निग्रहस्थान कहते हैं।

प्रायः लोग बातचीत में ऐसी बहुत सी गलतियां करते हैं। प्रसंग को छोड़कर इधर-उधर की व्यर्थ बातें करते हैं, जिनका

प्रसंग से, या पूछे गए प्रश्न से कोई संबंध नहीं होता। कभी-कभी तो बिल्कुल उल्टी बात करते हैं। प्रश्न कुछ और पूछा जाता है, तथा उत्तर बिल्कुल अलग ही दिया जाता है।

जैसे -- एक विद्वान ने ईश्वर का निरकार स्वरूप प्रस्तुत किया। और यजुर्वेद का अध्याय 40, मंत्र 8 का शब्द प्रमाण प्रस्तुत किया। स पर्यगाच्छुक्रमकायम्...... आदि।

दूसरे विद्वान को ईश्वर को साकार सिद्ध करना था। परन्तु ईश्वर को साकार सिद्ध करने के लिए उसे कोई प्रमाण मिला नहीं। तब वह केवल अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिए, प्रसंग से बाहर के वेद मंत्रों का पाठ करने लगा। जैसे विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।...... इत्यादि।

दूसरा उदाहरण --

एक विद्यार्थी ने दूसरे से पूछा - "क्या तुम कल स्कूल आए थे?" दूसरे ने उत्तर दिया - "मेरी किताब खो गई है। मैंने होमवर्क नहीं किया।"

यह प्रश्न का सीधा उत्तर नहीं दिया गया। अतः अर्थान्तर निग्रहस्थान कहलाता है।

तीसरा उदाहरण --

एक व्यक्ति ने पूछा - "ताजमहल कहां पर है?" दूसरे ने इस प्रश्न का उत्तर दिया - "कि लाल किला दिल्ली में है।"

इस प्रकार से प्रसंग से बाहर की बात करना, असंबंद्ध बात करना, अर्थान्तर निग्रहस्थान कहलाता है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/2/8 में)

7- निरर्थक निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

क ख ग घ आदि वर्णों का क्रमशः उच्चारण करते जाना, निरर्थक नामक निग्रहस्थान कहलाता है।

उदाहरण --

वादी द्वारा अपने पक्ष की स्थापना --

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

* प्रतिवादी द्वारा इसका उत्तर* --

क ख ग घ ङ शब्द नित्य है। च छ ज झ ञ होने से। प फ ब भ म के समान।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

जब प्रतिवादी ने देखा, कि वादी का पक्ष बिल्कुल मजबूत है। मेरे पास बोलने के लिए कुछ है नहीं। तो अब मैं हारने की स्थिति में हूं। ऐसी स्थिति में वह, बिना किसी अर्थ के ऊट पटाँग बोलने लगता है। अर्थात् बिना किसी संबंध के क्रम से वर्णों का उच्चारण करने लगता है। इस प्रकार का अनर्गल कथन करने से प्रतिवादी के पक्ष की सिद्धि में कोई सहायता नहीं मिलती। इसलिये यह निरर्थक निग्रहस्थान कहलाता है।

अर्थान्तर और निरर्थक निग्रहस्थान में अंतर --

अर्थान्तर और निरर्थक निग्रहस्थान में अंतर यह है कि अर्थान्तर निग्रहस्थान में वक्ता की बात अपने आप में अर्थ वाली तो होती है, परंतु प्रस्तुत विषय से अलग हटकर होती है। जैसे किसी मंत्र का उच्चारण करने लगना, या किसी शब्द की व्याख्या करने लगना, इत्यादि।

और निरर्थक निग्रहस्थान में वक्ता की प्रतिज्ञा हेतु आदि किसी भी बात में परस्पर कोई भी संबंध नहीं होता। वह क्रम से केवल अक्षरों का ही उच्चारण करने लगता है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/2/9 में)

8- अविज्ञातार्थ निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

वादी द्वारा अपनी बात तीन बार कहने पर भी, उसकी बात को प्रतिवादी और न्यायाधीश मंडल नहीं समझ पाया। इसे अविज्ञातार्थ नामक निग्रहस्थान कहते हैं।

उदाहरण --

वादी का कथन --

शब्द नित्य है। जर्भरी तुर्फरीतु इत्यादि होने से। जहां-जहां जर्भरी तुर्फरीतु शब्द होते हैं वहां वहां भूत प्रेतों की सिद्धि होती है। पश्चिम दिशा में गांव के लोग प्रायः खंडितु पंडितु करते हैं। और जब खंडितु पंडितु करते हैं, तब उससे भूत प्रेत आ जाते हैं। उस समय जर्भरी तुर्फरीतु इत्यादि होने से, शब्द नित्य है।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

वाद क्रिया में तीन पक्ष होते हैं। वादी, प्रतिवादी और न्यायाधीश मंडल। वाद में वादी और प्रतिवादी को अपनी अपनी बात स्पष्ट रूप से रखनी चाहिए, ताकि सबको समझ में आए , कि

कौन व्यक्ति क्या कहना चाहता है। तथा प्रतिवादी भी उसे समझकर ठीक से उत्तर दे पाए, और सत्य असत्य का निर्णय ठीक प्रकार से हो जाए।

परंतु वादी अपने पक्ष को प्रस्तुत करते समय यह सोचता है, कि मेरे पास बोलने के लिए कोई सही पक्ष तो है नहीं। इसलिए वह अपने असामर्थ्य/कमजोरी को छुपाना चाहता है। इस उद्देश्य से वह या तो अनेक बार कठिन शब्दों का प्रयोग करता है, या बहुत तीव्र गति से बोलता है, या अप्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग करता है, ताकि लोग उसकी बात को समझ ही न पाएँ, और बात यूँ ही "आई गई हो जाए।"

जब इस भावना से वादी अपना पक्ष रखता है, वह प्रतिवादी तथा न्यायाधीश मंडल को समझ में नहीं आता। तो वे कहते हैं, अपनी बात को दोबारा कहिए। वादी अपनी बात को दोबारा कहता है। फिर भी उसकी बात प्रतिवादी और न्यायाधीश मंडल को समझ में नहीं आती। तब तीसरी बार एक और अवसर दिया जाता है। जब तीन बार दोहराने पर भी, वादी के कथन को न तो प्रतिवादी समझ पाता है, और न ही न्यायाधीश मंडल। तो इसे वादी का व्यर्थ कथन अर्थात अविज्ञातार्थ नामक निग्रहस्थान माना जाता है। इसमें वादी का दोष है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/2/10 में)

9- अपार्थक निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

जहां कोई व्यक्ति ऐसे शब्दों या वाक्य का प्रयोग करे, जिनमें अगले पिछले शब्दों का आपस में कोई अर्थ का संबंध न हो, वहां अर्थ के छूट जाने से अपार्थक नामक निग्रहस्थान होता है।

*उदाहरण --

जैसे वादी कहने लगा, दस अनार, छः मालपुए, पानी की टंकी, बकरी की खाल, माँस का पिंड, काले हिरण का चमड़ा, कन्या का पेय पदार्थ, उसका पिता वृद्ध है, इत्यादि। यहाँ वाक्य का कोई ठीक से समझने योग्य अर्थ नहीं निकल रहा।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

जब वक्ता के द्वारा कहे गए शब्दों में परस्पर कोई संबंध नहीं होता। उन शब्दों से, आपस में मिलकर कोई उचित या समझने योग्य अर्थ प्रकट नहीं होता, ऐसी स्थिति में इस सारे कथन का अर्थ नष्ट हो जाने या छूट जाने से, यह निग्रहस्थान कहलाता है । यदि

इस बात को मुहावरे की भाषा में कहें, तो ऐसे कहेंगे, - कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा। भानुमती ने कुनबा जोड़ा।

अर्थान्तर, निरर्थक और अपार्थक निग्रहस्थान में अंतर --

अर्थान्तर निग्रहस्थान में वक्ता की बात, प्रस्तुत विषय से अलग हटकर होती है। जैसे किसी मंत्र का उच्चारण करने लगना, या किसी शब्द की व्याख्या करने लगना, इत्यादि।

निरर्थक निग्रहस्थान में वक्ता केवल वर्णों का उच्चारण बिना किसी संबंध के करता जाता है। क, ख, ग, घ आदि।

अपार्थक निग्रहस्थान में वक्ता कुछ ऐसे शब्द या वाक्य बोलता जाता है, जिनका परस्पर कोई संबंध नहीं होता।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/2/11 में)

10- अप्राप्तकाल निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा

प्रतिज्ञा आदि अवयवों का क्रम भंग करके अर्थात आगे पीछे करके बोलना, अप्राप्तकाल नामक निग्रहस्थान है।

उदाहरण --

वादी का कथन --

शब्द अनित्य है। जैसे घड़ा।

ऐन्द्रियक होने से। जो जो वस्तु ऐन्द्रियक होती है, वह वह अनित्य होती है।

घड़े के समान, शब्द भी ऐन्द्रियक है।

इसलिए ऐन्द्रियक होने से, शब्द अनित्य है।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

पांच अवयवों का जो एक विशेष क्रम = प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, और निगमन, बनाया गया है, यह इसलिये

बनाया गया है, कि इनका आपस में इस क्रम में विशेष संबंध है। और इस क्रम से अवयवों को कहने पर अर्थ को समझने में बहुत सरलता एवं स्पष्टता होती है।

उक्त उदाहरण में वादी ने पहले प्रतिज्ञा को प्रस्तुत किया। फिर दृष्टांत दे दिया। उसके बाद हेतु प्रस्तुत किया। इस प्रकार से उसने अवयवों का क्रम बदल दिया। भले ही प्रतिज्ञा आदि पांचों अवयव ठीक भी हों, तब भी, इन पांच अवयवों का क्रम बदलने से, उनका आपस में संबंध जोड़ने में तथा अर्थ को समझने में कठिनाई होती है। इस कठिनाई को उत्पन्न करने के कारण से इसको निग्रहस्थान माना जाता है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/2/12 में)

11- न्यून निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

प्रतिज्ञा आदि पांच अवयवों में से किसी भी एक, दो, तीन या चार अवयवों को कम बोलना, अर्थात पूरे 5 अवयव न बोलना, यह न्यून नामक निग्रहस्थान कहलाता है।

उदाहरण --

वादी का कथन --

शब्द अनित्य है।

ऐन्द्रियक होने से। जो जो वस्तु ऐन्द्रियक होती है, वह वह अनित्य होती है।

शब्द भी ऐन्द्रियक है।

इसलिए ऐन्द्रियक होने से, शब्द अनित्य है।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

वादी और प्रतिवादी के लिए अपनी अपनी बात को सिद्ध करने के लिए पांच अवयवों का विधान किया गया है। ये पांचों

अवयव मिलकर अपने पक्ष की सिद्धि करते हैं। अर्थात साधन कहलाते हैं। यदि इनमें से कोई भी एक या दो अवयव कम बोले जाएंगे, तो साधन के बिना साध्य की सिद्धि ठीक प्रकार से नहीं हो पाएगी। ऊपर के कथन में वादी ने उदाहरण नामक तीसरे अवयव को प्रस्तुत ही नहीं किया। उदाहरण प्रस्तुत न करने से पक्ष की सिद्धि नहीं हो पाती । इसलिए इसको निग्रहस्थान कहा जाता है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/2/13 में)

12- अधिक निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा

प्रतिज्ञा आदि पांच अवयवों को प्रस्तुत करते हुए, एक से अधिक हेतु या उदाहरण दे देना, अर्थात एक साथ दो तीन हेतु, या दो तीन उदाहरण प्रस्तुत कर देना, यह अधिक नामक निग्रहस्थान कहलाता है।

(विशेष सूचना -- इसे निग्रहस्थान तभी माना जाएगा, जब वादी और प्रतिवादी, वाद के नियमों को निर्धारित करते समय ऐसा नियम बनाएंगे, कि "एक समय में एक से अधिक हेतु या उदाहरण इकट्ठे नहीं दिये जाएँगे।"

यदि यह नियम निर्धारित न किया गया हो, तो सामान्य रूप से दो-तीन हेतु या उदाहरण इकट्ठे देने में कोई दोष नहीं है, तब इसे निग्रहस्थान नहीं माना जाएगा।)

उदाहरण --

वादी का कथन --

www.darshanyog.org darshanyog@gmail.com

शब्द अनित्य है।

ऐन्द्रियक होने से। उत्पत्ति वाला होने से।

जो-जो वस्तु ऐन्द्रियक होती है, उत्पत्ति वाली होती है, वह वह अनित्य होती है।

जैसे घड़ा, कपड़ा, मकान आदि।

घड़े, कपड़े, मकान आदि के समान, शब्द भी ऐन्द्रियक है, उत्पत्ति वाला है।

इसलिए ऐन्द्रियक होने से, उत्पत्ति वाला होने से, शब्द अनित्य है।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

उक्त उदाहरण में वादी ने अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिए दो हेतु इकट्ठे दिए और तीन उदाहरण भी एक साथ दे दिए।

अब समझने की बात यह है, कि जब एक ही हेतु, और एक ही उदाहरण से साध्य की सिद्धि हो सकती है, तो दूसरा तीसरा हेतु या उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। इस दृष्टि से इसको निग्रहस्थान कहा जाता है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

13- पुनरुक्त निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

शब्द को या अर्थ को व्यर्थ में दोहराना पुनरुक्त नामक निग्रहस्थान कहलाता है। अनुवाद को छोड़कर। अर्थात अनुवाद में जो शब्द या अर्थ को दोहराया जाता है, वह सार्थक होने से निग्रहस्थान नहीं कहलाता।

उदाहरण --

वादी कहता है--

शब्द नित्य है। शब्द नित्य है। (यहाँ शब्द को व्यर्थ में दोहराया।)

शब्द अनित्य है। ध्वनि नाशवान है। (यहाँ अर्थ को व्यर्थ में दोहराया।)

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

जैसा कि ऊपर के उदाहरणों में दिखाया गया है, कहीं तो शब्द को यूं का यूं व्यर्थ में दोहरा दिया। और कहीं पहले जो शब्द बोला गया, उसी का अर्थ दूसरे शब्दों में दोहरा दिया। ऐसा दोनों प्रकार से करना व्यर्थ होने से निग्रहस्थान कहलाता है। जब एक ही बार कहने से अर्थ समझ में आ गया, तो बिना लाभ के दोबारा क्यों दोहराया जाए?

अनुवाद में यह नियम लागू नहीं होता। क्योंकि अनुवाद में तो शब्दों को या अर्थ को दोहराने से विशेष लाभ होता है, इसलिए उसे दोष नहीं माना जाता, अथवा उसे निग्रहस्थान नहीं माना/ कहा जाता।

जैसे कि, अनुवाद का उदाहरण-- "यज्ञ करना चाहिए। यज्ञ करने से आयु बल बुद्धि आदि की वृद्धि होती है।"

इन दो वाक्यों में "यज्ञ करना" शब्दों को दोहराया गया है। एक वाक्य में यज्ञ का विधान किया गया है। दूसरे वाक्य में उसका लाभ बताया गया है। इन शब्दों को दूसरे वाक्य में दोहराने से, यज्ञ का लाभ समझाने में सहायता मिलती है। अतः उपयोगी कथन होने से इसे "अनुवाद" कहते हैं। इस प्रकार से इन शब्दों को दोहराना सार्थक होने से, यह निग्रहस्थान अथवा दोष नहीं है।

13- पुनरुक्त निग्रहस्थान की दूसरी परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

अथवा अर्थापत्ति से जो बात समझ में आ गई, उसे फिर शब्दों से दोहराना, यह भी पुनरुक्त नामक निग्रहस्थान है।

उदाहरण --

वादी कहता है, -- शब्द उत्पत्ति धर्म वाला होने से अनित्य है, क्योंकि अनुत्पत्ति धर्म वाली वस्तु नित्य होती है।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

अब यह बात अर्थापत्ति से समझ में आ ही गई थी, कि - अनुत्पत्ति धर्म वाली वस्तु नित्य होती है। फिर भी इस बात को वादी ने अपने शब्दों के माध्यम से व्यर्थ में दोहराया। व्यर्थ में दोहराना अनुपयोगी होने से, यह निग्रहस्थान कहलाता है।

नोट -- यह निग्रहस्थान वाद-विवाद के क्षेत्र में ही माना जाता है। प्रवचन के क्षेत्र में, शब्दों को या अर्थ को दोहराना, अथवा अर्थापत्ति से प्राप्त बात को दोहराना दोष नहीं माना जाता। क्योंकि वहां ऊंचे नीचे स्तर के सब प्रकार के श्रोता होते हैं।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

14- अननुभाषण निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

प्रतिवादी ने अपने पक्ष को स्थापित किया। उसके वाक्यार्थ को न्यायाधीश मंडल ने ठीक से समझ लिया। प्रतिवादी द्वारा तीन बार अपनी बात कही गई, और वादी से उत्तर माँगा। वादी ने भी, प्रतिवादी की बात को समझ तो लिया, परंतु उसका उत्तर मालूम न होने से, वादी ने, प्रतिवादी के वाक्य को न तो दोहराया, और न ही उसका कोई उत्तर दिया। इस प्रकार से मौन रहना, अननुभाषण नामक निग्रहस्थान कहलाता है।

उदाहरण --

प्रतिवादी द्वारा स्थापना --

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा। घड़े के समान, शब्द भी उत्पत्ति वाला है। इसलिए उत्पत्ति वाला होने से, शब्द अनित्य है।
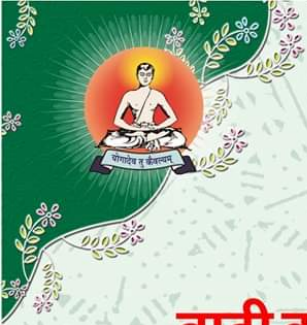
वादी का पक्ष --

वादी, प्रतिवादी के पक्ष को समझ तो गया, परंतु उसका उत्तर मालूम न होने से, वादी मौन बैठा रहा, कुछ नहीं बोला।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

ऊपर लिखे उदाहरण के अनुसार प्रतिवादी ने अपनी बात को तीन बार दोहराया। उसके वाक्य का अर्थ, न्यायाधीश मंडल को भी समझ में आ गया और वादी को भी समझ में आ गया।

अब वादी को इसका उत्तर देना था। जब उत्तर दिया जाता है, तो दूसरे वक्ता के वाक्य को पहले दोहराया जाता है, तब उसका उत्तर इस प्रकार से दिया जाता है, प्रतिवादी ने अपने पक्ष में यह बात कही है, कि शब्द अनित्य है। उत्पत्ति वाला होने से।...मेरा उत्तर यह है, कि .... इत्यादि.

जब तक दूसरे व्यक्ति के वाक्य को दोहराया नहीं जाएगा, तो उत्तर किस आधार पर दिया जाएगा। इसलिए उत्तर देने से पहले, दूसरे वक्ता के वाक्य को दोहराना पड़ता है, ताकि उत्तर ठीक प्रकार से स्पष्ट हो सके, एवं दूसरों को आसानी से समझ में आ सके।
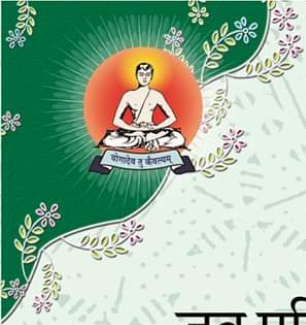
जब प्रतिवादी ने अपनी बात को तीन बार दोहराया, और उत्तर पूछा, तो 3 बार पूछने पर भी वादी ने, प्रतिवादी के पक्ष को न तो दोहराया, और न ही कुछ उत्तर दिया। बस, मौन ही बैठा रहा। इससे यह सिद्ध हुआ कि वादी के पास कोई ठीक सा उत्तर नहीं है। उत्तर न होने से तथा उत्तर न देने के कारण, वादी का पक्ष झूठ सिद्ध हो गया, अर्थात् वादी हार गया। इसलिए इसे निग्रहस्थान कहते हैं। इसमें वादी का दोष है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

भाग 68

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/2/18 में)

15- अज्ञान निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

प्रतिवादी ने अपने पक्ष को स्थापित किया। उसके वाक्यार्थ को न्यायाधीश मंडल ने ठीक से समझ लिया। प्रतिवादी द्वारा तीन बार अपनी बात कही गई, और वादी से उत्तर माँगा। वादी, प्रतिवादी की बात को समझ ही नहीं पाया, इसलिये उसका कोई उत्तर भी नहीं दे पाया, और मौन रहा। अथवा प्रतिवादी के वाक्यार्थ को, वादी ने ठीक प्रकार से नहीं समझा, गलत समझा, और गलत उत्तर देने लगा। इस प्रकार से मौन रहना, या गलत उत्तर देना, अज्ञान नामक निग्रहस्थान कहलाता है।

उदाहरण --

1- प्रतिवादी द्वारा स्थापना --

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति वाला होने से। जो-जो वस्तु उत्पत्ति वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा। घड़े के समान, शब्द भी उत्पत्ति वाला है। इसलिए उत्पत्ति वाला होने से, शब्द अनित्य है।

www.darshanyog.org
darshanyog@gmail.com

2- वादी का पक्ष --

वादी, प्रतिवादी के पक्ष को समझ ही नहीं पाया, और मौन रहा, कुछ नहीं बोला।

3- वादी का पक्ष --

अथवा प्रतिवादी के पक्ष को गलत समझा और जैसा समझा, उसके अनुसार गलत ही उत्तर देने लगा।

(अर्थात जो बात प्रतिवादी कहना चाहता था, उसे तो समझा नहीं। और जिस बात को प्रतिवादी कहना नहीं चाहता था, उसे प्रतिवादी का पक्ष मानकर, उसका उत्तर देने लगा।)

उदाहरण --

वादी का कथन -- प्रतिवादी यह कह रहा है, कि जैसे घड़ा सिर पर रखा जाता है, और कभी कभी गिरकर टूट जाता है। इसी तरह से यदि शब्द को भी सिर पर रखा जाए, तो वह भी घड़े के समान टूट जाएगा। परंतु शब्द तो घड़े के समान कोई ठोस वस्तु है नहीं, जो सिर पर रखा जा सके, और गिरकर जमीन पर टकरा कर टूट जाए। इसलिए प्रतिवादी ठीक नहीं कह रहा है। शब्द तो टूट ही नहीं सकता, इसलिये शब्द नित्य है।

www.darshanyog.org
darshanyog@gmail.com

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

जब प्रतिवादी ने अपना पक्ष स्थापित किया और उसके वाक्यार्थ को न्यायाधीश मंडल ने समझ लिया। तो प्रतिवादी ने वादी से कहा, मेरी बात का उत्तर दीजिए। वादी बोला कि मुझे आपकी बात समझ में नहीं आई। आप अपनी बात दोबारा से कहें। प्रतिवादी ने अपनी बात दोबारा कही। वादी को फिर भी समझ में नहीं आई। प्रतिवादी ने अपनी बात तीसरी बार कही। तीन बार कहने पर भी वादी को, प्रतिवादी की बात समझ में नहीं आई। तो बेचारा वादी कुछ भी उत्तर नहीं दे पाया। जब वादी, प्रतिवादी की बात को समझा ही नहीं, तो उत्तर क्या देता?

परन्तु अनेक बार ऐसा भी देखा जाता है कि प्रतिवादी की बात को, वादी कुछ और ही (गलत) समझ लेता है, जो बात प्रतिवादी कहना नहीं चाहता था।

इस प्रकार से विषय को न समझ पाना, अथवा प्रतिवादी के पक्ष को गलत समझकर, उसके अनुसार गलत ही उत्तर देना, इस कमजोरी के कारण इसे निग्रहस्थान कहते हैं। इसमें भी वादी का दोष है।

- **स्वामी विवेकानंद परिव्राजक**
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

www.darshanyog.org
darshanyog@gmail.com

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/2/19 में)

16- अप्रतिभा निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

वादी ने अपने पक्ष को स्थापित किया। प्रतिवादी ने वादी के पक्ष को समझ लिया। जब प्रतिवादी, उत्तर देने लगा, तो योग्यता कम होने से वह अपनी बात को उचित शब्दों में प्रस्तुत ही नहीं कर पाया। इस प्रकार से उत्तर का संपादन ठीक तरह से न कर पाना, अप्रतिभा नामक निग्रहस्थान कहलाता है।

उदाहरण --

वादी द्वारा स्थापना --

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति वाला होने से। जो-जो वस्तु उत्पत्ति वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा। घड़े के समान, शब्द भी उत्पत्ति वाला है। इसलिए उत्पत्ति वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा उत्तर --

शब्द नित्य है। घड़े के समान। जैसे घड़ा आंख से दिखता है ऐसे शब्द आंख से नहीं दिखता। अरे नहीं, नहीं, मेरा उदाहरण गलत हो गया। घड़ा तो अनित्य है। जबकि मैं शब्द को नित्य कह रहा हूँ। आप

किसी नित्य वस्तु का उदाहरण अपने मन में सोच लीजिये। शब्द भी वैसा ही है। अतः शब्द नित्य है।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

उक्त उदाहरण में, वादी ने अपने पक्ष की स्थापना की। उसकी बात प्रतिवादी को समझ में आ गई । फिर वादी ने कहा कि मेरी बात का उत्तर दीजिए। अब प्रतिवादी को उत्तर के रूप में वादी के पक्ष का खंडन करना था।

प्रतिवादी जब उत्तर देने लगा, तो उसे उचित शब्दों में वह प्रस्तुत नहीं कर पाया। इस प्रकार से प्रतिवादी में अपने पक्ष को सिद्ध करने की योग्यता अधूरी थी। इसलिए वह अपने पक्ष को ठीक प्रकार से सिद्ध नहीं कर पाया।

इस योग्यता की कमी के कारण इसे निग्रहस्थान कहा जाता है। इसमें प्रतिवादी का दोष है।

अविज्ञातार्थ, अननुभाषण, अज्ञान और अप्रतिभा नामक निग्रहस्थानों में अंतर --

अविज्ञातार्थ नामक निग्रहस्थान में, वादी ने 3 बार अपनी बात कही। परंतु गलत तरीके से कही, ताकि प्रतिवादी और न्यायाधीशों को समझ में ही न आए, कि वह क्या कह रहा है। इसमें वादी का दोष था।

अननुभाषण नामक निग्रहस्थान में, प्रतिवादी ने 3 बार अपनी बात कही। न्यायाधीशों को ठीक प्रकार से समझ में आई। वादी को भी बात समझ में आई। परंतु वादी को उत्तर ज्ञात न होने से, वादी ने, प्रतिवादी के वाक्य को न तो दोहराया, और न ही कोई उत्तर दिया, वह मौन ही रहा। इसमें भी वादी का दोष था।

अज्ञान नामक निग्रहस्थान में, प्रतिवादी ने 3 बार अपनी बात कही। परंतु प्रतिवादी के वाक्यार्थ को, वादी समझ ही नहीं पाया। इसलिये मौन रहा। अथवा प्रतिवादी के वाक्यार्थ को, वादी ने ठीक प्रकार से नहीं समझा, गलत समझा, और गलत उत्तर देने लगा। इसमें भी वादी का दोष था।

अप्रतिभा नामक निग्रहस्थान में, वादी या प्रतिवादी, दो में से कोई भी जब उत्तर देने लगा, तो वह विपक्षी की बात को समझ तो गया, परंतु अपनी उत्तर देने की योग्यता की कमी के कारण, वह ठीक प्रकार से उत्तर को प्रस्तुत नहीं कर पाया।

इस प्रकार से चारों निग्रहस्थानों में यह थोड़ा थोड़ा अंतर है। इस अंतर को ध्यान में रखना चाहिए।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/2/20 में)

17- विक्षेप निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

वादी ने अपने पक्ष को स्थापित किया। प्रतिवादी ने वादी के पक्ष को समझ लिया, और यह भी समझ लिया, कि मेरे पास इसका कोई सही उत्तर नहीं है। इसलिये किसी कार्य का बहाना बना कर, बात को बीच में ही छोड़कर जाने लगा। इस तरह से बात पूरी न करना, बीच में छोड़कर चले जाना, विक्षेप नामक निग्रहस्थान कहलाता है।

उदाहरण --

वादी द्वारा स्थापना --

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति वाला होने से। जो-जो वस्तु उत्पत्ति वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा। घड़े के समान, शब्द भी उत्पत्ति वाला है। इसलिए उत्पत्ति वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी द्वारा इसका उत्तर --

बात ऐसी है कि, मुझे कुछ आवश्यक काम याद आ गया

है। अभी एक घंटे के बाद, मेरे घर पर कुछ अतिथि आने वाले हैं, उनके लिए बाजार से सामान लाना है। यदि मैं अभी नहीं गया, बाद में गया, तो दुकान बंद हो जाएगी। इसलिए मैं अभी तो सामान लेने जा रहा हूं। फिर मैं कल इस विषय में आपसे बात करूंगा।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

वादी ने अपने पक्ष की स्थापना की। प्रतिवादी को उसकी बात ठीक प्रकार से समझ में आ गई। वह उत्तर सोचने लगा। और वह इस बात को भी समझ गया, कि वादी का पक्ष सही है, मेरे पास इसका कोई ठीक-ठीक उत्तर नहीं है।

तब प्रतिवादी ने अपने मन में सोचा, कि "मेरे पास ठीक ठीक उत्तर तो कुछ है नहीं। हार तो मैं चुका ही हूँ। अपने सम्मान की रक्षा भी करनी है। इसलिए अब कुछ बहाना बनाकर यहां से निकल लेना ही उचित है।" ऐसा मन में सोच करप्रतिवादी बोला, कि "मुझे कुछ आवश्यक काम याद आ गया है। मेरे घर पर कुछ अतिथि आने वाले हैं, उनके लिए बाजार से सामान लाना है। यदि अभी नहीं गया, तो बाद में दुकान बंद हो जाएगी। इसलिए मैं अभी तो सामान लेने जा रहा हूं। फिर मैं कल आपसे बात करूंगा।"

इस प्रकार से काम का बहाना बनाकर, बातचीत को बीच में ही छोड़कर चले जाना, यह कमजोरी है।

जब वह बहाना बनाकर बात को बीच में ही छोड़ कर चला जाता है, तो इसका अर्थ है कि आज की बातचीत पूरी हो गई। इस बातचीत में प्रतिवादी उत्तर नहीं दे पाया, इसलिए वह हार गया। कल जब बात होगी, तो वह तो नए सिरे से होगी, और नई ही बात होगी। आज की बात तो यहीं समाप्त। इस कारण से इसे निग्रहस्थान कहते हैं।

अनेक बार ऐसे बातचीत करते करते जब एक पक्ष वाला व्यक्ति हार जाता है, तो वह सीधे सीधे अपनी हार स्वीकार करना नहीं चाहता। और अपने अभिमान के कारण यह कहता है कि अब मुझे आगे बात नहीं करनी है. परंतु वह उसका कारण नहीं बतलाता, कि मुझे आगे बात क्यों नहीं करनी है?

उसके मन में जो भी कारण हो, चाहे अपमानित होने का भय हो, चाहे हार घोषित होने का भय हो, या अन्य भी कोई कारण हो, उस कारण से यदि वह बातचीत को बीच में ही छोड़ देता है, तो यह भी विक्षेप नामक निग्रहस्थान है। वह अपनी कमजोरी को दबाना चाहता है, इसलिए यह निग्रहस्थान कहलाता है।

विशेष सूचना --

कभी-कभी सामने वाला व्यक्ति (प्रतिवादी) मूर्ख होने से वादी की सही बात को समझ नहीं पाता। तब वादी कहता है कि आपकी योग्यता कम होने से आप मेरी बात को समझ नहीं पा रहे, इसलिए मैं आपसे आगे बात करना नहीं चाहता, ताकि मेरा समय नष्ट न हो। तो आप अपना कोई विद्वान प्रतिनिधि ले आएँ, मैं उससे बात कर लूंगा। और उसे सत्य समझा दूँगा। ऐसा कहकर यदि वादी बातचीत को बीच में ही छोड़ देता है। तो इस स्थिति में बातचीत को छोड़ देना निग्रहस्थान नहीं कहलाता। क्योंकि यहां उसने अपनी कोई कमजोरी छुपाने के लिए ऐसा नहीं किया है। बल्कि प्रतिवादी की योग्यता कम होने के कारण, अपना समय व्यर्थ नष्ट न हो, इस भावना से बातचीत को बीच में ही छोड़ दिया है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

18- मतानुज्ञा निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

वादी ने अपने पक्ष को कुछ दोषपूर्वक स्थापित किया। प्रतिवादी ने, वादी के पक्ष में दोष आरोपित किया। वादी ने उस दोष को परोक्ष रूप से स्वीकार करते हुए प्रतिवादी पर भी वही आरोप लगाया। कि "आपके पक्ष में भी वही दोष है।" अथवा सीधा-सीधा शब्दों से स्वीकार कर लिया, कि "हाँ, मैं दोषी हूँ।" यह मतानुज्ञा नामक निग्रहस्थान कहलाता है। (मत = आरोप। अनुज्ञा = स्वीकार कर लेना। मतानुज्ञा = दूसरे व्यक्ति द्वारा लगाए गए आरोप को स्वीकार कर लेना।)

उदाहरण

वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना --

1- शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा। घड़े के समान शब्द भी, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होता है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है।

2- प्रतिवादी द्वारा इसका खंडन --

शब्द नित्य है। प्रयत्न के कार्य अनेक होने से। प्रयत्न से तो दोनों कार्य होते हैं, उत्पत्ति भी और अभिव्यक्ति भी। जैसे पर्दा हटाने का प्रयत्न करने के बाद, कमरे में रखी वस्तुएँ प्रकट हो जाती हैं। ऐसे ही उच्चारण रूपी प्रयत्न के बाद शब्द अभिव्यक्त हो रहा है, इसलिए शब्द नित्य है।

आपके पक्ष में अनैकांतिकत्व दोष है। क्योंकि आपका हेतु दोनों पक्षों में जाता है।

3- वादी द्वारा इसका उत्तर --

आपके पक्ष में भी वही अनैकांतिकत्व दोष है, जो आपने हमारे पक्ष में दिखाया है। क्योंकि आपका हेतु भी दोनों पक्षों में जा रहा है, किसी एक पक्ष की सिद्धि नहीं कर रहा।

4- प्रतिवादी का कथन --

आपने हमारे द्वारा आरोपित किए हुए दोष को स्वीकार कर लिया। यह आप का मतानुज्ञा नामक निग्रहस्थान है।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

पहले वादी ने अपने पक्ष की स्थापना की। उसके हेतु में वास्तव में अनैकांतिकत्व दोष था। फिर प्रतिवादी ने उसका दोष दिखाया, कि आप के पक्ष में अनैकांतिकत्व दोष है। फिर वादी ने, प्रतिवादी पर पलटकर वही दोष लगाया, कि "जो दोष हमारे पक्ष में है, वही आप के पक्ष में भी है।"

इस प्रकार से कहना, मतानुज्ञा निग्रहस्थान कहलाता है। क्योंकि वादी ने तीसरे नंबर पर जो भाषा बोली, उसकी भाषा में उसने प्रतिवादी द्वारा आरोपित दोष को अपने पक्ष में स्वीकार कर लिया। इसलिये यह निग्रहस्थान है। और ऐसा कहकर वादी हार गया।

वास्तव में निग्रहस्थान से बचने के लिए, प्रमाण व तर्क से वादी को स्वयं को निर्दोष सिद्ध करना चाहिए था। कि मेरे पक्ष में दोष नहीं है, मेरा पक्ष ठीक है. यह उसका प्रमाण व तर्क है। इस तरह से बोलना चाहिए था। यदि ऐसे बोलता, तो निग्रहस्थान नहीं होता। परंतु उक्त उदाहरण में दोष था ही। इसलिए वादी ऐसा नहीं कह सकता था। इसलिये वह निग्रहस्थान में आ गया।

मतानुज्ञा निग्रहस्थान का एक अन्य उदाहरण इस प्रकार से है। एक व्यक्ति ने कहा, कि आप तो झूठ बोलते हैं. दूसरे ने पलटकर कहा, आप तो मुझसे चार गुना झूठ बोलते हैं. इस तरह से उत्तर देना, मतानुज्ञा निग्रहस्थान है। क्योंकि उत्तर देने वाले ने, आक्षेप कर्ता के आरोप को, अपने उत्तर में स्वीकार कर लिया। और स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया।

समीक्षा -- हमें इस निग्रहस्थान से यह सीखने को मिलता है, कि बातचीत में सावधान रहें। यदि कोई आपके ऊपर आरोप लगाता है, तो इस भाषा में उसे न कहें, कि "जो दोष मेरे पक्ष में है, वही आप के पक्ष में भी है।" बल्कि पहले तो अपना हेतु दृष्टांत आदि

पंचावयव दोष रहित शुद्ध रूप से प्रस्तुत करें। और फिर भी यदि प्रतिवादी आरोप लगाए, तो अपने आप को निर्दोष सिद्ध करने के लिए कोई प्रमाण या तर्क प्रस्तुत करें। तब यह निग्रहस्थान नहीं होगा।

दूसरी बात, विशेष --

यह निग्रहस्थान तब होगा, जब कोई आपके ऊपर दोष लगाए, और आप वही दोष दूसरे पर आरोपित करें।

परंतु यदि कोई व्यक्ति आप पर दोष नहीं लगा रहा, आपका गुण बता रहा है। तो यहां इस प्रकार से बोलना निग्रहस्थान नहीं कहलाएगा।

उदाहरण के लिए --

कोई कहता है कि आप तो प्रतिदिन यज्ञ करते हैं, और यज्ञ में 200 ग्राम घी की आहुति देते हैं। आप बड़े पुण्यात्मा हैं। ऐसी स्थिति में यदि आप उसे ऐसा उत्तर दें, कि मैं तो 200 ग्राम ही घी की आहुति देता हूं, आप तो प्रतिदिन यज्ञ में 400 ग्राम घी की आहुति देते हैं। आप तो मुझसे दुगने पुण्यात्मा हैं।

इस प्रकार से बोलना निग्रहस्थान नहीं कहलाएगा। क्योंकि यहां दूसरे व्यक्ति ने आप पर कोई दोष आरोपित नहीं किया, बल्कि आपका गुण ही बताया है। और वह आपसे भी दुगनी मात्रा में इस गुण को धारण किए बैठा है। आपने भी इसी भाषा में, उसकी

प्रशंसा में, दुगना कथन किया। इसलिये इसमें दोष न होने से इसे निग्रहस्थान नहीं कहेंगे।

जैसे कि, शब्दों को दोहराने पर, अनुवाद में दोष नहीं होता, पुनरुक्त में दोष होता है। ऐसा ही यहां भी समझना चाहिए, कि गुण के क्षेत्र में निग्रहस्थान नहीं होगा, दोष आरोपित करने पर निग्रहस्थान होगा।

उपपत्तिसमा जाति और मतानुज्ञा निग्रहस्थान में अंतर --

उपपत्तिसमा जाति --

इसमें वादी का कारण भी सिद्ध होता है, और प्रतिवादी का कारण भी सिद्ध होता है। दोनों के अपने-अपने कारण उनकी-उनकी प्रतिज्ञा की सिद्धि में सिद्ध होते हैं। ऐसा कहा जाता है। जैसे - प्रतिवादी -- यदि शब्द की अनित्यता का कारण, सिद्ध होने से, शब्द अनित्य है। तो शब्द की नित्यता का कारण, भी सिद्ध होने से, शब्द नित्य है।

मतानुज्ञा निग्रहस्थान --

इसमें सिद्धि कुछ नहीं की जाती, केवल दोषारोपण किया जाता है, कि "जो दोष आपने हमारे पक्ष में बताया है, वही दोष आपके पक्ष में भी है।" यह दोनों में अंतर है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

19- पर्यनुयोज्योपेक्षण निग्रहस्थान की परिभाषा

ग्रन्थकार द्वारा --

यदि एक पक्ष वाला व्यक्ति निग्रहस्थान में आ चुका हो। तब दूसरे पक्ष वाले व्यक्ति को उस पर इस प्रकार का आरोप लगाना होता है कि "आप निग्रहस्थान में आ चुके हैं,"। यदि वह ऐसा आरोप नहीं लगाता, अर्थात आरोप लगाने की उपेक्षा करता है, तो यह पर्यनुयोज्योपेक्षण नामक निग्रहस्थान कहलाता है।

उदाहरण --

1- वादी द्वारा साधर्म्य से स्थापना --

शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होता है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है।

2- प्रतिवादी द्वारा इसका खंडन --

शब्द नित्य है। प्रयत्न के कार्य अनेक (उत्पत्ति और अभिव्यक्ति) होने से। आपके पक्ष में अनैकांतिकत्व दोष है, क्योंकि आपका हेतु दोनों पक्षों में जा रहा है,

3- वादी द्वारा इसका उत्तर --

आपके पक्ष में भी वही अनैकांतिकत्व दोष है, जो आपने हमारे पक्ष में दिखाया है। क्योंकि आपका हेतु भी दोनों पक्षों में जा रहा है, किसी एक पक्ष की सिद्धि नहीं कर रहा। (यह मतानुज्ञा निग्रहस्थान है।)

4- प्रतिवादी का कथन --

शब्द अस्पर्श वाला है। और आत्मा भी अस्पर्श वाला है। आत्मा नित्य पदार्थ है। इसलिए शब्द को भी अस्पर्श वाला होने से, आत्मा के समान नित्य मानना चाहिए।(यहाँ पर प्रतिवादी को, वादी पर ऐसा आरोप लगाना चाहिए था, कि "आप निग्रहस्थान में आ चुके हैं।" परंतु प्रतिवादी ने आरोप लगाने की उपेक्षा की। यह पर्यनुयोज्योपेक्षण निग्रहस्थान कहलाता है।)

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या ---

क्योंकि वादी ने कथन संख्या 3 में जो कुछ कहा, वह मतानुज्ञा नामक निग्रहस्थान है। इसलिये कथन संख्या 4

में प्रतिवादी को, वादी पर यह आरोप लगाना चाहिए था कि "आप मतानुज्ञा नामक निग्रहस्थान में आ चुके हैं।"

परंतु प्रतिवादी ने ऐसा कोई आरोप नहीं लगाया। बल्कि ऐसा आरोप लगाने की उपेक्षा की। इसलिए अब प्रतिवादी स्वयं निग्रहस्थान में आ चुका है। और उस निग्रहस्थान का नाम है - पर्यनुयोज्योपेक्षण। प्रतिवादी ने आरोप नहीं लगाया, यह उसका दोष है। इस कारण से इसे भी निग्रहस्थान माना जाता है।

यहां ऐसा समझना चाहिए, कि कथन संख्या 3 में वादी मतानुज्ञा निग्रहस्थान में था। यह दोष है। कथन संख्या 4 में प्रतिवादी ने, वादी पर आरोप नहीं लगाया, यह भी दोष है। इस प्रकार से दोनों दोषी होने के कारण, दोनों ही निग्रहस्थान में हैं।

अब कोई यह पूछे, कि - जब दोनों ही निग्रहस्थान में हैं। तो वहां दोनों में से कौन हारा और कौन जीता? तो इसका निर्णय न्यायाधीश लोग करेंगे और बताएंगे, कि पर्यनुयोज्योपेक्षण निग्रहस्थान के अनुसार प्रतिवादी हार गया। क्योंकि कथन संख्या 4 में उसने, वादी पर आरोप लगाने की उपेक्षा की।

फिर कोई पूछे, कि जब वादी भी निग्रहस्थान में था, तो वह क्यों नहीं हारा। तब न्यायाधीशों का उत्तर यह होगा

कि - भले ही वादी, कथन संख्या 3 में मतानुज्ञा निग्रहस्थान में था। परंतु क्या कोई व्यक्ति अपना दोष स्वयं भी बताता है? यदि नहीं बताता, तो वादी क्यों कहेगा कि "मैं निग्रहस्थान में आ चुका हूँ। इसलिये मैं हार गया।"

वादी पर निग्रहस्थान का आरोप लगाना, और उसके हार जाने की अपील करना, यह तो प्रतिवादी की जिम्मेदारी थी। जैसे खेल के मैदान में खिलाड़ी लोग, विपक्षी खिलाड़ी के द्वारा गलती करने पर एम्पायर को सूचित करते हैं, कि अमुक खिलाड़ी ने गलती की है, इसलिये इसे आउट घोषित किया जाए। ऐसी ही अपील, प्रतिवादी को, न्यायाधीशों के सामने करनी चाहिए थी, जो कि उसने नहीं की। इसलिए प्रतिवादी इस निग्रहस्थान में आ गया और हार गया।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/2/23 में)

20- निरनुयोज्यानुयोग निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

एक पक्ष वाला व्यक्ति निग्रहस्थान में न आया हो। उसका कथन ठीक चल रहा हो। फिर भी दूसरे पक्ष वाला व्यक्ति उस पर यदि ऐसा झूठा आरोप लगा दे, कि "आप निग्रहस्थान में आ चुके हैं," इस प्रकार से झूठा आरोप लगाना, निरनुयोज्यानुयोग निग्रहस्थान कहलाता है।

उदाहरण --

1- वादी द्वारा स्थापना -- शब्द अनित्य है। उत्पत्ति वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा। घड़े के समान, शब्द भी उत्पत्ति वाला है। इसलिए उत्पत्ति वाला होने से, शब्द अनित्य है।

2- प्रतिवादी द्वारा इसका खंडन --

आपने घड़े का उदाहरण दिया है। घड़ा तो आंखों से दिखाई देता है, जबकि शब्द तो आंखों से दिखाई नहीं देता। आंखों से दिखने वाला घड़ा भले ही अनित्य हो, परंतु शब्द तो आंखों से न दिखने के कारण नित्य ही है। आप तो गलत बोल रहे हैं, इसलिए आप निग्रहस्थान में आ चुके हैं।

3- वादी द्वारा इसका उत्तर --

मेरा पक्ष बिल्कुल सही है। मेरा हेतु व्याप्तिपूर्वक है। उदाहरण भी बिल्कुल सही है। इसलिए मैं निग्रहस्थान में नहीं हूं। मुझ पर, निग्रहस्थान में आ जाने का झूठा आरोप लगाने के कारण प्रतिवादी स्वयं निरनुयोज्यानुयोग निग्रहस्थान में है। मैं न्यायाधीश महोदय से निवेदन करता हूं, कि आप प्रतिवादी को झूठा आरोप लगाने के कारण दोषी एवं हारा हुआ घोषित करें।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

ऊपर प्रस्तुत किए गए उदाहरण के अनुसार वादी ने अपने पक्ष की स्थापना बिल्कुल सही की। फिर प्रतिवादी ने अपने पक्ष में बोलते हुए, वैधर्म्यसमा जाति का प्रयोग किया। और झूठा आरोप लगाकर वादी को निग्रहस्थान में आ जाने का दोषी बताया। इस तरह से निर्दोष व्यक्ति को दोषी बताकर, झूठा आरोप लगाना एक अपराध है। इस अपराध के कारण इसे निग्रहस्थान कहा जाता है।

लौकिक क्षेत्र में भी ऐसा देखा जाता है, कि खेल प्रतियोगिताओं में एक टीम झूठा आरोप लगाकर, दूसरी टीम को बदनाम करती है, तो बार-बार ऐसा करने पर निर्णायक, झूठा आरोप लगाने वाली टीम को दंड देता है। क्योंकि ऐसा करना अपराध है। इसी अपराध को दार्शनिक भाषा में निग्रहस्थान कहते हैं।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/2/24 में)

21- अपसिद्धान्त निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

किसी एक सिद्धांत को स्वीकार करके, फिर स्वयं उसके विरुद्ध दूसरा सिद्धांत कहना, यह अपसिद्धांत नामक निग्रहस्थान कहलाता है।

उदाहरण --

1- वादी का कथन --

"सत्तात्मक वस्तु का नाश कभी नहीं होता। और अभावात्मक वस्तु की उत्पत्ति कभी नहीं होती।" इस प्रकार से एक सिद्धांत को स्वीकार करके अब वादी दूसरी बात के रूप में, अपने पक्ष को प्रस्तुत करता है।

2- वादी का कथन ---

यह जगत एक उपादान कारण द्रव्य प्रकृति से बना है। जगत के कार्यद्रव्यों में उपादान कारण प्रकृति का संबंध देखा जाने से। जैसे घड़ा सकोरा प्लेट तवा आदि मिट्टी के बर्तनों में, एक उपादान तत्त्व मिट्टी का संबंध देखा जाता है। उसी प्रकार से यह सारा संसार है। इस संसार में सुख दुख और मोह का

संबंध देखा जाता है। यही गुण = सुख दुख और मोह, मूल उपादान कारण प्रकृति में भी हैं। इसलिए सुख दुख मोह के माध्यम से, प्रकृति मूल कारण द्रव्य का संबंध, जगत के कार्य पदार्थों में देखा जाता है। और यही सुख दुख तथा मोह, शरीर में भी देखे जाने से, यह शरीर भी उसी एक उपादान कारण वाला अर्थात प्रकृति से ही बना है।

3- प्रतिवादी का प्रश्न --

"कारण द्रव्य कौन सा है, और कार्य द्रव्य कौन सा है?" इसकी पहचान कैसे करनी चाहिए?

4- वादी का उत्तर --

जिस विद्यमान वस्तु में एक धर्म के हट जाने पर दूसरा नया धर्म उत्पन्न हो जाता है, उसे कारण द्रव्य कहते हैं, अर्थात मिट्टी। और जो नया धर्म उत्पन्न होता है, तथा पिछला धर्म हट जाता है (नष्ट हो जाता है) उसका नाम कार्य द्रव्य है। अर्थात विद्यमान मिट्टी में से, पिण्डाकार हट गया और घटाकार उत्पन्न हो गया। इस प्रकार से घड़े को कार्य द्रव्य कहते हैं।

5- प्रतिवादी का कथन --

आपने पहले अपना सिद्धांत स्थापित किया था कि "अभाव की उत्पत्ति नहीं होती, और विद्यमान वस्तु का नाश नहीं होता।" यदि विद्यमान वस्तु का नाश न हो और अभावात्मक वस्तु की उत्पत्ति न हो, तो किसी पूर्व धर्म की निवृत्ति और नए धर्म की उत्पत्ति होना असंभव है।

जो सत्तात्मक द्रव्य मिट्टी है, उसमें पूर्व धर्म का नाश हुए बिना पिंड आकार की निवृत्ति, और नए धर्म की प्राप्ति हुए बिना, सकोरा घड़े आदि की उत्पत्ति कैसे मानी जा सकती है? इसलिए यदि उत्पत्ति और विनाश न होता हो, तो मिट्टी में यह परिवर्तन भी नहीं होगा। और न ही घड़ा सकोरा आदि पदार्थ बन पाएंगे। इसलिए आपकी बात में परस्पर विरोध है। विरोध होने से यह अपसिद्धान्त नामक निग्रहस्थान है।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

इस प्रकार से प्रतिवादी द्वारा खंडन हो जाने पर, यदि स्थापनावादी यह स्वीकार कर लेता है, कि "हां, सत्तात्मक वस्तु का नाश होता है, और अभावात्मक वस्तु की उत्पत्ति होती है।" तो यह उसका अपसिद्धांत नामक निग्रहस्थान कहलाता है। उसने अपने ही प्रथम सिद्धांत का विरोध, द्वितीय सिद्धांत के द्वारा किया।

और यदि वह इस बात को स्वीकार नहीं करता, कि पदार्थों की उत्पत्ति और विनाश होता है, तो उसके पक्ष की सिद्धि नहीं हो पाएगी, जो उसने ऊपर कथन संख्या 2 में की थी।

इस उदाहरण में स्थापनावादी ने स्वयं अपनी बात का विरोध किया, यह दोष होने के कारण इसे निग्रहस्थान कहते हैं।

विरुद्ध हेत्वाभास, प्रतिज्ञाविरोध, हेत्वन्तर और अपसिद्धांत निग्रहस्थान में अन्तर --

1- विरुद्ध हेत्वाभास --

विरुद्ध हेत्वाभास में, "सिद्धांत का विरोध हेतु" करता है, परंतु "प्रतिज्ञा का सीधा विरोध नहीं" करता।

जैसे - पहला सिद्धांत - कार्य जगत नष्ट हो जाता है, क्योंकि कोई भी कार्यवस्तु नित्य नहीं होती।

दूसरा सिद्धांत - कार्य द्रव्य नष्ट होने पर भी रहता है। क्योंकि किसी भी वस्तु का नाश हो नहीं सकता।

विरुद्ध हेत्वाभास - "क्योंकि कोई भी कार्यवस्तु नित्य नहीं होती।" यह पहला हेतु, "कार्य द्रव्य नष्ट होने पर भी रहता है।" इस दूसरे सिद्धांत के विरुद्ध है। यहाँ पर हेतु ने सिद्धांत का विरोध किया। परंतु प्रतिज्ञा का सीधा विरोध नहीं किया।

2- प्रतिज्ञाविरोध निग्रहस्थान --

इस में भी "सिद्धांत का विरोध हेतु" करता है और हेतु, प्रतिज्ञा का "सीधा विरोध" करता है। जैसे -प्रतिज्ञा - द्रव्य, रूपादि गुणों से भिन्न होता है।हेतु - रूपादि से भिन्न कोई वस्तु उपलब्ध न होने से।यहाँ पर हेतु ने, प्रतिज्ञा का सीधा विरोध किया।

3- हेत्वन्तर निग्रहस्थान --

वादी द्वारा सामान्य हेतु प्रस्तुत किया गया। उसका प्रतिवादी द्वारा खंडन हो जाने पर, वादी अपना हेतु बदलकर दूसरा नया हेतु रखता है। इसको हेत्वन्तर निग्रहस्थान कहते हैं। इसमें उदाहरण अपसिद्धान्त निग्रहस्थान के उदाहरण से काफी कुछ मिलता जुलता है। परंतु फिर भी अंतर है। इसमें हेतु बदल दिया गया। तथा अपसिद्धांत निग्रहस्थान में दो सिद्धांतों का विरोध है।

4- अपसिद्धांत निग्रहस्थान --

इसमें, एक सिद्धांत का विरोध, दूसरा सिद्धांत करता है। जैसे --

पहला सिद्धांत - सत्तात्मक वस्तु का नाश नहीं होता, अभावात्मक वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती।

दूसरा सिद्धांत - सत्तात्मक वस्तु का नाश होता है, और अभावात्मक वस्तु की उत्पत्ति भी होती है।

यहां दूसरे सिद्धांत ने पहले सिद्धांत का विरोध किया। इस उदाहरण में हेतु का कोई उल्लेख नहीं है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/2/25 में)

22- हेत्वाभास निग्रहस्थान की परिभाषा ग्रन्थकार द्वारा --

जो पहले सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरणसम आदि 5 हेत्वाभास बताए गए थे, वे हेत्वाभास तो हैं ही। परन्तु अपने उसी हेत्वाभास वाले स्वरूप से ही निग्रहस्थान भी कहलाते हैं।

ग्रन्थकार द्वारा व्याख्या --

सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरणसम आदि 5 हेत्वाभास बताए गए थे, वे सब गलत उत्तर थे। निग्रहस्थान का अर्थ भी यही है, गलत उत्तर देना, या मौन रहकर कुछ भी न कहना। इसलिये वे हेत्वाभास, गलत उत्तर होने के कारण, निग्रहस्थान भी कहलाते हैं।

प्रश्न -- जैसे कोई वस्तु ज्ञान प्राप्ति का साधन होने से प्रमाण कहलाती है। और जब वही वस्तु ज्ञान प्राप्ति का विषय बन जाए, तो वही वस्तु प्रमेय कहलाती है। उदाहरण के लिए, यदि आँख से दीवार को देखा जाये, तो आँख प्रमाण कहलाएगी। यदि उसी आँख के खराब हो जाने पर, डॉक्टर उस आँख की परीक्षा करे, तो वही आँख प्रमेय कहलाएगी।

क्या इसी के समान, ये हेत्वाभास भी किसी कारण विशेष से निग्रहस्थान बनेंगे, अथवा जिस रूप में वे हेत्वाभास नाम से कहे गए हैं, उसी रूप में वे निग्रहस्थान भी कहलाएंगे?

उत्तर --

जिस रूप में वे हेत्वाभास बताए गए थे, उसी रूप में वे निग्रहस्थान भी कहलाते हैं। उनको निग्रहस्थान बनने के लिए, प्रमाण प्रमेय के समान, कोई कारण विशेष की , या कोई परिभाषा विशेष की आवश्यकता नहीं है। निग्रहस्थान की परिभाषा जो बताई गई थी, वह यह थी, कि "गलत उत्तर देना अथवा कुछ भी न बोलना, मौन रहना निग्रहस्थान है।"

"गलत उत्तर देना", यह वाली बात, उन पांच हेत्वाभासों पर भी लागू होती है। वे भी गलत उत्तर हैं, इसलिए अपने उसी हेत्वाभास वाले स्वरूप से ही वे निग्रहस्थान भी कहलाते हैं।अर्थात वे हेत्वाभास भी हैं, और निग्रहस्थान भी। यहाँ तक न्याय दर्शन में बताई गई 54 गलतियों का विवरण पूरा हुआ।

सूचना -- न्याय दर्शन में ये जो 54 गलतियाँ बताई गई हैं, इनमें अनेक गलतियों में बहुत सूक्ष्म अंतर है। उस अंतर को भी गहराई से समझना चाहिए। इन गलतियों में जो सूक्ष्म अंतर हैं, वे अगले कुछ लेखों में बताए जाएंगे।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,

रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 1/2/7 तथा 5/1/16 में)

न्याय दर्शन में बताई गई इन 54 गलतियों में से जिन गलतियों में सूक्ष्म अंतर हैं, वे इस प्रकार से हैं।

प्रकरणसम हेत्वाभास और प्रकरणसमा जाति में अंतर (न्याय सूत्र 1/2/7 तथा 5/1/16 में)

1- प्रकरणसम हेत्वाभास --

प्रकरणसम हेत्वाभास में, वादी और प्रतिवादी दोनों ने, जो प्रतिज्ञा की थी, उसी को घुमा फिरा कर हेतु बना दिया। प्रतिज्ञा से अलग नया हेतु कुछ नहीं दिया। इससे प्रकरण की समाप्ति नहीं हो पाई। जैसे - वादी - शब्द अनित्य है। इसमें नित्यता धर्म उपलब्ध न होने से। जिस जिस वस्तु में नित्यता धर्म उपलब्ध नहीं होता, वह वह वस्तु अनित्य देखी जाती है। जैसे घड़ा इत्यादि।प्रतिवादी - शब्द नित्य है। इसमें अनित्यता धर्म उपलब्ध न होने से। जिस जिस वस्तु में अनित्यता धर्म उपलब्ध नहीं होता, वह वह वस्तु नित्य देखी जाती है। जैसे आकाश आदि।

2- प्रकरणसमा जाति --

इसमें वादी और प्रतिवादी दोनों, प्रतिज्ञा को ही घुमा फिरा कर नहीं बोलते। बल्कि प्रतिज्ञा से अलग हेतु प्रस्तुत करते हैं। फिर भी उनका हेतु, हेत्वाभास होने से, प्रकरण की समाप्ति नहीं कर पाता। जैसे -

वादी - शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने से। घड़े के समान।

प्रतिवादी - शब्द नित्य है। अस्पर्श वाला होने से। आत्मा के समान।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

साध्यसम हेत्वाभास और साध्यसमा जाति में अंतर --

(न्याय सूत्र 1/2/8 तथा 5/1/4 में)

1- साध्यसम हेत्वाभास --

इसमें एक प्रतिज्ञा को प्रस्तुत करके उसकी सिद्धि के लिए जो हेतु दिया जाता है, वह हेतु स्वयं सिद्ध नहीं है। प्रतिज्ञा के समान, वह हेतु स्वयं सिद्ध करने योग्य है। जैसे -

प्रतिज्ञा - छाया एक द्रव्य है।

हेतु - गति वाली होने से।

यह जो हेतु दिया है - गति वाली होने से।

अभी यह भी सिद्ध नहीं है कि छाया में गति होती भी है या नहीं। इसलिए यह हेतु, स्वयं साध्य होने से, हेत्वाभास है।

2- साध्यसमा जाति --

पंचावयव प्रक्रिया में, उपनय में साध्य को, दृष्टान्त के तुल्य

बताया जाता है। यथा, "जैसे घड़ा उत्पत्ति वाला है, वैसे ही शब्द भी उत्पत्ति वाला है।”

अब साध्यसमा जाति में इस व्यवस्था का दुरुपयोग करते हुए जातिवादी ऐसा कहता है, कि - यदि दृष्टान्त और साध्य दोनों एक समान हैं, तो जो दृष्टान्त घड़ा है, वह भी साध्य है, अर्थात प्रतिज्ञा (शब्द अनित्य है) के तुल्य सिद्ध करने योग्य है। यहां दृष्टांत को साध्य बता कर आरोप लगाया गया है।

इस प्रकार से, साध्यसम हेत्वाभास में हेतु सिद्ध नहीं है। और साध्यसमा जाति में दृष्टांत को साध्य बताया जा रहा है। यह अंतर है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/4 में)

वर्ण्यसमा जाति और साध्यसमा जाति में अंतर

(न्याय सूत्र 5/1/4 में)वर्ण्यसमा जाति और साध्यसमा जाति, ये दोनों मिलती जुलती हैं। दोनों में केवल इतना ही अंतर है कि, वर्ण्यसमा जाति में सामान्य शब्दों का प्रयोग किया गया था कि उदाहरण, साध्य के समान असिद्ध है। और यहां साध्यसमा जाति में विशेष वस्तुओं के नाम लेकर, शब्दों का प्रयोग किया गया है। कि घड़ा, शब्द के समान असिद्ध है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

प्राप्तिसमा और अहेतुसमा जाति में अंतर : --

(न्याय सूत्र 5/1/7 तथा 5/1/18 में)

प्राप्तिसमा जाति में ---

जो बात उठाई गई थी , कि साध्य और हेतु दोनों इकट्ठे उपस्थित हैं, तो ऐसी स्थिति में कौन किसको सिद्ध कर रहा है, यह पता नहीं चल रहा। वहाँ यह बात दोनों की भौतिक दूरी के संदर्भ में कही गई थी ।अर्थात जब साध्य और हेतु दोनों संबद्ध हैं, दोनों में कोई दूरी नहीं, तो दोनों एक समान हो गए। एक समान होने से यह निर्णय नहीं हो पा रहा कि हेतु कौन, तथा साध्य कौन?

अहेतुसमा जाति में ---

भी ऐसी ही बात कही गई है, कि जब हेतु एवं साध्य दोनों इकट्ठे उपस्थित हैं, तो कौन किसको सिद्ध कर रहा है? यहां पर यह बात काल के दृष्टिकोण से कही गई है। अर्थात जब साध्य और हेतु दोनों एक ही काल में उपस्थित हैं, तो यह पता नहीं चल रहा है कि, साध्य, हेतु को सिद्ध कर रहा है? या हेतु, साध्य को सिद्ध कर रहा है?

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

1- उपपत्तिसमा जाति --

इसमें वादी का कारण भी सिद्ध होता है, और प्रतिवादी का कारण भी सिद्ध होता है। दोनों के अपने-अपने कारण उनकी-उनकी प्रतिज्ञा की सिद्धि में सिद्ध होते हैं। ऐसा कहा जाता है।

जैसे - प्रतिवादी --

यदि शब्द की अनित्यता का कारण, सिद्ध होने से, शब्द अनित्य है। तो शब्द की नित्यता का कारण, भी सिद्ध होने से, शब्द नित्य है।

2- मतानुज्ञा निग्रहस्थान --

इसमें सिद्धि कुछ नहीं की जाती, केवल दोषारोपण किया जाता है, कि "जो दोष आपने हमारे पक्ष में बताया है, वही दोष आपके पक्ष में भी है।" यह अंतर है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

प्रतिदृष्टांतसमा और संशयसमा जाति में अंतर --

(न्याय सूत्र 5/1/9 तथा 5/1/14 में)

प्रतिदृष्टांतसमा जाति में -- हेतु वही रहता है, उदाहरण नया होता है। जैसे --

वादी --

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी --

शब्द नित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से।

प्रध्वंसाभाव के समान।

संशयसमा जाति में --

वादी के उदाहरण के साथ, नया हेतु और नया उदाहरण देकर, वादी के उदाहरण के भिन्न धर्मों को आधार बनाकर संशय उत्पन्न किया जाता है। जैसे --

वादी --

शब्द अनित्य है। प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से। जो जो वस्तु प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान शब्द भी, प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होता है। इसलिए प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी --

घट ऐंद्रियक है, और अनित्य है। जाति भी ऐंद्रियक है, परंतु जाति नित्य है। ऐसे ही शब्द भी ऐंद्रियक है। अब शब्द के प्रयत्न के पश्चात उत्पन्न होने वाला होने पर भी, शब्द का, अनित्य घट, और नित्य जाति, इन दोनों के साथ ऐंद्रियकत्व साधर्म्य होने से यह संशय बना ही रहता है कि शब्द को, घट के समान अनित्य मानें, या जाति के समान नित्य?

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

भाग 82

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/23 तथा 5/1/32 में)

अविशेषसमा जाति और अनित्यसमा जाति में अंतर --

(न्याय सूत्र 5/1/23 तथा 5/1/32 में)

इन दोनो जातियों में उदाहरण एक समान है। केवल अंतर इतना है कि अविशेषसमा जाति में यह आरोप लगाकर वादी का खंडन किया गया कि साध्य और उदाहरण की समानता से सभी वस्तुएं एक समान हो जाएंगी, जो कि उचित नहीं है।

और अनित्यसमा जाति में भी वही उदाहरण देकर इस प्रकार से वादी का खंडन किया गया कि साध्य और उदाहरण की समानता से सभी वस्तुएं अनित्य हो जाएंगी, जो कि उचित नहीं है। सिर्फ आरोप लगाने की भाषा का ही अंतर है, और कोई विशेष अंतर नहीं है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/4 तथा 5/2/3 में)

विकल्पसमा जाति और प्रतिज्ञान्तर निग्रहस्थान में अंतर

(न्याय सूत्र 5/1/4 तथा 5/2/3 में)विकल्पसमा जाति में --

वादी का हेतु ठीक है। परंतु प्रतिवादी ने वादी द्वारा प्रस्तुत उदाहरण के अतिरिक्त एक और उदाहरण प्रस्तुत कर के, दोनों उदाहरणों में धर्मविकल्प दिखाया है। इसके आधार से वादी का खंडन किया है।

उदाहरण --

वादी --

शब्द अनित्य है। उत्पत्ति धर्म वाला होने से। जो जो वस्तु उत्पत्ति धर्म वाली होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

घड़े के समान, शब्द भी उत्पत्ति धर्म वाला है। इसलिए उत्पत्ति धर्म वाला होने से, शब्द अनित्य है।

प्रतिवादी --उत्पत्ति धर्म वाली वस्तुओं में धर्मों का विकल्प देखा जाता है। अर्थात ऐसी वस्तुएँ दोनों प्रकार की होती हैं। जैसे,

उत्पत्ति धर्म वाली कुछ वस्तुएँ स्पर्श गुण वाली होती हैं, जैसे घड़ा आदि। और कुछ अस्पर्श वाली भी होती हैं, जैसे सुख दुःख आदि। इसी प्रकार से, उत्पत्ति धर्म वाली कुछ वस्तुएँ अनित्य होती हैं, जैसे घड़ा आदि। और कुछ वस्तुएँ नित्य होती हैं, जैसे प्रध्वंसाभाव आदि। अतः शब्द भी, उत्पत्ति धर्म वाला होते हुए, प्रध्वंसाभाव के समान, नित्य ही है।

प्रतिज्ञान्तर निग्रहस्थान में -- वादी का हेतु गलत है।

यहाँ प्रतिवादी ने हेतु का अनैकांतिकत्व दिखाकर अपना उदाहरण प्रस्तुत कर के वादी का खंडन किया है। उसके बाद फिर वादी ने, प्रतिवादी के उदाहरण की टक्कर में एक और नया उदाहरण देकर धर्म विकल्प दिखाया है।

उदाहरण --

वादी --

शब्द अनित्य है। ऐन्द्रियक (इन्द्रियों से जानने योग्य) होने से। जो जो वस्तु ऐन्द्रियक होती है, वह वह अनित्य होती है। जैसे घड़ा।

प्रतिवादी --

जाति ऐन्द्रियक है, और वह नित्य है। शब्द भी ऐन्द्रियक है। तो शब्द भी जाति के समान नित्य है। वह अनित्य कैसे हो सकता है?

वादी का उत्तर --

(नए पक्ष के साथ) ऐन्द्रियक होते हुए जाति तो सर्वव्यापक है। जबकि ऐन्द्रियक होते हुए घड़ा सर्वव्यापक नहीं है, बल्कि एकदेशी है। और घड़े के समान शब्द भी एकदेशी है। इसलिए शब्द अनित्य है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

www.darshanyog.org
darshanyog@gmail.com

विरुद्ध हेत्वाभास, प्रतिज्ञाविरोध, हेत्वन्तर और अपसिद्धांत निग्रहस्थान में अन्तर --

1- विरुद्ध हेत्वाभास --

विरुद्ध हेत्वाभास में, एक "सिद्धांत का विरोध हेतु" करता है, परंतु "प्रतिज्ञा का सीधा विरोध नहीं" करता। जैसे -

एक सिद्धांत - कार्य जगत नष्ट हो जाता है, क्योंकि कोई भी कार्यवस्तु नित्य नहीं होती।

दूसरा सिद्धांत - कार्य द्रव्य नष्ट होने पर भी रहता है। क्योंकि किसी भी वस्तु का नाश हो नहीं सकता।

विरुद्ध हेत्वाभास - "क्योंकि कोई भी कार्यवस्तु नित्य नहीं होती।" यह पहला हेतु, "कार्य द्रव्य नष्ट होने पर भी रहता है।" इस दूसरे सिद्धांत के विरुद्ध है। यहाँ पर हेतु ने सिद्धांत का विरोध किया।

परंतु प्रतिज्ञा का सीधा विरोध नहीं किया।

2- प्रतिज्ञाविरोध निग्रहस्थान --

इस में भी "सिद्धांत का विरोध हेतु" करता है और हेतु, प्रतिज्ञा का "सीधा विरोध" करता है। जैसे -

प्रतिज्ञा - द्रव्य, रूपादि गुणों से भिन्न होता है।

हेतु - रूपादि से भिन्न कोई वस्तु उपलब्ध न होने से।

यहाँ पर हेतु ने, प्रतिज्ञा का सीधा विरोध किया।

3- हेत्वन्तर निग्रहस्थान --

वादी द्वारा सामान्य हेतु प्रस्तुत किया गया। उसका प्रतिवादी द्वारा खंडन हो जाने पर, वादी अपना हेतु बदलकर दूसरा नया हेतु रखता है। इसको हेत्वन्तर निग्रहस्थान कहते हैं। इसमें उदाहरण अपसिद्धान्त निग्रहस्थान के उदाहरण से काफी कुछ मिलता जुलता है। परंतु फिर भी अंतर है। इसमें हेतु बदल दिया गया। तथा अपसिद्धांत निग्रहस्थान में दो सिद्धांतों का विरोध है।

4- अपसिद्धांत निग्रहस्थान --

इसमें, एक "सिद्धांत का विरोध, दूसरा सिद्धांत" करता है। जैसे --

पहला सिद्धांत - सत्तात्मक वस्तु का नाश नहीं होता, अभावात्मक वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती।

दूसरा सिद्धांत - सत्तात्मक वस्तु का नाश होता है, और अभावात्मक वस्तु की उत्पत्ति भी होती है।

यहां एक सिद्धांत ने दूसरे सिद्धांत का विरोध किया। इस उदाहरण में हेतु का कोई उल्लेख नहीं है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)
(न्याय सूत्र 5/1/4 में)

प्रतिज्ञाहानि निग्रहस्थान और प्रतिज्ञासंन्यास निग्रहस्थान में अंतर --

प्रतिज्ञाहानि निग्रहस्थान --

इसमें वादी मूर्खता के कारण प्रतिवादी के दृष्टांत के धर्म को अपने दृष्टांत में स्वीकार करके अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ बैठता है। जैसे, यदि जाति ऐन्द्रियक होते हुए नित्य है, तो घड़ा भी ऐन्द्रियक होते हुए नित्य मान लेते हैं।

प्रतिज्ञा संन्यास नामक निग्रहस्थान --

में वादी, प्रतिवादी के आक्रमण से घबराकर अपनी प्रतिज्ञा को स्पष्ट शब्दों में पूरी तरह से छोड़ देता है। जैसे कि -- कौन कहता है शब्द अनित्य है। शब्द तो नित्य ही है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

अर्थान्तर, निरर्थक और अपार्थक निग्रहस्थान में अंतर --

अर्थान्तर निग्रहस्थान में वक्ता की बात, प्रस्तुत विषय से अलग हटकर होती है। जैसे किसी मंत्र का उच्चारण करने लगना, या किसी शब्द की व्याख्या करने लगना, इत्यादि।

निरर्थक निग्रहस्थान में वक्ता केवल वर्णों का उच्चारण बिना किसी संबंध के करता जाता है।

अपार्थक निग्रहस्थान में वक्ता कुछ ऐसे शब्द या वाक्य बोलता जाता है, जिनका परस्पर कोई संबंध नहीं होता।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

अविज्ञातार्थ, अननुभाषण, अज्ञान और अप्रतिभा नामक निग्रहस्थानों में अंतर --

अविज्ञातार्थ नामक निग्रहस्थान में, प्रतिवादी ने 3 बार अपनी बात कही। परंतु गलत तरीके से कही, ताकि प्रतिवादी और न्यायाधीशों को समझ में ही न आए, कि वह क्या कह रहा है। इसमें वादी का दोष था।

अननुभाषण नामक निग्रहस्थान में, प्रतिवादी ने 3 बार अपनी बात कही। न्यायाधीशों को ठीक प्रकार से समझ में आई। वादी को भी बात समझ में आई। परंतु वादी को उत्तर ज्ञात न होने से, वादी ने, प्रतिवादी के वाक्य को न तो दोहराया, और न ही कोई उत्तर दिया, वह मौन ही रहा। इसमें भी वादी का दोष था।

अज्ञान नामक निग्रहस्थान में, प्रतिवादी ने 3 बार अपनी बात कही। परंतु प्रतिवादी के वाक्यार्थ को, वादी समझ ही नहीं पाया। इसलिए उत्तर नहीं दे पाया। इसमें भी वादी का दोष था।

अप्रतिभा नामक निग्रहस्थान में, वादी या प्रतिवादी, दो में से कोई भी जब उत्तर देने लगा, तो योग्यता की कमी होने से, वह ठीक प्रकार से उत्तर को प्रस्तुत नहीं कर पाया।

इस प्रकार से चारों निग्रहस्थानों में यह थोड़ा थोड़ा अंतर है। इस अंतर को ध्यान में रखना चाहिए।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

भाग 88

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

न्याय दर्शन में बताई गई 54 गलतियों को आपने पिछले लेखों में समझने का प्रयत्न किया। अब यह जानने समझने का प्रयत्न करेंगे, कि व्यवहार में लोग आपस में जो सैद्धान्तिक बातें करते हैं, प्रवचनों में बोलते हैं, या पुस्तकों आदि में लिखते हैं, उनके सिद्धांतों में, न्याय दर्शन में बताई गई 54 में से कौन कौन सी गलतियां हैं।

इन गलतियों को सही तरीके से समझने के लिए, या किसी भी विषय में सत्य को ठीक प्रकार से समझने के लिए कुछ मूलभूत बातें आवश्यक मानी जाती हैं।

पहली बात -- जब दो व्यक्ति किसी विषय पर चर्चा कर रहे हों, तो उस विषय पर दोनों व्यक्तियों का, पक्ष और प्रतिपक्ष होना चाहिये। अर्थात दोनों के विचार में टकराव होना चाहिये। तभी बात आगे बढ़ सकती है, अन्यथा नहीं। यह बातचीत यानि वाद का सबसे पहला नियम है।

दूसरी बात -- उन दोनों = वादी प्रतिवादी का शास्त्रों का अध्ययन खूब अच्छा होना चाहिए। अन्यथा प्रमाण तर्क आदि ठीक से प्रस्तुत नहीं कर पाएंगे।

तीसरी बात -- बातचीत करने वालों = वादी प्रतिवादी का बौद्धिक स्तर भी बहुत ऊंचा होना चाहिए, जिससे कि वे उस सूक्ष्म विषय को समझने में समर्थ हो सकें।

चौथी बात -- वादी और प्रतिवादी दोनों का मन पवित्र होना चाहिये, जिससे कि वे प्रमाण तर्क आदि से सत्य के सिद्ध हो जाने पर, उसे स्वीकार कर लें। क्योंकि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोक्तधर्मविषय में पृष्ठ 139 पर महर्षि दयानंद जी ने लिखा है, कि "पवित्र मन से सत्य ज्ञान होता है।"

इसलिए इन चार बातों का भी सबको ध्यान रखना होगा, तभी सत्य असत्य का ठीक प्रकार से निर्णय हो पाएगा। यदि ये चार बातें आप में नहीं हैं, तो आप कितनी भी चर्चाएं कर लें, कितने भी प्रवचन कर लें, कितने भी लेख या पुस्तकें लिख लें, आपको सत्य समझ में नहीं आएगा।

विशेष सूचना 1 -- वेदों और आर्ष ग्रंथों के अनुसार, संसार में कुल मिलाकर 6 पदार्थ अनादि हैं। प्रकृति,आत्मा, ईश्वर, दिशा, काल और आकाश {अवकाश}। इनमें से केवल एक पदार्थ = प्रकृति ही ऐसी है, जो परमाणुरूप या भौतिक है। अर्थात

'प्रकृति', सत्त्व, रज और तम, इन तीन प्रकार के सूक्ष्मतम असंख्य परमाणुओं का संघात या समुदाय है।
और शेष 5 पदार्थ = आत्मा, ईश्वर, दिशा, काल और आकाश {अवकाश} ये सब परमाणुरहित या अभौतिक पदार्थ हैं। इन पाँचों में से एक पदार्थ में भी किसी प्रकार का कोई परमाणु नहीं हैं। वेदों के आधार पर ऐसा ऋषियों का सिद्धांत है।

हमारे इस लेख में 'परमाणुरूप, या भौतिक पदार्थ' शब्द का अर्थ होगा -- सत्त्व रज तम प्रकृति; और प्रकृति से बने पृथ्वी सूर्य लोहा लकड़ी आदि जगत के सभी पदार्थ।

अब हम क्रमशः कुछ विषय प्रस्तुत करेंगे, जिनमें लोगों का मतभेद प्रायः चलता रहता है। पहला विषय -- *आत्मा साकार है, या निराकार? इसके दो पक्ष हैं।

प्रथम पक्ष = आत्मा साकार है।

द्वितीय पक्ष = आत्मा निराकार है।

(इस लेख का भाग - 1.)

हमारा पक्ष = आत्मा निराकार है।

आकार शब्द की परिभाषा -- पाणिनीय अष्टाध्यायी तथा वाचस्पत्यम् शब्दकोष आदि ग्रंथों के आधार पर 'आकार' शब्द का

अर्थ आचार्य आनंद प्रकाश जी मेधार्थी व्याकरणाचार्य, अलियाबाद तेलंगाना, ने इस प्रकार से प्रस्तुत किया है ।

"आ+ कृ + घञ् = आकारः । 'आकार' शब्द में आ उपसर्ग , कृ धातु, और घञ् प्रत्यय है । इस प्रकार से आकार शब्द बनता है । आकारः मूर्तौ अवयवसंस्थानविशेषे च । अर्थात मूर्ति या शक्ल को आकार कहते हैं। अथवा कोई अवयवों की रचना विशेष हो, उसको आकार कहते हैं । आकार ही आकृति है ।"

और आकार शब्द का अर्थ, वामन शिवराम आप्टे के, शिक्षा जगत् के प्रामाणिक, संस्कृत हिन्दी कोष में लिखा है= रूप, शक्ल, आकृति ।

इस प्रकार से आकार शब्द का अर्थ हुआ = रूप, रंग या कुछ अवयवों को मिलाकर जो विशेष रचना = गोलाकार त्रिकोण चतुर्भुज षट्कोण अष्टकोण आदि बनाई गई हो, उसको आकार या आकृति कहेंगे ।

अब आकार शब्द के इस प्रामाणिक अर्थ के आधार पर हम विचार करेंगे कि, आत्मा में इस प्रकार का कोई आकार या आकृति है, अथवा नहीं है? यदि इस प्रकार का कोई आकार या आकृति आत्मा में सिद्ध होती है, तो आत्मा को साकार माना जाएगा । यदि इस प्रकार का कोई आकार या आकृति आत्मा में सिद्ध नहीं होती, तो उसे निराकार माना जाएगा ।

(प्रथम पक्ष को हम पूर्वपक्ष के नाम से कहेंगे। और द्वितीय पक्ष अर्थात हमारे पक्ष को हम उत्तरपक्ष के नाम से कहेंगे।)

(पूर्वपक्ष) -- आत्मा साकार है।

साधर्म्य से हेतु व्याप्तिपूर्वक पंचावयव --

आत्मा साकार है। एकदेशी होने से। जो जो वस्तु एकदेशी होती है, वह वह साकार होती है। जैसे स्कूटर कार इत्यादि। आत्मा भी स्कूटर कार इत्यादि के समान एकदेशी है। इसलिए एकदेशी होने से, आत्मा साकार है।

न्याय दर्शन के नियमानुसार, जो सही पंचावयव होता है, वह साधर्म्य व्याप्ति और वैधर्म्य व्याप्ति दोनों प्रकार से भी सिद्ध हो सकता है, तथा एक प्रकार से भी। परंतु कुछ हेतु, जो गलत होते हैं, जब वे साधर्म्य व्याप्ति से प्रस्तुत किए जाते हैं, तब उनका खंडन साधर्म्य व्याप्ति के आधार पर नहीं हो पाता। क्योंकि उनके खंडन के लिए कोई विपरीत उदाहरण उपलब्ध नहीं होता। जबकि ऐसे पक्ष, प्रमाण एवं तर्क के विरुद्ध होने से, होते हैं गलत। (ऊपर के पंचावयव "आत्मा साकार है", में भी यही स्थिति है।)

गलत पक्षों की साधर्म्य से स्थापना करने पर, अनेक बार इनका खंडन संभव न होने से, वैधर्म्य व्याप्ति दिखाकर, इनके

गलत हेतुओं का खंडन किया जाता है। जब ऐसे हेतुओं की वैधर्म्य से व्याप्ति बनाई जाती है, तब ऐसे गलत हेतुओं का खंडन हो जाता है। चाहे कोई हेतु साधर्म्य व्याप्ति से प्रस्तुत किया जाए अथवा वैधर्म्य व्याप्ति से; यदि उसकी व्याप्ति कहीं भी कट जाती है, तो वह हेतु, हेत्वाभास माना जाता है, और अपने पक्ष की सिद्धि नहीं कर पाता। यदि व्याप्ति कहीं भी नहीं कटती, तो वह हेतु ठीक माना जाता है, और अपने पक्ष की सिद्धि कर देता है।

पूर्वपक्षी द्वारा साधर्म्य से प्रस्तुत किये गए इस हेतु की वैधर्म्य से व्याप्ति इस प्रकार से होगी --

(पूर्वपक्ष) -- आत्मा साकार है।

वैधर्म्य से हेतु व्याप्तिपूर्वक पंचावयव --

आत्मा साकार है। एकदेशी होने से। जो जो वस्तु व्यापक होती है, वह निराकार होती है। जैसे ईश्वर। आत्मा, ईश्वर के समान व्यापक नहीं है, अर्थात् एकदेशी है। इसलिए एकदेशी होने से, आत्मा साकार है।

हमारे द्वारा इसका खंडन -- ईश्वर ब्रह्मांड में व्यापक है, वह निराकार है। जबकि प्रकृति भी ब्रह्मांड में व्यापक है, परंतु वह साकार है। अतः हेतु अनैकांतिक होने से (दोनों पक्षों में जाने से) हेतु गलत है, और इससे साध्य (आत्मा साकार है) की सिद्धि नहीं हो पाई।

क्योंकि उक्त पंचावयव में जो हेतु दिया गया है, वह वैधर्म्य व्याप्ति से प्रस्तुत करने पर, खंडित हो गया, इसलिये पूर्वपक्ष में, न्याय दर्शन में बताई गई 54 गलतियों में से एक गलती **अनैकांतिक या सव्यभिचार हेत्वाभास है।** देखें - न्याय दर्शन 1/2/5 सूत्र एवं उस का वात्स्यायन भाष्य।

(सूचना -- यह लेख लंबा है। क्रमशः अनेक भागों में प्रस्तुत किया जाएगा। ....)

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

आत्मा साकार है, या निराकार?

(इस लेख का भाग - 2.)

प्रथम पक्ष = आत्मा साकार है।

द्वितीय पक्ष = आत्मा निराकार है।

हमारा पक्ष = आत्मा निराकार है।

ऊपर हमने कहा था कि प्रकृति ब्रह्मांड में व्यापक है। *अब यहां पूर्वपक्षी लोग यह कहते हैं, कि प्रकृति परमात्मा के एक भाग में रहती है। इसलिए प्रकृति एकदेशी है। जैसे स्कूटर कार आदि एकदेशी वस्तुएँ साकार होती हैं, वैसे ही प्रकृति भी एकदेशी है। इसलिए प्रकृति साकार है।*

हमारा उत्तर --

वास्तव में इनका कथन छल से युक्त है। पूरे ब्रह्मांड में व्यापक प्रकृति को एकदेशी बताना, यह छल है। प्रकृति साकार है, इस बात को तो ये पूर्वपक्षी लोग स्वयं ही मान रहे हैं। इसलिये यह तो सिद्ध ही है। परंतु प्रकृति को एकदेशी बताना,

यह छल है । इनके छल का खंडन महर्षि दयानंद जी के शब्दों में ही देखिये ।

प्रमाण (1)- प्रकृति सारे ब्रह्मांड में व्यापक है । इस बात को महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने सत्यार्थ प्रकाश में इन शब्दों में स्वीकार किया है ।

तीसरा - कारण (शरीर) जिस में सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है, वह प्रकृति रूप होने से सर्वत्र विभु और सब जीवों के लिए एक है । (सत्यार्थप्रकाश 9वाँ समुल्लास, पृष्ठ 201.)

इस वचन में महर्षि दयानंद जी ने प्रकृति को विभु अर्थात् पूरे ब्रह्मांड में व्यापक माना है। ब्रह्मांड का अर्थ है, जहां तक ये लोक लोकांतर बने हुए हैं। अर्थात जहां तक आकाश गंगाएँ फैली हुई हैं, वहां तक के क्षेत्र को ब्रह्मांड कहते हैं। वहां तक प्रकृति (सत्त्व रज तम) प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। इसलिए सिद्ध हुआ कि प्रकृति ब्रह्माण्ड में व्यापक है।

प्रमाण (2) - प्रकृति का विभुत्व (व्यापक होना) सांख्य दर्शन के इस सूत्र में भी बताया गया है । --

सर्वत्र कार्यदर्शनाद्विभुत्वम् ।। सांख्य. 6/36.

अर्थात ब्रह्मांड में सब जगह प्रकृति के कार्य = लोक लोकांतर देखे जाने से प्रकृति इन सब लोक लोकांतरों में व्यापक है ।।

प्रमाण (3) - एक व्यक्ति ने प्रकृति को एकदेशी सिद्ध करने के लिए यह प्रमाण दिया । पादोऽस्य विश्वा भूतानि-----.(यजु.31/3) अर्थात प्रकृति से बना यह सारा जगत ईश्वर के एक भाग में विद्यमान है । अतः प्रकृति एकदेशी है ।

हमारा उत्तर --

भले ही प्रकृति परमात्मा के एकदेश में रहती हो, तो भी क्या आत्मा और स्कूटर कार आदि पदार्थों का एकदेशित्व, और प्रकृति का एकदेशित्व एक समान है? यदि नहीं है, तो यह छल का प्रयोग है। और यह भ्रांति फैलाने का काम है, कि "प्रकृति एकदेशी है।"

महर्षि दयानंद जी और महर्षि कपिल जी तो प्रकृति को ब्रह्मांड में व्यापक बता रहे हैं। और यह पूर्वपक्षी उसको एकदेशी कह रहा है। तो इस प्रकार वेद मंत्र का अर्थ, ऋषियों के अर्थ के विरुद्ध करना गलत है।

एकदेशी और व्यापक, ये दोनों प्रतिपक्षी (विपरीतार्थक) शब्द हैं। पूर्वपक्षी ने अपने पंचावयव में उदाहरण के रूप में स्कूटर कार को स्वयं ही एकदेशी बताया था। स्कूटर कार की तुलना में प्रकृति व्यापक सिद्ध है। अब स्कूटर कार की तुलना में प्रकृति जब व्यापक सिद्ध है, तो उसको ईश्वर की तुलना में एकदेशी बताना छल नहीं तो और क्या है? इसलिए ऐसा करना न्याय शास्त्र के विरुद्ध और अन्याय है। अत: प्रकृति को एकदेशी नहीं कह सकते।

इसलिये एकदेशी होने से आत्मा साकार सिद्ध नहीं हुई, क्योंकि व्यापक होने पर भी प्रकृति साकार है। अतः इनका हेतु गलत है। हेतु गलत होने से इनका पक्ष सिद्ध नहीं होता, कि आत्मा साकार है।

दूसरी बात -- संसार में देखा जाता है कि एक वस्तु में अनेक गुण कर्म होते हैं। वे सभी गुण कर्म एक वस्तु में होते हुए भी, एक दूसरे को सिद्ध नहीं करते।

क्योंकि उन सभी गुण कर्मों में, परस्पर साध्यसाधनभाव (कार्यकारणसंबंध) नहीं होता। यहां लोग गलती यह करते हैं, कि वे किसी भी गुण को लेकर किसी भी बात को सिद्ध करना चाहते हैं। जो कि साध्यसाधनभाव नियम के विरुद्ध है। अर्थात न्याय दर्शन के नियम के विरुद्ध है।

जैसे एक उदाहरण ---

एक मनुष्य संगीत कला जानता है। वह पाक विद्या भी जानता है। वह अच्छा भोजन भी बनाता है। वह सैर भी करता है। कार भी चलाता है। वह खेलकूद व्यायाम आदि भी करता है। वह सोता जागता भी है। इस प्रकार से उसमें अनेक गुण कर्म होते हैं।।

अब कोई व्यक्ति ऐसा कहे कि क्योंकि यह मनुष्य संगीत कला अच्छी जानता है , इस कारण से यह बहुत अच्छा भोजन बनाता है।

तो अब आप सोचिए, यह अच्छा भोजन बनाने का जो कारण, संगीत कला को बताया गया है, क्या यह ठीक है? क्या संगीत कला का ज्ञान, अच्छा भोजन बनाने का कारण है? बिल्कुल नहीं।

इस सरल सी बात को छोटा बच्चा भी समझ लेगा, कि बताया गया यह कारण गलत है। भले ही उस मनुष्य में संगीत कला भी है, और वह अच्छा भोजन भी बनाता है। फिर भी अच्छा भोजन बनाना जो कार्य है, उसका कारण संगीत कला का ज्ञान नहीं है। उसका कारण तो पाकविद्या का ज्ञान है।

ठीक इसी प्रकार से आत्मा में भी अनेक गुण कर्म हैं। वह एकदेशी भी है, निराकार भी है, चेतन भी है, यज्ञादि कर्म भी करता है, खाता पीता सोता जागता भी है। झूठ छल कपट का प्रयोग भी करता है। सेवा परोपकार भी करता है। परंतु इन सबका आपस में कार्यकारणसंबंध नहीं है। क्योंकि जहां जहां कार्यकारणसंबंध होता है, वहां वहां उनमें साध्यसाधनभाव या व्याप्ति नियम लागू होता है। जैसा कि ऊपर के उदाहरण में बताया गया है, कि "पाकविद्या जानने से उत्तम भोजन बनाया जाता है।"

जैसे संगीत कला से अच्छा भोजन नहीं बनता, वैसे ही एकदेशी होने से साकार भी सिद्ध नहीं होता। क्योंकि इन दोनों में साध्यसाधनभाव नहीं है। यदि कोई पदार्थ एकदेशी होने से साकार होता, तो वैधर्म्य व्याप्ति से, व्यापक होने से निराकार भी होना चाहिए। जबकि प्रकृति व्यापक है, तो भी साकार है। अतः एकदेशी होना और साकार होना, इन दोनों में कार्यकारणसंबंध या साध्यसाधनभाव नहीं है। इसलिए आत्मा को, एकदेशी होने से साकार मानना गलत है।

(सूचना -- यह लेख लंबा है। शेष अगले भागों में प्रस्तुत किया जाएगा। ....

- **स्वामी विवेकानंद परिव्राजक**
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

आत्मा साकार है, या निराकार?

(इस लेख का भाग - 3.)

प्रथम पक्ष = आत्मा साकार है ।

द्वितीय पक्ष = आत्मा निराकार है ।

हमारा पक्ष = आत्मा निराकार है ।

इतना होने पर भी ये (पूर्वपक्षी लोग) हठ पकड़ कर बैठे हैं, वे अपने असत्य को छोड़ते नहीं। और हमें कहते हैं, आप आत्मा को पंचावयव से निराकार सिद्ध करें ।

ठीक है, हम आत्मा को अपने पंचावयव से निराकार सिद्ध करते हैं ----

*द्वितीय पक्ष * -- आत्मा निराकार है ।

साधर्म्य से हेतु व्याप्तिपूर्वक पंचावयव --

आत्मा निराकार है ।

परमाणुरूप न होने से ।

जो-जो वस्तु परमाणुरूप नहीं होती है, वह वह निराकार होती है ।

जैसे ईश्वर ।

ईश्वर के समान ही आत्मा भी परमाणुरूप नहीं है।

इसलिए परमाणुरूप न होने से, आत्मा निराकार है।

वैधर्म्य से हेतु व्याप्तिपूर्वक पंचावयव --

आत्मा निराकार है।

परमाणुरूप न होने से।

जो-जो वस्तु परमाणुरूप होती है, वह वह साकार होती है।

जैसे लोहा लकड़ी सेब केला आदि।

जैसा लोहा लकड़ी सेब केला आदि परमाणुरूप है, वैसा आत्मा नहीं है।

इसलिए परमाणुरूप न होने से, आत्मा निराकार है।

हमारी इस बात के उत्तर में वे लोग चालाकी से ऐसा कहते हैं। यदि आप आत्मा को "ईश्वर के समान निराकार" मानेंगे, तो उसे "ईश्वर के समान सर्वव्यापक" भी मानना पड़ेगा। क्योंकि जैसे ईश्वर निराकार है, तो वह सर्वव्यापक भी है। ऐसे ही यदि आत्मा भी निराकार है, तो वह भी ईश्वर के समान सर्वव्यापक होना चाहिए। अब आप आत्मा को सर्वव्यापक सिद्ध करें।

वास्तव में यह कथन, उनकी चालाकी है। न्यायदर्शन की भाषा में इसे जाति के नाम से कहते हैं। जाति = चालाकी = धोखाधड़ी। आप हमारे पिछले लेखों में 24 जातियों के विषय में पढ़/जान चुके हैं। उनमें से यह *उत्कर्षसमा

जाति है। इसका उल्लेख न्याय दर्शन 5/1/4 सूत्र में है। आप पिछले लेखों में भाग संख्या 30 में इसे पढ़ सकते हैं।

ये लोग जो कह रहे हैं कि यदि आत्मा ईश्वर के समान निराकार है, तो वह ईश्वर के समान सर्वव्यापक भी होना चाहिए. इनके इस कथन में उत्कर्षसमा जाति का प्रयोग है।

इसमें जाति अर्थात् चालाकी यह है, कि जो ईश्वर का दृष्टांत दिया गया है, उस दृष्टांत (ईश्वर) की एक अन्य विशेषता = व्यापकता को, साध्य (आत्मा) में बढ़ा करके इन्होंने दिखलाया है। जो कि आत्मा में नहीं है। यह उत्कर्षसमा जाति है।

उन्होंने यही आरोप लगाया है, कि

दृष्टांत = ईश्वर के तुल्य, साध्य =आत्मा भी सर्वव्यापक होना चाहिए.

न्याय दर्शन 5/1/5 सूत्र में इस उत्कर्षसमा जाति का समाधान भी किया गया है। और वहां यह बताया गया है कि कोई भी दृष्टांत 100% साध्य के तुल्य नहीं होता। जो भी दृष्टांत प्रस्तुत किया जाता है, वह साध्य के साथ कुछ अंशों में ही समानता रखता है।

उदाहरण के लिए कहा जाता है कि लता मंगेशकर जी की आवाज ऐसी मीठी है, जैसी कोयल की. अब इस कथन में लता जी की आवाज साध्य है, और कोयल की आवाज दृष्टांत है। क्या लता जी और कोयल दोनों 100% एक समान हैं? नहीं हैं। फिर भी ऐसा दृष्टांत दिया जाता है। तो यहां दृष्टांत में

केवल आवाज की मिठास की समानता तक साधर्म्य दिखाया गया है, न कि लता जी और कोयल, इन दोनों को 100% एक समान बताया जा रहा है। दृष्टांत देने वाला दोनों को 100% एक समान नहीं कहना चाहता । और प्रतिपक्षी यदि ऐसा अर्थ निकाले, और खंडन करे, कि यदि लता जी की आवाज़ कोयल जैसी है, तो लता जी, कोयल के समान पक्षी भी होनी चाहिये। तो यह अन्याय और अनुचित आरोप है। यह उत्कर्षसमा जाति का प्रयोग है।

इसी प्रकार से प्रस्तुत प्रसंग में, आत्मा को समझाने के लिए हमारे द्वारा जो ईश्वर का दृष्टांत दिया गया है, वह आंशिक समानता से दिया है, सर्वांश में नहीं। और यह समानता है, परमाणुरूप न होने से, निराकार होना। ऐसी स्थिति में यह कहना कि यदि आत्मा ईश्वर के समान निराकार है, तो वह ईश्वर के समान सर्वव्यापक भी होना चाहिए। यह अन्याय और सत्य का अनुचित खंडन है, उत्कर्षसमा जाति का प्रयोग है।

तीसरी बात --- हम यह कहते हैं कि चलिये, अभ्युपगम सिद्धांत से, थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाए, कि आत्मा साकार है। (प्रतिवादी को उसकी गलती समझाने के लिए, उसकी गलत बात को कुछ देर के लिए स्वीकार कर लेना, और फिर उसकी आगे विशेष परीक्षा करके उसे सही बात समझाना, इसे अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं। इसे अंग्रेज़ी भाषा में Suppose कहते हैं।) चलिए, थोड़ी देर के लिए आत्मा को साकार मान भी लिया जाए, तो ऐसा मानने से एक समस्या और उत्पन्न होती है। और वह यह है, कि - आत्मा को

भी किसी कार्य वस्तु का उपादान कारण मानने का दोष आ जाएगा।

कैसे? ऐसे ---> "साकार वस्तु संयुक्त होकर किसी कार्य वस्तु का उपादान कारण बन जाती है। जैसे सत्त्व रज और तम ये तीन प्रकार के परमाणु साकार हैं। ईश्वर इन का संयोग करके सूर्य पृथ्वी आदि जगत के साकार पदार्थों की रचना करता है। और ये तीनों परमाणु, कार्य जगत का उपादान कारण कहलाते हैं। ये तीनों साकार हैं, इसीलिए इनसे साकार जगत की उत्पत्ति होती है।

अब यदि आत्मा को भी साकार माना जाए, तो उसमें भी किसी कार्य वस्तु का उपादान कारण बनने का दोष आ जाएगा। उसका भी किसी वस्तु के साथ संयोग करके, सत्त्व रज तम के समान, आत्मा को भी किसी कार्य पदार्थ का उपादान कारण मानना होगा। परंतु ऐसा मानना तो वेदों और ऋषियों के सिद्धांतो के विरुद्ध है। वैदिक शास्त्रों में कहीं भी आत्मा को किसी कार्य द्रव्य का उपादान कारण स्वीकार नहीं किया गया। इसलिए आत्मा किसी कार्य द्रव्य का उपादान कारण न होने से, साकार नहीं हो सकता। अतः यही सिद्ध हुआ कि आत्मा निराकार है। परमाणु रूप न होने से, ईश्वर के समान।

(सूचना -- यह लेख लंबा है। शेष अगले भागों में प्रस्तुत किया जाएगा। ....)

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

आत्मा साकार है, या निराकार?

(इस लेख का भाग - 4.)

प्रथम पक्ष = आत्मा साकार है ।

द्वितीय पक्ष = आत्मा निराकार है ।

हमारा पक्ष = आत्मा निराकार है ।

आत्मा निराकार है । अब इस विषय में महर्षि दयानंद सरस्वती जी एवं अन्य ऋषियों के प्रमाण प्रस्तुत किए जाते हैं ।

प्रमाण -- 1.

महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने महाराष्ट्र के पूना नगर में कुछ प्रवचन किए थे । उन प्रवचनों की पुस्तक बनी, जिसे लोग "उपदेश मंजरी" के नाम से जानते हैं । उन प्रवचनों में उन्होंने प्रथम उपदेश में कहा कि जीवात्मा आकार रहित (निराकार) है । उनके शब्द इस प्रकार से हैं -----क्योंकि शरीर स्थित जो जीव है, वह भी आकार रहित है । यह सब कोई मानते हैं, अर्थात वैसा आकार न होते हुए भी हम परस्पर एक-दूसरे को पहचानते हैं ।

इस वचन में महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने स्पष्ट ही जीवात्मा को आकार रहित अर्थात् निराकार स्वीकार किया है ।

प्रमाण -- 2.

इसी प्रकार से उपदेश मंजरी के चतुर्थ उपदेश में भी कहा है। वहां उनके वचन इस प्रकार से हैं -----जीव का आकार नहीं, तो भी जीव का ध्यान होता है वा नहीं? ज्ञान सुख-दुख इच्छा द्वेष प्रयत्न ये नष्ट होते ही जीव निकल जाता है, यह किसान भी समझता है ।

इस वचन में भी महर्षि दयानंद जी ने जीव को आकार रहित अर्थात् निराकार ही माना है ।

प्रमाण -- 3.

महर्षि दयानंद सरस्वती जी के एक हस्तलिखित पत्र में भी उन्होंने स्वीकार किया है, कि आत्मा निराकार है । पत्र में लिखे शब्द ये हैं, -------*

यच्चेतनवत्त्वं तज्जीवत्त्वम्। जीवस्तु खलु चेतनस्वभावः। अस्येच्छादयो धर्मास्तु निराकारोऽविनाश्यनादिश्च वर्तते ।*

अर्थात जो चैतन्य गुणवाला है, वह जीवात्मा है। जीवात्मा चेतन स्वभाव वाला है। इसके इच्छा आदि धर्म हैं। यह निराकार है, अविनाशी = नष्ट न होने वाला और अनादि है ।

इस पत्र में भी महर्षि दयानंद जी ने आत्मा को निराकार माना है ।

प्रमाण -- 4.

महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने सत्यार्थ प्रकाश के सातवें समुल्लास में पृष्ठ 149 पर यह लिखा है।

प्रश्न -- ईश्वर साकार है वा निराकार?

उत्तर -- निराकार। क्योंकि जो साकार होता ...... वह पूरा अनुच्छेद पढ़ें। उसमें आगे लिखा है ---

क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है उसको संयुक्त करने वाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिए।

इस वाक्य को विशेष ध्यान से पढ़ें।

यद्यपि सत्यार्थप्रकाश में यह कथन ईश्वर के संबंध में है। परंतु इस वाक्य से जो सिद्धांत निकलता है, वह जीवात्मा पर भी लागू होता है।

इस वाक्य के अनुसार यदि ईश्वर चेतन होते हुए परमाणुओं का संयोग करके सृष्टि को बनाता है, और वह निराकार है।

तो इसी प्रकार से आत्मा भी चेतन होते हुए लोहा लकड़ी आदि वस्तुओं का संयोग करके स्कूटर कार रेल आदि वस्तुओं को बनाता है, तो वह भी निराकार सिद्ध होता है। जब चेतन ईश्वर वस्तुओं का निर्माता होने से निराकार है, तो चेतन आत्मा, वस्तुओं का निर्माता होने से निराकार क्यों नहीं? इससे सिद्ध हुआ कि आत्मा निराकार है।

हमने आत्मा को निराकार सिद्ध करने के लिए महर्षि दयानंद सरस्वती जी के 4 प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। परंतु साकार मानने वालों

ने 1 भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया, जिसमें आत्मा के लिए सीधा साकार शब्द लिखा हो, अथवा अर्थापत्ति आदि से भी आत्मा साकार सिद्ध होता हो। प्रमाण इन्होंने दिया नहीं, पंचावयव से सिद्ध हो नहीं पाया। क्योंकि इनका हेतु, अनैकांतिक हेत्वाभास था।

पूर्वपक्ष -- हमारे पास प्रमाण है।

जिसका आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर धारण करता है, इसलिये परमेश्वर का नाम निराकार है। (-सत्यार्थ प्रकाश, प्रथम समुल्लास, ईश्वर नाम संख्या 67.)

उत्तरपक्ष -- विषय था, जीवात्मा साकार है या निराकार? पूर्वपक्षी को प्रमाण तो वह देना चाहिए था, जिससे जीवात्मा साकार सिद्ध होता हो। परंतु प्रमाण दे रहे हैं, ईश्वर के निराकार होने का। अब आप विचार कीजिये, क्या यह प्रमाण आत्मा को साकार सिद्ध करता है? नहीं करता। प्रसंग से बाहर की बात कहने से, इस प्रमाण से मूल विषय की सिद्धि में कोई सहायता नहीं मिलती।

दूसरी बात- पूर्वपक्षी ने आत्मा को साकार सिद्ध करने के लिए, ऊपर जो भी प्रमाण दिया है, इस पर भी विचार कर लेते हैं।

इस वचन में दो बातें कही हैं। एक तो, ईश्वर का कोई आकार नहीं है। और दूसरी बात, वह शरीर धारण नहीं करता, इसलिए ईश्वर निराकार है।

इनमें जो पहली बात कही है, वह तो निराकार शब्द का अर्थ ही है। वह तो कोई कारण नहीं है। दूसरी बात को यदि पूर्वपक्षी कहे कि, "ईश्वर शरीर को धारण नहीं करता, इसलिए निराकार है। तो अर्थापत्ति से यह सिद्ध हुआ कि जीवात्मा शरीर धारण करता है, इसलिए वह साकार है।"

तो हमारा कहना यह है कि, इनका बताया हुआ यह हेतु भी दोनों पक्षों में जाने से, सव्यभिचार हेत्वाभास है, अर्थात यह कारण भी गलत है। (देखें न्याय दर्शन सूत्र 1/2/5.)

क्योंकि यदि शरीर धारण न करने से ईश्वर आदि कोई वस्तु निराकार सिद्ध होती है, तो प्रकृति और जगत् के पदार्थ लोहा लकड़ी पृथ्वी जल अग्नि आदि भी शरीर धारण नहीं करते, तो ये सब भी निराकार होने चाहिएँ। क्या ये सब पदार्थ निराकार हैं? बिल्कुल नहीं। प्रकृति आदि ये सब पदार्थ तो साकार हैं। इसलिये यह अर्थापत्ति ठीक नहीं है। इससे आत्मा साकार सिद्ध नहीं होता।

यहां पर प्रतिवादी ने, ईश्वर के संबंध में महर्षि दयानंद जी द्वारा कहे गए वाक्य को, केवल उलटमात्र दिया है, तथा उसे जीवात्मा पर लागू कर दिया है। और अपने पक्ष (आत्मा साकार है), की सिद्धि में कुछ भी हेतु आदि प्रस्तुत नहीं किया। इसे अर्थापत्तिसमा जाति कहते हैं। (देखें न्यायसूत्र 5/1/17). इतने मात्र से आत्मा साकार सिद्ध नहीं होता।

तीसरी बात -- प्रतिवादी ने जो बात अर्थापत्ति से निकाली है, कि "आत्मा साकार है ।" वह भी वास्तव में अर्थापत्ति नहीं है, बल्कि अर्थापत्ति का भ्रम है। क्योंकि वह बात अनुमान प्रमाण से विरुद्ध है। अनुमान प्रमाण से तो यही सिद्ध होता है, कि "आत्मा निराकार है ।"

जैसे कि --

आत्मा निराकार है ।

परमाणुरहित होने से ।

जो-जो वस्तु परमाणुरहित होती है, वह वह निराकार होती है ।

जैसे ईश्वर ।

ईश्वर के समान ही, आत्मा भी परमाणुरहित है। इसलिए परमाणुरहित होने से, आत्मा निराकार है ।

इसलिए यह अर्थापत्तिसमा जाति का प्रयोग है, और भोले भाले लोगों को भ्रमित करने के लिए चालाकी से किया गया, सत्य का अनुचित खंडन है । इससे आत्मा साकार सिद्ध नहीं होता ।

(सूचना -- यह लेख लंबा है । शेष अगले भागों में प्रस्तुत किया जाएगा । ....)

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,

रोजड़, गुजरात।

आत्मा साकार है, या निराकार?

(इस लेख का भाग - 5.)

प्रथम पक्ष = आत्मा साकार है ।

द्वितीय पक्ष = आत्मा निराकार है ।

हमारा पक्ष = आत्मा निराकार है ।

चौथी बात -- "ईश्वर शरीर धारण नहीं करता", यह कोई ईश्वर के निराकार होने का हेतु नहीं है । बल्कि इसका कारण तो अलग है । इसका कारण यह है कि "ईश्वर सर्वशक्तिमान् है । उसे अपने कार्यों को करने के लिए शरीर की सहायता नहीं चाहिए, इसलिए वह शरीर धारण नहीं करता । जबकि जीवात्मा अल्पशक्तिमान् है, शरीर धारण किए बिना उसका काम नहीं चलता । इसलिए विवशता से वह शरीर को धारण करता है । शरीर धारण करने पर भी आत्मा निराकार है । निराकार इसलिए है, क्योंकि आत्मा अभौतिक (परमाणुरूप नहीं) है । ईश्वर भी अभौतिक (परमाणुरूप नहीं) है, इसलिए वह निराकार है । तो दोनों के निराकार होने का हेतु

अभौतिक (परमाणुरूप नहीं) होना है।

"शरीर धारण करना या न करना", यह किसी वस्तु के निराकार होने या साकार होने का हेतु नहीं है। बल्कि "अल्पशक्तिमत्ता और सर्वशक्तिमत्ता," शरीर धारण करने या न करने के कारण हैं। इसलिए यह हेतु ठीक नहीं बना, कि "ईश्वर शरीर धारण नहीं करता, इसलिए वह निराकार है।" क्योंकि आत्मा तो शरीर धारण करता है, फिर भी वह निराकार है।

पूर्वपक्षी -- परंतु यह वाक्य तो महर्षि दयानंद जी का है. क्या आप महर्षि दयानंद जी का विरोध करना चाहते हैं? जिसका आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर धारण करता है, इसलिये परमेश्वर का नाम निराकार है। (-सत्यार्थ प्रकाश, प्रथम समुल्लास, ईश्वर नाम संख्या 67.)

उत्तरपक्षी -- हम महर्षि दयानंद जी का विरोध न कर रहे हैं, और न करना चाहते हैं। हम तो आपकी उल्टी समझ को सीधा करना चाहते हैं। आप महर्षि दयानंद जी के अभिप्राय को ठीक प्रकार से समझ नहीं रहे, इसलिए हम आपको समझाने के लिए यह कह रहे हैं कि -- महर्षि दयानंद जी ने इस वाक्य में निराकार होने का हेतु नहीं बताया। सिर्फ ईश्वर के निराकार नाम को समझाने का प्रयास किया है। उन्होंने कहा है कि ईश्वर का अपना कोई आकार नहीं है, इसलिए उसे निराकार कहते हैं। यह तो प्रसंगवश एक अतिरिक्त बात बता दी, कि -- जैसे जीवात्मा शरीर धारण कर लेता

है और शरीर के संबंध से गौण रूप से यदि आत्मा को साकार कह भी दिया जाए, तो ईश्वर इस अर्थ में भी साकार नहीं बन सकता। क्योंकि ईश्वर शरीर कभी भी धारण करता ही नहीं। इसलिए ईश्वर तो दोनों प्रकार से ही निराकार है। "एक -- तो उसका अपना कोई आकार नहीं , जैसे भौतिक प्रकृति पृथ्वी सूर्य आदि पदार्थों का है। और दूसरा -- ईश्वर शरीर धारण करके गौण कथन में भी आकार वाला नहीं कहा जा सकता, जैसे जीवात्मा शरीर धारण करके गौण कथन में आकारवाला कह दिया जाता है।" इसलिए हम महर्षि जी का खंडन नहीं कर रहे, हम तो उनका समर्थन ही कर रहे हैं। आप भ्रांति या संशय में न पड़ें। अतः उक्त प्रकार से आत्मा निराकार ही सिद्ध होता है, साकार नहीं। ऐसी स्थिति में आत्मा को साकार मानना भ्रांति ही है।

आत्मा को साकार मानने वाले लोगों की भ्रांति का कारण ---

इसके अतिरिक्त एक और बात कहना चाहता हूँ, कि ये लोग आकार गुण तथा परिमाण गुण, इन दोनों में अंतर नहीं समझ रहे हैं। यह इनकी बहुत बड़ी भूल है, जिसके कारण इन्हें भ्रांति पैदा हुई, और दूसरों में भी फैला दी।

इस लेख के भाग - 1 में अष्टाध्यायी वाचस्पत्यम् आदि शास्त्रों के आधार पर 'आकार' शब्द का अर्थ बताया जा चुका है। "रूप, रंग, शक्ल या कुछ अवयवों को मिलाकर जो विशेष रचना = गोलाकार

www.darshanyog.org darshanyog@gmail.com

त्रिकोण चतुर्भुज षट्कोण अष्टकोण आदि बनाई गई हो, उसको आकार या आकृति कहते हैं।"

वैशैषिक दर्शन में बताए गए 24 गुणों में, रूप गुण का नाम आकार है। क्योंकि रूप गुण का नेत्र इंद्रिय से प्रत्यक्ष होता है। और त्रिकोण चतुर्भुज षट्कोण आदि आकार भी नेत्र इंद्रिय से ही जाने जाते हैं। इसलिए रूप और आकार एक ही गुण हुआ। जबकि वैशेषिक दर्शन में परिमाण गुण (वस्तु का फैलाव) को, रूप गुण से अलग बताया है। अतः आकार (रूप) और परिमाण (वस्तु का फैलाव) दोनों अलग-अलग गुण हुए। ये लोग परिमाण गुण को, आकार गुण समझ रहे हैं। यही इनको भ्रांति है। इस भ्रांति के कारण ही ये लोग आत्मा को साकार बता रहे हैं।

अब बुद्धिमान लोग विचार करें, क्या आत्मा का कोई रूप रंग है, कोई शक्ल है? क्या आत्मा अवयवों के संयोग से बनाई गई रचनाविशेष है? क्या इसमें कोई त्रिकोण चतुर्भुज षट्कोण आदि आकृति है? यदि नहीं है, तो आत्मा साकार कैसे हुआ? इतनी मोटी बात पर भी ये लोग ठीक से विचार नहीं कर सके।

(सूचना -- यह लेख लंबा है। शेष अगले भागों में प्रस्तुत किया जाएगा। ....)

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,

रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

आत्मा साकार है, या निराकार?

(इस लेख का भाग - 6.)

प्रथम पक्ष = आत्मा साकार है ।

द्वितीय पक्ष = आत्मा निराकार है ।

हमारा पक्ष = आत्मा निराकार है ।

अब ऋषियों का सिद्धांत यह है कि जिस वस्तु में रूप है, अर्थात आकार है, वह साकार वस्तु है । जिस वस्तु में रूप नहीं, आकार नहीं, वह निराकार वस्तु है । आत्मा में रूप गुण किसी भी ऋषि ने स्वीकार नहीं किया, तो आत्मा साकार कैसे हुई? जबकि ऋषियों के मतानुसार परिमाण (वस्तु का फैलाव) गुण साकार और निराकार दोनों प्रकार के पदार्थों में है ।

जैसे कि पृथ्वी सूर्य आदि पदार्थों में आकार (रूप) गुण भी है, और उनका फैलाव अधिक होने से

महत्परिमाण भी है। तो यह हो गया साकार द्रव्यों में परिमाण गुण।

अब आत्मा और ईश्वर, ये दोनों निराकार द्रव्य हैं, इनमें किसी में भी रूप गुण या आकार गुण नहीं है, परंतु परिमाण गुण इन दोनों में भी है।

कठोपनिषद 2/20 में लिखा है.. अणोरणीयान् महतोमहीयान्...।। अर्थात् ईश्वर अणु से भी अणु है और महत् से भी महत् है। अर्थात् वह छोटे से छोटा है और बड़े से बड़ा पदार्थ है। इस प्रकार से कठोपनिषद में निराकार ईश्वर में परिमाण गुण स्वीकार किया है। वैशेषिक दर्शन में अणु और महत् ये दोनों परिमाण गुण के नाम हैं।

तथा निराकार आत्मा में भी परिमाण गुण है । मुंडक उपनिषद 3/1/9 में आत्मा को अणु कहा है। एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन्प्राणः पंचधा संविवेश।। यह आत्मा अणु अर्थात् सूक्ष्म/छोटा है। यहाँ आत्मा में परिमाण बताया है, न कि आकार।

वैशेषिक दर्शन में भी महर्षि कणाद जी ने ईश्वर एवं आत्मा को परिमाण गुण वाला स्वीकार किया है, आकार गुण वाला नहीं।

विभवान्महानाकाशः।। तथा चात्मा।।
तदभावात् अणु मनः।। तथा चात्मा।। वैशैषिक दर्शन 7/1/22,23.

अर्थात् व्यापक होने से आकाश महत्परिमाण वाला है।। और इसी हेतु से अर्थात व्यापक होने से ही ईश्वर भी महत्परिमाण वाला है।। व्यापक न होने से मन अणु अर्थात् एकदेशी है ।। और इसी हेतु से अर्थात् व्यापक न होने से आत्मा भी अणु परिमाण अर्थात् एकदेशी है।।

इन सूत्रों में भी आत्मा तथा ईश्वर को परिमाण गुण वाला बताया है, साकार नहीं। क्योंकि अणु और महत्, ये शब्द परिमाण गुण के वाचक हैं, रूप या आकार गुण के वाचक नहीं हैं।

यदि आप (पूर्वपक्षी) आत्मा को, अणु का अर्थ एकदेशी, और एकदेशी होने से साकार कहेंगे, तो कठोपनिषद एवं वैशेषिक दर्शन के प्रमाणों के आधार पर आपको, ईश्वर को भी साकार मानना पड़ेगा। क्योंकि उक्त शास्त्रों में परिमाण तो इन दोनों (आत्मा और ईश्वर) में बताया गया है। क्या पूर्वपक्ष वाले लोग ईश्वर को साकार मानेंगे?

तो सार यह हुआ, कि ये लोग परिमाण और आकार गुण में अंतर नहीं समझ रहे। इसलिए इन्होंने परिमाण को भ्रांति से आकार मानकर जीवात्मा को साकार कहना आरंभ कर दिया। ईश्वर इन लोगों को सद्बुद्धि दे, ये लोग सत्य को समझ सकें। हमारी ओर से इनके कल्याण के लिए बहुत शुभकामनाएं।

सब बुद्धिमानों को इस विषय में गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए, और निश्चित रूप से यह जानना चाहिए कि महर्षि दयानंद सरस्वती जी एवं महर्षि कणाद आदि अन्य ऋषियों का भी सिद्धांत यही है कि आत्मा निराकार है।

(सूचना -- यह लेख समाप्त हुआ।)

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

विषय -- आत्मा स्थान घेरती है या नहीं?

----

*पूर्व पक्ष * --

आत्मा स्थान घेरती है।

हमारा पक्ष --

आत्मा स्थान नहीं घेरती।

(सूचना - हमारे इस लेख में 'परमाणुरूप, या भौतिक पदार्थ' शब्द का अर्थ होगा -- सत्त्व रज तम प्रकृति; और प्रकृति से बने पृथ्वी सूर्य लोहा लकड़ी आदि जगत के सभी पदार्थ।)

काफी लंबे समय से यह विवाद भी विद्वानों में चल रहा है। कुछ विद्वान कहते हैं कि "आत्मा स्थान घेरती है।" और कुछ विद्वान कहते हैं कि "आत्मा स्थान नहीं घेरती।" ऐसे विवाद से, सामान्य लोगों का संशय तो और भी अधिक बढ़ जाता है, कि - वास्तव में आत्मा की स्थिति क्या है? आत्मा स्थान घेरती है या नहीं? तो आइए, इस विषय पर विचार करते हैं।

इस विषय में ऋषियों का कोई सीधा-सीधा वचन, शब्द प्रमाण के रूप में नहीं मिलता, कि आत्मा स्थान घेरती है या नहीं? जब सीधा

शब्द प्रमाण नहीं मिलता, और प्रत्यक्ष प्रमाण से भी लोगों को पता नहीं चलता, कि आत्मा स्थान घेरती है या नहीं? तो ऐसी स्थिति में ऐसे परोक्ष और सूक्ष्म विषयों को न्याय दर्शन के अनुसार पंचावयव प्रक्रिया से सिद्ध किया जाता है । इसलिये हम इसी प्रक्रिया से इस विषय को सिद्ध करेंगे ।

पूर्वपक्ष --

आत्मा स्थान घेरती है । स्थूल होने से । जो जो वस्तु स्थूल होती है, वह वह स्थान घेरती है । जैसे दो कारें । आत्मा भी कारों के समान स्थूल है । इसलिए स्थूल होने से, आत्मा स्थान घेरती हैं ।

इसका खण्डन --

यद्यपि आत्मा को शास्त्र में ईश्वर की अपेक्षा स्थूल कहा गया है । परन्तु जो स्थूल शब्द से, कारों के समान स्थान घेरने वाला अर्थ लिया जा रहा है, यह सिद्ध नहीं है । क्योंकि जो स्थान घेरने वाली वस्तु होती है, उसमें परमाणु होना आवश्यक है । कारें इसलिये स्थान घेरती हैं, क्योंकि उनमें परमाणु होते हैं । आत्माओं में कोई परमाणु नहीं हैं । इसलिए वे स्थान नहीं घेरती । अतः यह हेतु स्वयं ही सिद्ध नहीं है । सिद्ध न होने से, न्यायसूत्र 1/2/8 के अनुसार यह साध्यसम हेत्वाभास है ।

हमारा पक्ष -- आत्मा स्थान नहीं घेरती ।

साधर्म्य से पंचावयव ---

आत्मा स्थान नहीं घेरती । परमाणुरूप (भौतिक) न होने से । जो जो वस्तु परमाणुरूप (भौतिक) नहीं होती है , वह वह स्थान नहीं घेरती । जैसे ईश्वर । आत्मा भी ईश्वर के तुल्य परमाणुरूप (भौतिक)

नहीं है। इसलिए परमाणुरूप (भौतिक) न होने से, आत्मा स्थान नहीं घेरती।

वैधर्म्य से पंचावयव ----

आत्मा स्थान नहीं घेरती। परमाणुरूप (भौतिक) न होने से। जो जो वस्तु परमाणुरूप (भौतिक) होती है, वह वह स्थान घेरती है। जैसे ईंट पत्थर इत्यादि। जैसे ईंट पत्थर परमाणुरूप (भौतिक) हैं, आत्मा वैसी नहीं है। इसलिए परमाणुरूप (भौतिक) न होने से, आत्मा स्थान नहीं घेरती।

व्याख्या -- आत्मा परमाणुरूप (भौतिक) पदार्थ नहीं है, ईश्वर भी परमाणुरूप (भौतिक) पदार्थ नहीं है, दोनों एक जैसे हैं। इसलिये इन दोनों में से कोई भी पदार्थ स्थान नहीं घेरता। ईंट पत्थर आदि परमाणुरूप (भौतिक) पदार्थ हैं। ये स्थान घेरते हैं। इसीलिये एक ईंट में दूसरी ईंट प्रवेश नहीं कर सकती। तो तात्पर्य यह हुआ कि, तीन पदार्थ (ईश्वर, आत्मा और प्रकृति) में से दो पदार्थ (आत्मा और ईश्वर) स्थान नहीं घेरते, केवल एक ही पदार्थ (प्रकृति) स्थान घेरता है। इस कारण से तीनों पदार्थ एक ही स्थान पर इकट्ठे रह सकते हैं, और रहते हैं।

यदि अभौतिक होते हुए आत्मा स्थान घेरती होती, तो अभौतिक होते हुए ईश्वर भी स्थान घेरता।

यदि अभौतिक होते हुए ईश्वर स्थान घेरता होता, तो अनन्त होने से, सारा स्थान ईश्वर ही घेर लेता। तब आत्मा और प्रकृति (भौतिक पदार्थों) को निवास करने का स्थान ही नहीं मिलता। अब सोचिये, ईश्वर के अतिरिक्त क्या आत्मा और प्रकृति भी जगत् में निवास कर रहे हैं या नहीं?

यदि हां। अर्थात आत्मा और प्रकृति भी जगत में निवास कर रहे हैं। तो इससे सिद्ध हुआ कि ईश्वर ने कोई स्थान नहीं घेरा । जब परमाणुरूप (भौतिक) न होते हुए ईश्वर कोई स्थान नहीं घेरता, तो परमाणुरूप (भौतिक) न होते हुए आत्मा क्यों स्थान घेरेगी? "इसलिए यह मानना गलत है कि आत्मा स्थान घेरती है।" बल्कि यही सिद्ध हुआ कि "आत्मा स्थान नहीं घेरती।"

पूर्वपक्ष --

कुछ लोग कहते हैं, सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि मुक्ति के स्थान में बहुत सा भीड़ भड़क्का हो जाएगा, क्योंकि वहां आगम अधिक और व्यय कुछ भी नहीं होने से बढ़ती का पारावार न रहेगा।(सत्यार्थप्रकाश 9 वाँ समुल्लास, पृष्ठ 199.)

ऐसा प्रमाण देकर वे यह कहना चाहते हैं कि "आत्माएँ यदि मुक्ति में भीड़ भड़क्का करेंगी, तो इसका अर्थ है कि आत्माएँ स्थान घेरती हैं। जैसे कि स्थान घेरने वाले शरीरों के कारण सब्जी मंडी और बाजारों में भीड़ भड़क्का हो जाता है।"

उत्तरपक्ष --

यदि आप सत्यार्थप्रकाश के पूर्वपक्षी एवं उत्तरपक्षी का वह पूरा प्रसंग देखें, तो आपको यह पता चलेगा, कि सत्यार्थप्रकाश के 9 वें समुल्लास वाला पूर्वपक्षी कह रहा है --> जितनी आत्माओं का मोक्ष हो जाएगा, ईश्वर, उतनी आत्माएँ नई बनाकर संसार में रख देगा। इसलिए संसार कभी भी खाली नहीं होगा, और आत्मा मुक्ति से कभी भी वापस नहीं लौटेगी। ऐसा पूर्वपक्ष है।

तो इस पूर्वपक्ष का खंडन करने के लिए महर्षि दयानंद सरस्वती जी, वहां अभ्युपगम सिद्धांत से यह बात कह रहे हैं, कि - यदि ईश्वर नई आत्माएँ बनाएगा। तो ऐसा मानने पर यह परिणाम होगा --> "जब कोई भी वस्तु बनाई जाती है, तो किसी न किसी उपादान कारण से बनाई जाती है। वह उपादान कारण परमाणुरूप (भौतिक) पदार्थ ही होता है, और वह स्थान भी घेरता है। जैसे लोहा लकड़ी आदि। (कोई भी परमाणु रहित अभौतिक पदार्थ = आत्मा, ईश्वर आदि कभी भी किसी कार्य पदार्थ का उपादान कारण नहीं होता। यह महर्षि दयानंद सरस्वती जी आदि सभी ऋषियों का सिद्धांत है।) अब यदि आप ऐसा मानेंगे, कि ईश्वर नई आत्माएँ बनाएगा, तो वे किसी न किसी परमाणुरूप (भौतिक) पदार्थ उपादान कारण से ही बनाई जाएँगी। और तब वे लोहे लकड़ी के समान स्थान भी घेरेंगी। यदि वे स्थान घेरेंगी, तो फिर वे भीड़ भड़क्का भी पैदा करेंगी।

परंतु यह तो अभ्युपगम सिद्धांत के आधार पर, महर्षि दयानंद जी द्वारा पूर्वपक्ष में दोष दिखाया गया है। यह महर्षि दयानंद जी का स्वमत (अपना सिद्धांत) नहीं है। क्योंकि महर्षि दयानंद जी के अनुसार, वर्तमान में जो नित्य निराकार अल्पज्ञ चेतन परमाणु रहित (अभौतिक) इच्छा द्वेष प्रयत्न ज्ञान आदि गुणों वाली आत्माएँ हैं। उन आत्माओं को महर्षि दयानंद जी न तो परमाणुरूप (भौतिक) मानते, न साकार मानते, और न ही स्थान घेरने वाली मानते हैं। उनके पूरे शास्त्रों में ऐसी झलक कहीं भी नहीं मिलती।

आत्मा के जो लक्षण इच्छा द्वेष प्रयत्न ज्ञान आदि महर्षि दयानंद जी ने अपने ग्रंथों में स्वीकार किए हैं, ये सब इच्छा द्वेष प्रयत्न ज्ञान आदि लक्षण तो चेतन परमाणुरहित (अभौतिक) निराकार आत्मा में ही सिद्ध होते हैं। इसलिए उस भीड़ भड़क्के वाली बात से "आत्मा को स्थान घेरने वाली कहना," यह महर्षि दयानंद जी के सिद्धांत को बिना समझे कही गई बात है। तथा यह कथन उनके सिद्धांत के विरुद्ध भी है। और यह न्याय सूत्र 5/1/18 के अनुसार अज्ञान नामक निग्रहस्थान है।

जैसे अभ्युपगम सिद्धांत से यह कहा जाता है कि यदि ईश्वर अवतार लेगा, तो उसे भूख प्यास गर्मी ठंडी रोग वियोग जन्म मृत्यु आदि सब चीजें दुखी करेंगी। यह तो पूर्वपक्ष में दोष दिखाया गया है, न कि सिद्धांती का अपना मत है, कि ईश्वर इन भूख प्यास रोग वियोग आदि से दुखी होता है।

ऐसी ही बात भीड़ भड़क्के वाली है। वह भी पूर्वपक्ष में दोष दिखाया गया है, न कि महर्षि दयानंद सरस्वती जी का स्वमत है। अतः पूरे प्रकरण से यही सिद्ध हुआ कि "आत्मा स्थान नहीं घेरती।"

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,

रोजड़, गुजरात।

विषय -- आत्माएँ आपस में टकराती हैं या नहीं?

पूर्व पक्ष --

आत्माएं आपस में टकराती हैं।

हमारा पक्ष --

आत्माएँ आपस में टकराती नहीं हैं।

(सूचना - हमारे इस लेख में 'परमाणुरूप, या भौतिक पदार्थ' शब्द का अर्थ होगा -- सत्त्व रज तम प्रकृति; और प्रकृति से बने पृथ्वी सूर्य लोहा लकड़ी आदि जगत के सभी पदार्थ।)

इस विषय में भी ऋषियों का कोई सीधा-सीधा वचन, शब्द प्रमाण के रूप में नहीं मिलता, कि आत्माएँ आपस में टकराती हैं या नहीं? अतः इस विषय को भी न्याय दर्शन की पंचावयव प्रक्रिया से ही सिद्ध करेंगे।

पूर्वपक्ष --

आत्माएं आपस में टकराती हैं। स्थूल होने से। जो जो वस्तु स्थूल होती है, वह वह टकराती है। जैसे दो कारें। आत्माएँ भी कारों के समान स्थूल हैं। इसलिए स्थूल होने से आत्माएं टकराती हैं।

इसका खण्डन --

यद्यपि आत्मा को शास्त्र में ईश्वर की अपेक्षा स्थूल कहा गया है। परन्तु जो स्थूल शब्द से, कारों के समान टकराने वाला अर्थ लिया जा रहा है, यह सिद्ध नहीं है। जो टकराने वाली वस्तु होती है, उसमें परमाणु होना आवश्यक है। कारें इसलिये टकराती हैं, क्योंकि उनमें परमाणु होते है। आत्मा में कोई परमाणु नहीं हैं। इसलिए वे न तो स्थान घेरती और न ही टकराती हैं। अतः आत्माओं को स्थूल कहना, यह हेतु स्वयं ही सिद्ध नहीं है। सिद्ध न होने से, न्यायसूत्र 1/2/8 के अनुसार यह साध्यसम हेत्वाभास है।

हमारा पक्ष --

आत्माएँ आपस में टकराती नहीं हैं।

वैधर्म्य से पंचावयव 1 ----

दो आत्माएं टकराती नहीं हैं। स्पर्श गुण वाली न होने से। जो जो वस्तु स्पर्श गुण वाली होती है, वह वह टकराती है। जैसे 2 रेलगाड़ियां। जैसे 2 रेलगाड़ियाँ स्पर्श गुण वाली हैं, दो आत्माएँ वैसी नहीं हैं। इसलिए स्पर्श गुण वाली न होने से, दो आत्माएं टकराती नहीं हैं।

वैधर्म्य से पंचावयव 2 ----

दो आत्माएं टकराती नहीं हैं। स्थान घेरने वाली न होने से। जो जो वस्तु स्थान घेरने वाली होती है, वह वह टकराती है। जैसे 2 कारें। जैसे 2 कारें स्थान घेरने वाली हैं, दो आत्माएँ वैसी नहीं हैं। इसलिए स्थान घेरने वाली न होने से, दो आत्माएं टकराती नहीं हैं।

व्याख्या -- दो वस्तुओं में टक्कर होने वाली बात भी तभी आती है, जब वे दोनों वस्तुएँ स्पर्श गुण वाली हों। जैसे 2 रेलगाड़ियां। रेलगाड़ियां स्पर्श गुण वाली होती हैं, वे टकराती हैं। ऐसे ही जो वस्तुएं स्थान घेरती हैं, वे भी टकराती हैं। जैसे 2 कारें। इस प्रकार से स्पर्श गुण वाली और स्थान घेरने वाली वस्तुओं में टक्कर होती है।

ऐसे 2 आत्माएं तो स्पर्श गुण वाली हैं नहीं, वे स्थान भी नहीं घेरती, इसीलिए टकराती भी नहीं। अतः यह मानना भी गलत है, कि दो आत्माओं में टक्कर होती है। बल्कि स्पर्श गुण वाली न होने से, और स्थान घेरने वाली न होने से, यही सिद्ध हुआ कि दो आत्माएँ रेलगाड़ियों या कारों की तरह आपस में टकराती नहीं हैं।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

विषय -- क्या एक आत्मा में दूसरी आत्मा प्रवेश कर सकती है, या नहीं।

~~~~~

पूर्वपक्ष -- एक आत्मा में दूसरी आत्मा प्रवेश नहीं कर सकती।

*हमारा पक्ष * --

एक आत्मा में दूसरी आत्मा प्रवेश कर सकती है।

(सूचना - हमारे इस लेख में 'परमाणुरूप, या भौतिक पदार्थ' शब्द का अर्थ होगा -- सत्त्व रज तम प्रकृति; और प्रकृति से बने पृथ्वी सूर्य लोहा लकड़ी आदि जगत के सभी पदार्थ।)

पूर्वपक्ष --

एक आत्मा में दूसरी आत्मा प्रवेश नहीं कर सकती। स्थान घेरने से। जो जो वस्तु स्थान घेरती है, वह वह एक दूसरे में प्रवेश नहीं कर सकती। जैसे दो ईंटें। आत्माएँ भी ईंटों के समान स्थान घेरती हैं। इसलिए स्थान घेरने से, एक आत्मा में दूसरी आत्मा प्रवेश नहीं कर सकती।
~~~~~

इसका खण्डन --

पूर्वपक्षी ने आत्माओं को ईंटों के समान स्थान घेरने वाली बतलाया है। जबकि आत्मा स्थान नहीं घेरती। क्योंकि जो स्थान घेरने वाली वस्तु होती है, उसमें परमाणु होना आवश्यक है। ईंटों में परमाणु होते हैं, इसलिये ईंटें स्थान घेरती हैं। आत्मा में कोई परमाणु नहीं हैं। इसलिए वे स्थान नहीं घेरती। अतः यह हेतु स्वयं ही सिद्ध नहीं है। सिद्ध न होने से, न्यायसूत्र 1/2/8 के अनुसार यह साध्यसम हेत्वाभास है।

हमारा पक्ष * -- *एक आत्मा में दूसरी आत्मा प्रवेश कर सकती है।

वैधर्म्य से पंचावयव ----

*एक आत्मा में दूसरी आत्मा प्रवेश कर सकती है। परमाणुरहित होने से। जो जो वस्तु परमाणुरूप होती है, वह वह एक दूसरे में प्रवेश नहीं कर सकती है। जैसे एक कार में दूसरी कार प्रवेश नहीं कर सकती। जैसे दो कारें परमाणुरूप हैं, ऐसे दो आत्माएँ परमाणुरूप नहीं हैं। इसलिए परमाणुरहित होने से, एक आत्मा दूसरी आत्मा में प्रवेश कर सकती है।

व्याख्या -- जो कार आदि पदार्थ हैं, वे एक दूसरे में प्रवेश नहीं कर पाते। क्योंकि वे परमाणुरूप हैं, स्थान घेरते हैं, टकराते हैं, इसलिये वे एक दूसरे को रोकते हैं। जबकि दो आत्माएँ परमाणुरहित होने से एक दूसरे में प्रवेश कर सकती हैं, एक दूसरे में से आर-पार हो सकती हैं। कोई भी आत्मा, किसी दूसरी आत्मा को रोकती नहीं है। इसलिए आत्माओं के परस्पर एक दूसरे में प्रवेश

करने में कोई भी बाधा नहीं है। इसी प्रकार से ईश्वर भी परमाणु रहित है। आत्माएँ ईश्वर के अंदर भी सब जगह घूमती रहती हैं। या ईश्वर में इधर-उधर प्रवेश करती रहती हैं।

पूर्वपक्ष -- आपने कहा, आत्मा ईश्वर में प्रवेश कर जाती है। हम यह जानना चाहते हैं कि, आत्मा, ईश्वर में प्रवेश कर जाती है? या ईश्वर, आत्मा में प्रवेश कर जाता है? सत्यार्थ प्रकाश में तो ऐसा लिखा है कि , "आत्मा स्थूल और ईश्वर सूक्ष्म है। वह सूक्ष्म होने से, स्थूल आत्मा में प्रवेश कर जाता है।"

उत्तरपक्ष -- ये दोनों बातें सत्य हैं। ईश्वर व्यापक होने से आत्मा के अन्दर भी है और बाहर भी है। इसलिये हम दोनों बातें कह सकते हैं कि "आत्मा ईश्वर में प्रवेश कर जाती है, और ईश्वर आत्मा में प्रवेश कर जाता है, अर्थात दोनों एक ही स्थान पर रहते हैं। वे दोनों एक दूसरे में पहले से ही प्रविष्ट हैं। क्योंकि दोनों परमाणुरहित हैं, इसलिए कोई किसी को रोकता नहीं है।"

अब रही बात इतनी, कि आत्मा स्थूल है, और ईश्वर सूक्ष्म है। स्थूल में सूक्ष्म का प्रवेश हो जाता है। इसलिए ईश्वर सूक्ष्म होने से, स्थूल आत्मा में प्रवेश कर जाता है।

इस बात को लेकर पूर्वपक्षी लोग यह कहते हैं कि जब आत्मा स्थूल है, तो स्थूल होने से वह स्थान घेरती है। जैसे लोहा आदि पदार्थ स्थूल होने से स्थान घेरते हैं। तो पूर्व पक्षियों का यह कथन भी ठीक नहीं है।

क्योंकि लोहा आदि पदार्थ तो परमाणु रूप हैं, अर्थात् परमाणुओं से बने हैं। इसलिए वे स्थान घेरते हैं। आत्मा तो परमाणुरहित है, वह स्थान क्यों घेरेगी? परमाणु रहित वस्तु स्थान नहीं घेरती, यह बात हम पहले सिद्ध कर भी चुके हैं। जैसे ईश्वर परमाणु रहित है, वह भी स्थान नहीं घेरता।

ईश्वर के अतिरिक्त दिशा काल और आकाश भी परमाणु रहित पदार्थ हैं, वे भी स्थान नहीं घेरते, और सभी एक साथ ही रहते हैं।

दूसरी बात -- आप वहाँ आत्मा स्थूल है, कहकर, स्थूल शब्द से तो "स्थान घेरने वाला" अर्थ का ग्रहण करें; और ईश्वर सूक्ष्म है, यह कहकर, सूक्ष्म शब्द से "स्थान न घेरने वाला" अर्थ करें, यह तो न्याय नहीं हुआ। क्योंकि एक ही पंक्ति में दो पदार्थों की तुलना करते हुए, दो प्रतिपक्षी शब्दों = स्थूल और सूक्ष्म का भिन्न भिन्न मापदंड से अर्थ लेना अनुचित है। और शास्त्रीय परंपरा के विरुद्ध भी है।

{जब दो पदार्थों के भार की, दो प्रतिपक्षी शब्दों (भारी और हल्का) से तुलना की जाती है, तो एक ही मापदंड (भार) से तुलना होती है। तब यही कहा जाता है, कि "तरबूज 4 किलो का है, और नींबू 50 ग्राम का है।" यह तुलना तो ठीक है। परन्तु ऐसी तुलना नहीं की जाती, कि "तरबूज 4 किलो का है, और नींबू 1 किलोमीटर दूर है।" क्योंकि इस दूसरे उदाहरण में तरबूज़ और नींबू के मापदंड (भार और दूरी) अलग-अलग हैं। इसलिए ऐसी तुलना नहीं हो सकती।}

ठीक इसी प्रकार से, जब स्थूल और सूक्ष्म, दो प्रतिपक्षी शब्दों से तुलना की जा रही है, तो तुलना में एक ही मापदंड से तुलना करना उचित है। अर्थात् स्थूल व सूक्ष्म शब्दों से, या तो दोनों = ईश्वर और आत्मा, को "स्थान घेरने वाला" मानो, या दोनों को "स्थान न घेरने वाला" मानो, तभी तो ठीक तुलना होगी!

यदि आप ईश्वर को "स्थान घेरने वाला" मानने को तैयार नहीं हैं, परमाणुरहित होने से। तो आत्मा को भी "स्थान घेरने वाला" नहीं कह सकते, परमाणुरहित होने से। तब दोनों के लिए स्थूल और सूक्ष्म शब्दों का अर्थ बदलना होगा, क्योंकि दोनों ही परमाणुरहित हैं, निराकार हैं, स्थान नहीं घेरते।

पूर्वपक्ष - यदि जीव और ईश्वर दोनों को परमाणुरहित, "स्थान न घेरने वाला" माना जाए तो, फिर वे व्याप्य व्यापक संबंध से कैसे रहेंगे?

उत्तरपक्ष - जैसे ब्रह्मांड से बाहर शून्य अवकाश में, ईश्वर रहता है। वहां ईश्वर व्यापक है, और शून्य अवकाश व्याप्य है। ईश्वर भी परमाणुरहित है, और वह अवकाश भी परमाणुरहित है, दोनों में से कोई भी स्थान नहीं घेरता।

जब "स्थान न घेरने वाला" ईश्वर, "स्थान न घेरने वाले" अवकाश के साथ ब्रह्मांड से बाहर, व्याप्य व्यापक संबंध से रह सकता है। तो इसी प्रकार से "स्थान न घेरने वाला" ईश्वर, "स्थान न घेरने वाले" आत्मा के साथ व्याप्य व्यापक संबंध से ब्रह्मांड के अन्दर क्यों नहीं रह सकता? इसके लिए आत्मा को स्थूल कहकर "स्थान घेरने वाला" मानने की कोई आवश्यकता नहीं है।

पूर्वपक्ष -- ऐसी स्थिति में आत्मा को स्थूल और ईश्वर को सूक्ष्म कहने का क्या तात्पर्य होगा?

उत्तरपक्ष -- इन शब्दों के दो तात्पर्य बनेंगे।

एक तो इस प्रसंग से संबंधित है। और दूसरा किसी अन्य प्रसंग में उपयोगी होगा।

इस प्रसंग से संबंधित पहला तात्पर्य --> जो पदार्थ सूक्ष्म होता है वह स्थूल पदार्थ के अंदर प्रवेश कर जाता है, या रह सकता है। इसका एक लौकिक उदाहरण महर्षि दयानंद जी ने सत्यार्थ प्रकाश के सातवें समुल्लास में दिया है। जैसे कि अग्नि सूक्ष्म है, और लोहा स्थूल है। सूक्ष्म अग्नि, स्थूल लोहे में प्रवेश कर जाती है। ये दोनों तो साकार पदार्थ हैं। परंतु हम इस उदाहरण में से आकार गुण को नहीं लेना चाहते, (क्योंकि ईश्वर एवं आत्मा दोनों निराकार हैं), हम केवल सूक्ष्म तथा स्थूल शब्द से इतना अर्थ लेना चाहते हैं कि सूक्ष्म पदार्थ वह होता है जो स्थूल पदार्थ के अंदर प्रवेश कर जावे, या स्थूल पदार्थ के अंदर रहता हो, जैसे अग्नि, लोहे में रहती है। अब साध्य विषय को देखिये। ईश्वर, आत्मा के अंदर रहता है, तो इससे सिद्ध हुआ कि ईश्वर सूक्ष्म है। और आत्मा ईश्वर के बाहर होने से स्थूल है। इस प्रकार से दोनों व्याप्य व्यापक संबंध से रहते हैं।

((एक अन्य प्रसंग में, स्थूल और सूक्ष्म शब्दों का दूसरा अभिप्राय इस प्रकार से होगा --> शास्त्रों में शब्दों का अर्थ करते समय एक परंपरा चलती है कि जहाँ किसी शब्द का मुख्य अर्थ लागू न होता हो, तो वहां गौण अर्थ लागू किया जाता है। जैसे - किसी ने कहा - "आज बरसात होगी।" इसका मुख्य अर्थ है - बादल से पानी बरसेगा। और यदि बड़ा भाई अपने छोटे भाई से कहे, कि "बच्चू आज तू घर तो चल, देखना, आज बरसात होगी।"

इस बड़े भाई के कथन में बरसात शब्द का मुख्य अर्थ, पानी बरसना, लागू नहीं हो रहा। तो यहां अर्थ बदलना पड़ेगा, और यह अर्थ करना होगा कि "आज जूते चप्पल की बरसात होगी. अर्थात् आज तुम्हारी पिटाई होगी।"

इस प्रक्रिया को शास्त्रों में अभिधावृत्ति और लक्षणावृत्ति के नाम से कहा जाता है। अर्थात शब्द का मुख्य अर्थ लेना अभिधावृत्ति है। और जब वह लागू न हो, तब गौण अर्थ लेना लक्षणावृत्ति है। यही प्रक्रिया हमें ईश्वर और आत्मा के संबंध में स्थूल तथा सूक्ष्म शब्दों का अर्थ करते समय स्वीकार करनी पड़ेगी। क्योंकि, जैसे ठंडा-गर्म, ये शब्द 'स्पर्श' गुण के वाचक हैं। मीठा और खट्टा, ये शब्द 'रस' गुण के वाचक हैं। इसी प्रकार से, स्थूल और सूक्ष्म शब्द, मुख्य अर्थ में 'आकार' गुण के वाचक हैं।

अब यदि ईश्वर और आत्मा को मुख्य अर्थ में सूक्ष्म एवं स्थूल मानें, तो ये शब्द 'आकार' गुण के वाचक होने से, ईश्वर तथा आत्मा, ये दोनों पदार्थ साकार

मानने पड़ेंगे। और दोनों ही स्थान घेरेंगे। दोनों टकराएँगे। एक दूसरे को रोकेंगे। जो कि महर्षि दयानंद जी के सिद्धांत के विरुद्ध होगा। अतः आत्मा और ईश्वर पर, स्थूल एवं सूक्ष्म शब्दों का मुख्य अर्थ = 'आकार' लागू नहीं होता । इसलिए यहां गौण अर्थ करके स्थूल एवं सूक्ष्म शब्द का अर्थ बदलकर यह करना होगा, कि जो वस्तु समझने में सरल हो, उसे स्थूल कहेंगे, और जो वस्तु समझने में कठिन हो, उसे सूक्ष्म कहेंगे। इस प्रकार से, आत्मा को समझना, ईश्वर की अपेक्षा सरल है, इसलिए आत्मा को स्थूल कहेंगे। तथा ईश्वर को समझना, आत्मा की अपेक्षा कठिन है, इसलिये ईश्वर को सूक्ष्म कहेंगे।

स्थूल और सूक्ष्म शब्दों का यही अर्थ मानकर महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने सत्यार्थप्रकाश के 9वें समुल्लास में श्रवण चतुष्टय के प्रसंग में लिखा है। विशेष ब्रह्मविद्या के सुनने में अत्यंत ध्यान देना चाहिए कि यह सब विद्याओं में सूक्ष्म विद्या है।

अब यहां "सूक्ष्म विद्या", शब्द का अर्थ, "आकार में पतली विद्या" तो नहीं कर सकते। अथवा इसके विपरीत "स्थूल विद्या" का अर्थ "स्थान घेरने वाली विद्या" तो नहीं कर सकते। क्योंकि विद्या द्रव्य नहीं, बल्कि ज्ञान गुण है। जबकि पतले मोटे या सूक्ष्म स्थूल अथवा स्थान घेरने और न घेरने वाले तो द्रव्य होते हैं, गुण नहीं। जैसे सोना चांदी लोहा लकड़ी आदि द्रव्य।

इसलिये यहाँ पर "सूक्ष्म विद्या" शब्द का अर्थ "समझने में कठिन विद्या" करना होगा। इस से यह अभिप्राय निकलता है, कि ईश्वर को समझना अधिक कठिन है। इस अर्थ में ईश्वर सूक्ष्म है। तथा जीव को समझना, ईश्वर की तुलना में सरल है। इस अर्थ में जीव स्थूल है। आकार तो दोनों में से किसी में भी नहीं है। लोक व्यवहार में भी सरल विषय को स्थूल विषय या मोटी मोटी बातें इस नाम से कहा जाता है। और कठिन विषय को सूक्ष्म विषय या बारीक बातें इस नाम से कहा जाता है।))

निष्कर्ष -- इसलिए जीव को स्थूल शब्द से "स्थान घेरने वाला" बताना, और इस आधार पर यह कहना कि "एक आत्मा में दूसरी आत्मा प्रवेश नहीं कर सकती", असिद्ध और असंगत है। उक्त पंचावयव एवं तर्क प्रमाण आदि से यही सिद्ध हुआ कि "एक आत्मा में दूसरी आत्मा का प्रवेश सम्भव है।"

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

भाग 97

विषय -- आत्मा कर्म करने में स्वतंत्र है या परतंत्र है?

----

*पूर्वपक्ष * --

आत्मा कर्म करने में परतंत्र है ।*

हमारा पक्ष --

आत्मा कर्म करने में स्वतंत्र है ।*

यह वाक्य बहुत प्रसिद्ध है, कि आत्मा कर्म करने में स्वतंत्र है । बहुत से लोग इस वाक्य का प्रयोग करते हैं । परंतु इसका अर्थ गहराई से नहीं समझते, ठीक से नहीं समझते । मैं इस वाक्य के चार अर्थ प्रस्तुत करता हूं, आप विचार करें कि इन चारों में से कौन सा अर्थ सही है, और आपको स्वीकार है?

पहला -- आत्मा कर्म करने में स्वतंत्र है । वह अच्छा या बुरा कुछ भी कर्म करे, उस पर किसी का कोई बंधन कानून संविधान लागू नहीं होता । जैसे यज्ञ करना दान देना ईश्वर उपासना करना सेवा करना, झूठ बोलना चोरी करना हत्या करना डकैती करना लूट मार करना धोखा देना पक्षपात करना इत्यादि । आत्मा इन में से कुछ भी करे, न उसे कोई इनाम दिया जाएगा, और न ही कोई दंड ।

दूसरा -- आत्मा वेदोक्त विहित कर्मों को करने में स्वतंत्र है। विहित कर्म वे हैं, जिनको करने की छूट ईश्वर ने वेदों में दी है। जैसे यज्ञ करना दान देना ईश्वर उपासना करना सेवा करना दूसरों की सहायता करना खेती व्यापार करना आदि। आत्मा वेदोक्त निषिद्ध कर्मों को करने में स्वतंत्र नहीं है। निषिद्ध कर्म वे हैं, जिनको करने के लिए वेदों में ईश्वर ने मना किया है। जैसे झूठ बोलना चोरी करना लूटमार करना डकैती करना हत्याएं करना अपहरण करना इत्यादि। आत्मा वेदोक्त विहित कर्मों को कर सकता है, यह छूट है। परन्तु निषिद्ध कर्मों को करने ही नहीं दिया जाएगा। ईश्वर उसका हाथ पकड़ लेगा।

तीसरा -- वेदोक्त विहित कर्मों को करने की छूट है। ऐसे कर्म करने पर उसे पुरस्कार या सुख दिया जाएगा। वेदोक्त निषिद्ध कर्मों को करने की छूट नहीं है। फिर भी यदि जीव निषिद्ध कर्मों को करेगा, तो उसे करने तो दिया जाएगा, ईश्वर उसका हाथ नहीं पकड़ेगा। परंतु निषिद्ध कर्मों को करने पर उसे दंड अवश्य दिया जाएगा। फिर दंड में कोई माफी नहीं होगी।

चौथा -- ईश्वर ने आत्मा के लिए पूरे जीवन भर का कार्यक्रम निश्चित कर रखा है। उसे कब कहां क्या करना है, आत्मा उससे विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता। फिर भी वह अपनी इच्छा से कर्म करने में स्वतंत्र है।

इस प्रकार से उक्त वाक्य के ये चार अर्थ लोग स्वीकार करते हैं। हमारी दृष्टि में इनमें से संख्या 1, 2 और 4 वाला अर्थ गलत हैं। संख्या 3 वाला अर्थ सही है, और हम भी इसी अर्थ को मानते हैं।

पहले अर्थ की समीक्षा -- संसार में कहीं भी ऐसा देखने को नहीं मिलता, कि व्यक्ति अपनी मनमानी करे, और उस पर किसी भी परिवार संस्था समाज या देश का कोई भी कानून लागू न होता हो। अतः पहला अर्थ, न्याय दर्शन सूत्र 1/1/4 में बताए प्रत्यक्ष प्रमाण के विरुद्ध होने से झूठ है।

दूसरे अर्थ की समीक्षा -- दूसरा अर्थ भी न्याय दर्शन सूत्र 1/1/4 में बताए प्रत्यक्ष प्रमाण के विरुद्ध होने से झूठ है। क्योंकि ऐसा भी नहीं देखा जाता कि ईश्वर, आत्मा को झूठ छल कपट चोरी बेईमानी अन्याय अत्याचार इत्यादि बुरे काम करने से पूरी तरह से रोक देवे, उसका हाथ पकड़ लेवे, उसे ऐसे बुरे कर्म करने ही न देवे। आत्मा प्रतिदिन बुरे कर्म करता है, इस बात को आप अच्छी प्रकार से जानते हैं। इसलिए दूसरा अर्थ भी प्रत्यक्ष प्रमाण के विरुद्ध होने से झूठ है।

चौथे अर्थ की समीक्षा -- चौथे अर्थ में न्याय सूत्र 5 /2/ 24 के अनुसार अपसिद्धांत निग्रहस्थान है. अपने ही सिद्धांत का स्वयं विरोध करना, ऐसा चौथे अर्थ में स्पष्ट ही दिखाई दे रहा है। "एक ओर तो यह कहा जा रहा है कि, व्यक्ति का पूरे जीवन भर का कार्यक्रम ईश्वर ने निश्चित कर रखा है। और दूसरी ओर यह भी कहा जा रहा है, कि वह अपनी इच्छा से कर्म करता है।" इन दोनों सिद्धांतो में परस्पर विरोध है। यदि ईश्वर ने आत्मा का भविष्य और सारे कर्म निर्धारित कर रखें हैं, तो उस आत्मा को वही निर्धारित कर्म करने पड़ेंगे। तब आत्मा अपनी इच्छा के अनुसार कर्म नहीं कर पाएगा। और यदि आत्मा अपनी इच्छा अनुसार कर्म करने में स्वतंत्र है, ऐसा माना जाए, तो ईश्वर द्वारा निर्धारित करना

व्यर्थ है। क्योंकि आत्मा तो अपनी इच्छानुसार कर्म करेगा, ईश्वर की बात क्यों मानेगा? इसलिये यह अर्थ भी गलत है।

तीसरे अर्थ की समीक्षा -- यह अर्थ न्याय दर्शन सूत्र 1/1/4 में बताए प्रत्यक्ष प्रमाण के अनुकूल होने से सही है। क्योंकि इस पक्ष के अनुसार जीवात्मा अपनी इच्छानुसार अच्छे और बुरे सब प्रकार के कर्म करने में स्वतंत्र है। प्रतिदिन के व्यवहार में यही देखने में आता है, कि आत्मा अपनी इच्छा अनुसार यज्ञ करना दान देना ईश्वर उपासना करना खेती करना व्यापार करना आदि अच्छे तथा मिश्रित कर्म भी करता है। ईश्वर कोई भी कर्म, आत्मा से जबर्दस्ती नहीं कराता।

और झूठ बोलना चोरी करना हत्या करना डकैती करना लूट मार करना धोखा देना पक्षपात करना इत्यादि बुरे कर्म भी आत्मा अपनी इच्छा से करता है। इन बुरे कर्मों को करने में न तो ईश्वर, आत्मा के साथ जबरदस्ती करता, और न ही कभी भी कहीं भी उसका हाथ पकड़ता, जिससे कि वह बुरा कर्म कर ही न सके। यदि ईश्वर आत्मा को बुरे कर्म करने से रोक देता, उसका हाथ पकड़ लेता, तो संसार में एक भी पाप नहीं होता। ईश्वर न्यायकारी होने से, सबके साथ समान व्यवहार करता है। इसलिए यदि वह हाथ पकड़ता तो सभी का हाथ पकड़ लेता। तब ये चोरी डकैती हत्या अपहरण आरुषि हत्याकांड नीलम कांड तन्दूर कांड आदि एक भी पाप कर्म न हो पाता। परंतु ऐसे अपराध तो प्रतिदिन होते ही हैं। इसलिये ऐसा सोचना भी प्रत्यक्ष प्रमाण के विरुद्ध होने से झूठ है।

दूसरी बात -- इसी कारण से अर्थात कर्म करने में स्वतंत्र होने के कारण ही आत्मा इनाम और दंड का पात्र बनता है। यह न्याय का नियम है कि, जो स्वतंत्र होता है, उसी को अच्छे कर्म करने पर इनाम दिया जाता है. और बुरे कर्म करने पर दंड दिया जाता है. जो कर्म करने में पराधीन होता है, उसे न तो इनाम दे सकते, और न ही दंड। जैसे एक सैनिक ने देश की सीमा पर बंदूक से 5 आतंकवादी मार दिए। इस घटना के होने पर, बंदूक को कोई इनाम नहीं दिया जाता, पराधीन होने से। बल्कि सैनिक को दिया जाता है, क्योंकि वह कर्म करने में स्वतंत्र है।इसी प्रकार से एक आतंकवादी 5 निर्दोष नागरिकों को मार देता है। तब भी बंदूक को दंड नहीं दिया जाता, पराधीन होने से। बल्कि उस आतंकवादी को ही दंड दिया जाता है, क्योंकि वह कर्म करने में स्वतंत्र है।

अब इस बात को न्याय सूत्र 1/1/5 में कहे अनुमान प्रमाण के अंतर्गत परिशेष न्याय से समझने का प्रयत्न करेंगे। छह अनादि पदार्थों में से दिशा, काल और आकाश, ये तीन पदार्थ तो कुछ कर्म करते ही नहीं। ये तो निष्क्रिय हैं। इस प्रकार से कर्म करने की बात इन पर लागू नहीं होती। चौथा पदार्थ प्रकृति है। वह पराधीन है, जड़ होने से। इसलिए वह स्वयं कुछ नहीं करती। अब शेष रहे 2 पदार्थ, ईश्वर और आत्मा। ये दोनों कर्म करने में स्वतंत्र हैं, चेतन होने से।

ईश्वर चेतन है। वह कर्म करने में स्वतंत्र है। वह अपनी स्वतंत्रता से, अपनी इच्छा से प्रकृति को जगत रूप बना देता है, और उसको क्रियाशील करता रहता है। जैसे सूर्य पृथ्वी आदि जो जड़ पदार्थ गतिशील हैं, वे ईश्वर के आधीन हैं।

भाग 97

इसी प्रकार से आत्मा भी चेतन है। वह भी अपनी इच्छा से स्वतंत्रता से स्कूटर कार आदि जड़ वस्तुओं को गति देता है। और जो भी ऊपर बताए गए शुभ अशुभ कर्म हैं, उन्हें अपनी इच्छा से करता है। कर्म करते समय उस पर, ईश्वर का कोई दबाव नहीं है।

इस प्रकार से इन सारे प्रमाण व तर्कों से यही सिद्ध हुआ कि आत्मा कर्म करने में स्वतंत्र है। परंतु अपनी स्वतंत्रता से वह जैसा भी अच्छा या बुरा कर्म कर लेता है, फिर ईश्वर की व्यवस्था से फल भोगने में परतंत्र हो जाता है। अर्थात ईश्वर की फल व्यवस्था के आधीन हो जाता है। इसी फल भोगने की परतंत्रता के कारण ही, उसे बुरे कर्मों के फलस्वरूप न चाहते हुए भी पशु पक्षी वृक्ष वनस्पति कीड़ा मकोड़ा आदि योनियों में जाकर दंड एवं दुख भोगना पड़ता है। और जब आत्मा अच्छे कर्म करता है , तब ईश्वर अपने न्याय नियम के अनुसार उसे उत्तम मनुष्य योनि में जन्म देकर सुख देता है। और पूरे ही अच्छे कर्म करने पर ईश्वर उसे मोक्ष भी देता है। जहां उसकी सब इच्छाएं पूरी हो जाती हैं। वह सब दुखों से छूट कर ईश्वर के पूर्ण आनंद को भोगता है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

विषय -- आयु निश्चित है या अनिश्चित?

प्रश्न -- संसार में बहुत से लोग ऐसा मानते हैं कि मरने का दिन, समय, स्थान और साधन, ईश्वर ने हमारे जन्म के समय ही निर्धारित कर दिया था, कि कब कौन कहां कैसे मरेगा? हम जानना चाहते हैं कि क्या यह सत्य है?

उत्तर -- जी नहीं । आयुर्वेद आदि शास्त्रों के शब्द प्रमाण से, तथा तर्क से भी विरुद्ध होने से यह असत्य है ।

सत्य तो यह है कि, कभी भी कोई भी कहीं भी किसी भी प्रकार से दुर्घटनाग्रस्त हो सकता है, या मर भी सकता है.

प्रमाण 1- आयुर्वेद के ग्रंथ सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय 34, सूत्र 6 में लिखा है, कि

*एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते ।

तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषा आगन्तवः स्मृताः ।।

अर्थात् अथर्ववेद के अनुसार 101 प्रकार की मृत्यु होती है। जिनमें से केवल एक मृत्यु उचित काल में (सकाल= काल सहित = सही समय पर)

अर्थात स्वाभाविक मृत्यु होती है। शेष 100 प्रकार की मृत्यु आकस्मिक या अकाल (काल रहित= सही समय से पहले) मृत्यु कहलाती है।

स्वाभाविक मृत्यु का अभिप्राय है, जैसे दीपक में कुछ तेल था, दीपक जल रहा था, दीपक जलते जलते तेल समाप्त हो गया। तेल समाप्त होने पर दीपक स्वतः ही बुझ गया। यह दीपक की स्वाभाविक मृत्यु है। इसी प्रकार से, शरीर में भी कुछ शक्ति थी, मनुष्य जी रहा था। जीते जीते शरीर की शक्ति धीरे धीरे घटती जाती है। शरीर की शक्ति घटते घटते जब अत्यंत बुढ़ापे में (लगभग 70/80/90 वर्ष में) पूरी समाप्त हो जाती है, उस समय बैठे-बैठे चलते चलते या सोते हुए, शक्ति समाप्त हो जाने पर, आत्मा शरीर छोड़ देता है। यह शरीर की स्वाभाविक मृत्यु है.

परंतु आयुर्वेद के उक्त प्रमाण के अनुसार, इससे पूर्व 100 प्रकार से अकाल मृत्यु/दुर्घटनाजन्य मृत्यु कभी भी कहीं भी किसी की भी हो सकती है। स्वाभाविक मृत्यु (अत्यंत बुढ़ापे वाली/सकाल मृत्यु) तो ईश्वर के द्वारा निर्धारित की हुई है। यह पूर्व जन्म के कर्मों का फल है।परंतु 100 प्रकार से होने वाली अकाल मृत्यु ईश्वर द्वारा निर्धारित नहीं है। क्योंकि वह सब दुर्घटनाजन्य मृत्यु है।

दुर्घटना उसी को कहते हैं कि जो अचानक कुछ भी हो जाए। वह पहले से निर्धारित नहीं होती। जो पहले से निर्धारित होती है उसका नाम दुर्घटना नहीं, हत्या है। जैसे डाकू या आतंकवादी लोग योजनाबद्ध तरीके से हत्याएँ करते हैं।

यह जो 100 प्रकार की मृत्यु है, जो अचानक दुर्घटना से होती है । इसमें कहीं-कहीं आत्महत्या भी होती है। यद्यपि आत्महत्या सोच समझकर योजनाबद्ध ढंग से की जाती है। फिर भी वह एक प्रकार की दुर्घटना के अंतर्गत ही मानी जाती है। क्योंकि वह भी बुढ़ापे में होने वाली स्वाभाविक मृत्यु तो नहीं है।

(तो यहां दुर्घटना से तात्पर्य है जो अत्यंत बुढ़ापे में होने वाली स्वाभाविक मृत्यु के होने से पहले हुई मृत्यु। चाहे योजनाबद्ध तरीके से हो, चाहे अचानक से, यह तात्पर्य है।)

इस 100 प्रकार की दुर्घटना वाली मृत्यु के तीन बड़े बड़े कारण हैं ।

पहला कारण व्यक्ति स्वयं है। अनेक बार वह अपनी गलतियों से स्वयं मर जाता है।

दूसरा कारण अन्य प्राणी हैं। चोर डाकू आतंकवादी पशु पक्षी समुद्री जीव जंतु या जंगली पशु इत्यादि।

और तीसरा कारण प्राकृतिक दुर्घटनाएं हैं, जैसे आंधी तूफान बाढ़ भूकंप इत्यादि।

इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार से हैं।

कारण 1 -- अनेक दुर्घटनाओं में व्यक्ति स्वयं अपनी गलती के कारण से मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । जैसे, कोई नदी में कूद के मर गया। कोई कुएं में कूद गया। किसी ने जहर पी लिया। किसी ने बिजली का तार पकड़ लिया। किसी ने पिस्तौल से स्वयं को गोली मार ली इत्यादि। यह सब अकाल मृत्यु है । ईश्वर ने ऐसा नहीं कहा था, कि तुम्हें इस दिन इस तरह से जहर पीकर मरना है ,
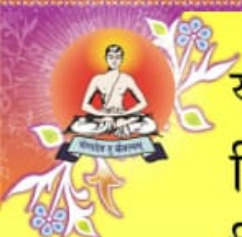
या नदी में कूद के मरना है। और न ही यह मृत्यु ईश्वर ने निर्धारित की थी। यदि यह आत्महत्या वाली मृत्यु ईश्वर ने निर्धारित की होती, तो आत्महत्या करने में कोई अपराध नहीं माना जाता। तब यह ईश्वर के आदेश का पालन माना जाता। ईश्वर के आदेश का पालन करना अपराध नहीं है। जबकि आत्महत्या को भी अपराध माना जाता है, इसलिए यह ईश्वर द्वारा निर्धारित नहीं है।

जैसे विद्यार्थी 3 घंटे तक परीक्षा में उत्तर लिखने में स्वतंत्र होता है, परीक्षक उसे सही या गलत, कुछ भी लिखने को बाध्य नहीं करता। इसी प्रकार से जीवन में व्यक्ति कर्म करने में स्वतंत्र है। ईश्वर भी उसे किसी भी अच्छे या बुरे कर्म करने के लिए बाध्य नहीं करता । इसलिए वह कर्म करने में स्वतंत्र कहलाता है। अपनी स्वतंत्रता से वह अच्छे काम भी करता है और बुरे काम भी करता है।इसी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करते हुए, अपनी मूर्खता से, वह अनेक बार ऐसी गलतियां कर जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि वह स्वयं ही, स्वयं को मार देता है। क्योंकि अभी उसकी स्वाभाविक मृत्यु का समय नहीं आया था , और उसने स्वयं ही, स्वयं को मार दिया, इसलिए इसे अकाल मृत्यु कहते हैं।

यद्यपि आत्महत्या करना ईश्वरीय संविधान में भी अपराध है, और राष्ट्रीय संविधान में भी। इसलिए आत्महत्या कभी नहीं करनी चाहिए। इसका आगे चलकर दंड ही मिलता है। यदि किसी की कोई समस्या हो, तो वह अपने माता-पिता को बताए, गुरुजनों को बताए, मित्रों को बताए, सरकार को बताए, पुलिस को बताए, न्यायालय को बताए, कहीं न कहीं से उसे समाधान मिलेगा। तो समस्या का समाधान ढूंढना चाहिए। आत्महत्या करना कोई

समस्या का समाधान नहीं है। इससे तो समस्या और बढ़ेगी। क्योंकि आत्महत्या करते समय यदि मर गए, तो अगले जन्म में ईश्वर दंड देगा। और यदि आत्महत्या में बच गए, तो सरकार दंड देगी।

कारण 2 -- कभी कोई व्यक्ति ट्रक दुर्घटना में मारा गया, कोई विमान दुर्घटना में मारा गया, कोई डाकू या आतंकवादी की गोली से मारा गया, कोई रेल दुर्घटना में मारा गया इत्यादि। ऐसी अनेक दुर्घटनाएं होती हैं । इन दुर्घटनाओं में मरने पर प्रायः लोग कहते हैं, कि इस व्यक्ति की मृत्यु तो ईश्वर ने यहीं पर होनी लिखी थी। इसे तो आज के दिन सुबह 10:00 बजे इसी ट्रक के नीचे यहीं मरना था। ऐसा आपने भी सुना होगा। परंतु ऐसी बातें झूठ हैं। क्योंकि ऐसी बातें कहने वाले लोग न तो वेदों के विद्वान हैं, न वे दार्शनिक हैं। न उनकी बात में कोई प्रमाण है। ऐसे ही इधर-उधर की सुनी सुनाई बातें कहते रहते हैं। इसलिए ऐसी बातें झूठ हैं। इस झूठ को समझने के लिए मैं एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूं।

मान लेते हैं , 21 जनवरी को 30 वर्ष का एक युवक हरीश चंद्र सुबह 10:00 बजे मोटरसाइकिल पर किसी हाईवे पर जा रहा था। सुबह 10:15 बजे उसके पीछे से एक ट्रक आया। ट्रक ड्राइवर ने कुछ शराब भी पी रखी थी। उसका संतुलन खो जाने से उसने हरिश्चंद्र को ट्रक से टक्कर मारी। उस दुर्घटना के होने पर हरिश्चंद्र की वहीं मृत्यु हो गई।

ऐसी घटना होने पर लोग कहते हैं कि हरिश्चंद्र की मृत्यु ईश्वर ने यहीं पर होनी लिखी थी। ऐसे लोगों से मेरा प्रश्न है, कि यदि ईश्वर ने ही इसकी मृत्यु

लिखी थी, तो इसका अर्थ हुआ कि, ट्रक ड्राइवर ने ईश्वर के आदेश का पालन किया। यदि ड्राइवर ने ईश्वर के आदेश का पालन किया, तो वेदादि शास्त्रों के अनुसार, ईश्वर के आदेश का पालन करना धर्म है। धर्म का फल इनाम या सुख है। तो क्या आप ट्रक ड्राइवर को इनाम या सुख देंगे? यदि आप उसे इनाम या सुख देवें, तो मैं मानने को तैयार हूं, कि ईश्वर ने हरिश्चंद्र की मृत्यु ट्रक के नीचे होनी लिखी थी।

यदि आप ड्राइवर को इनाम या सुख नहीं देते, बल्कि उस पर मुकदमा करके दंड दिलाते हैं, तो इसका अर्थ हुआ कि आपकी बात झूठ है। अर्थात वह ईश्वर द्वारा लिखी हुई मृत्यु नहीं थी। ड्राइवर ने अपनी लापरवाही से हरिश्चंद्र को दुर्घटना से मार दिया। इस स्थिति में ड्राइवर अपराधी बनता है। और अपराध सिद्ध होने पर ही उसे दंडित किया जा सकता है। तो ड्राइवर की लापरवाही से असमय हरिश्चंद्र की मृत्यु हुई। अत्यंत बुढ़ापे से पूर्व होने के कारण, यह अकाल मृत्यु कहलाती है।

(और यह अकाल मृत्यु, हरिश्चंद्र की ही नहीं,किसी की भी, कभी भी, कहीं भी हो सकती है। हरीशचंद्र तो केवल मात्र एक उदाहरण है। चाहे रेल दुर्घटना हो, चाहे विमान दुर्घटना हो, चाहे बस दुर्घटना हो, चाहे आतंकवादी दुर्घटना हो, उसमें किसी की भी मृत्यु हो सकती है। वह सब की सब अकाल मृत्यु है।)

प्रश्न -- हरिश्चंद्र निर्दोष होते हुए भी ट्रक दुर्घटना में मारा गया। मान लिया कि यह उसके साथ अन्याय हुआ। ट्रक ड्राइवर ने हरिश्चंद्र के साथ अन्याय किया। अब इन दोनों को न्याय मिलेगा या नहीं?

उत्तर -- जी हां। न्याय मिलेगा। यदि सरकार ट्रक ड्राइवर को पकड़ कर दंडित कर देगी, तब, तो ड्राइवर को दंड मिल जाएगा। और हरिश्चंद्र के परिवार को सरकार, क्षतिपूर्ति के रूप में कुछ राशि देवे, तो परिवार की तो कुछ क्षतिपूर्ति हो जाएगी। परंतु हरिश्चंद्र को सरकार कुछ नहीं दे सकती। वह तो संसार छोड़कर चला ही गया। अब हरिश्चंद्र को तो अगले जन्म में ईश्वर ही उसके नुकसान की पूर्ति करेगा। इस प्रकार से हरिश्चंद्र के साथ न्याय हो जाएगा । और यदि ट्रक ड्राइवर को सरकार ने दंड नहीं दिया अथवा रिश्वत देकर वह छूट गया, तो अगले जन्म में ईश्वर ट्रक ड्राइवर को दंड देगा। और इस प्रकार से ईश्वर उसका भी न्याय कर देगा।

(आप लोग इस कर्मफल व्यवस्था को नहीं जानते, शास्त्रों को पढ़ते नहीं, इसलिए बहुत से लोग शायद इस बात की खिल्ली भी उड़ाएँगे। कोई बात नहीं । मुझे उसकी चिंता नहीं है। मुझे तो सत्य बताना है, उस सत्य को कौन कितना समझेगा और कितना स्वीकार करेगा, यह तो उसकी स्वतंत्रता है। जो व्यक्ति जिस विद्या को नहीं जानता, प्रायः वह उसकी खिल्ली उड़ाता ही है। इसलिए मेरा आपसे निवेदन है कि सत्य की खिल्ली ना उठाएं। बल्कि शास्त्रों को पढ़ें । बुद्धिमत्ता से न्याय पूर्वक चिंतन करें, ताकि आपको सत्य समझ में आए , और आप खिल्ली उड़ाने के अपराध से बच सकें। यदि आप इन बातों को समझने की कोशिश नहीं करेंगे, और इन सत्य बातों की खिल्ली उड़ाएंगे, तो ईश्वर आपका भी ठीक ठीक न्याय कर देगा।)
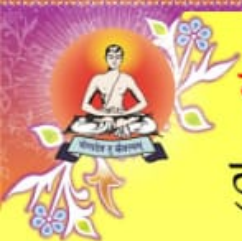
कारण 3 -- कभी-कभी संसार में कुछ प्राकृतिक दुर्घटनाएं भी होती रहती हैं। कभी तूफान आ जाता है, चक्रवात आ जाता है, भूकंप आ जाता है, कहीं बहुत गर्मी पड़ती है, कहीं बहुत ठंड पड़ती है, कहीं बहुत वर्षा के कारण बाढ़ आ जाती है, इत्यादि प्राकृतिक दुर्घटनाएं भी समय-समय पर होती रहती हैं। बहुत से मनुष्य और पशु पक्षी भी इन दुर्घटनाओं की लपेट में आ जाते हैं, उन को चोट भी लगती है और अनेक प्राणियों की मृत्यु भी होती है। यह भी दुर्घटनाजन्य मृत्यु है। यह भी ईश्वर द्वारा पूर्व से निर्धारित नहीं है। क्योंकि यह भी बुढ़ापे से पहले ही हुई है, अतः इसे भी अकाल मृत्यु ही कहेंगे।

आयुर्वेद में इसे भी अकाल मृत्यु ही कहा है। तो इस प्रकार से हम देखते हैं 100 प्रकार की मृत्यु, अकाल मृत्यु है। यह तीन कारणों से होती है। अत्यंत बुढ़ापे से पूर्व होती है ।इन 100में से कोई भी पूर्व निर्धारित मृत्यु नहीं है।

शिक्षा -- तो हमारा काम है सावधान रहना। इन दुर्घटनाओं से बचना। आपने सड़कों पर लिखा देखा होगा सावधानी हटी, और दुर्घटना घटी. दुर्घटना से देर भली, तेज गति का मजा, मृत्यु की सजा. इत्यादि अनेक प्रकार के स्लोगन आपने सड़कों के किनारे पर लिखे हुए देखे होंगे। ये सारे सूचना पट्ट हमें सावधान कर रहे हैं, कि यदि हम लापरवाही करेंगे, तो शीघ्र ही मारे जाएंगे। इसलिए लापरवाही न करें . अपनी सुरक्षा अपने हाथ.

आयु को बढ़ाना - आपके हाथ में है। जिससे यह सिद्ध होता है कि मृत्यु का दिन समय स्थान और साधन कुछ भी निश्चित नहीं है।

प्रश्न - क्या आयु को बढ़ाया और घटाया भी जा सकता है?

उत्तर - जी हां, आयुर्वेद आयु के बढ़ने और घटने के कारण भी बताता है। आयु बढ़ाने के कारण -- रात को जल्दी सोना, सुबह जल्दी उठना, व्यायाम करना, ठीक प्रकार से शौच मंजन दातुन स्नानादि करना, ईश्वर का ध्यान करना, यज्ञ करना, वैदिक ग्रंथों का स्वाध्याय करना, शाकाहारी भोजन खाना, सत्य बोलना, दूसरों की सहायता करना, गरीब रोगी विकलांग कमजोर व्यक्तियों की मदद करना, शुभ कर्मों में दान देना इत्यादि। इन शुभ कर्मों के करने से आयु बढ़ती है।

आयु घटाने के कारण -- रात को देर तक जागना, सुबह देर तक सोते रहना, ठीक प्रकार से दातुन मंजन स्नानादि न करना, आलस्य प्रमाद करना, व्यायाम नहीं करना, अंडे मांस खाना, शराब पीना, गुटका मसाला तंबाकू भांग सुल्फा गांजा आदि नशीली वस्तुओं का सेवन करना, झूठ बोलना, चोरी करना, धोखा देना, अन्याय करना, इत्यादि पाप कर्मों का आचरण करने से आयु घटती है।

एक उदाहरण -- मान लेते हैं। दीप कमल को पूर्व जन्म के कर्मों से 80 वर्ष की आयु रूप फल मिला। अब इस जन्म में दीपकमल ने ऊपर बताए शुभ कर्मों का आचरण किया। ऐसा करने से उसकी 20 वर्ष आयु बढ़ गई। अब वह 100 वर्ष की आयु में शरीर का त्याग करेगा। इस प्रकार से उसकी जो 20 वर्ष आयु बढ़ गई, यह आयु इस जन्म के कर्मों से बढ़ी।
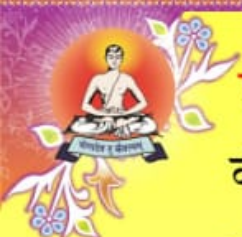
एक दूसरा उदाहरण -- रूपेशकुमार को भी दीपकमल की तरह से 80 वर्ष की आयु पूर्व जन्म के कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त हुई। परंतु उसने ऊपर बताए अशुभ कर्मों का आचरण किया। उसकी आयु 20 वर्ष घटकर 60 वर्ष ही रह गई। उसकी मृत्यु 60 वर्ष में ही हो जाएगी। इस प्रकार से आयु घट भी सकती है।

यह जो दीपकमल की 20 वर्ष आयु बढ़ी, और रूपेशकुमार की 20 वर्ष आयु घट गई, वह इस जन्म के शुभ और अशुभ कर्मों का फल है। इस प्रकार से आयु बढ़ती भी है, और घटती भी है। आप भी कर्म करने में स्वतंत्र हैं। यदि आप चाहें तो दीपकमल के समान शुभ कर्मों का आचरण करें, और अपनी आयु को इस जन्म के नए कर्मों से बढ़ा लेवें। तथा यदि चाहें तो रूपेशकुमार के समान अशुभ कर्म करें, और इस जन्म के नए कर्मों से अपनी आयु को घटा लेवें।

मैं आप सबसे विनम्र निवेदन करता हूं कि आप शुभ कर्मों का आचरण करें और अपनी आयु को बढ़ाएं। सदा स्वस्थ और सुखी रहें। आप सबका शुभचिंतक ---

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,
रोजड़, गुजरात।

विषय -- ईश्वर अन्यायकारी है या न्यायकारी।

पूर्वपक्ष --

ईश्वर अन्यायकारी है।

हमारा पक्ष -- ईश्वर न्यायकारी है।

संसार में अनेक अच्छी बुरी घटनाएं प्रतिदिन होती रहती हैं। किसी का बेटा परीक्षा में फेल हो गया। कोई व्यक्ति मुकदमा हार गया। किसी का एक्सीडेंट हो गया इत्यादि। जब कुछ ऐसी दुर्घटनाएं होती हैं, तब अनेक व्यक्ति सत्य को न जानने के कारण भ्रांति से, या स्वार्थ से ईश्वर पर झूठे आरोप लगाते हैं। ऐसी बातों को सुनकर सामान्य लोगों के मन में यह संशय उत्पन्न हो जाता है कि, "ईश्वर पूर्ण न्यायकारी है या नहीं?" अथवा उन्हें यह भ्रांति उत्पन्न हो जाती है, कि "ईश्वर वैसे तो न्यायकारी है। परंतु कभी-कभी वह अन्याय भी कर देता है।" इस प्रकार से झूठ का प्रचार देश विदेश में होता जाता है। परंतु हमें इस बात का भी निर्णय करना है, कि "यह ईश्वर पर झूठा आरोप है अथवा वास्तव में ईश्वर अन्यायकारी है।

"पूर्वपक्ष --

ईश्वर अन्यायकारी है। ट्रक दुर्घटना में हमारा बेटा मार दिया। हमें मुकदमा हरवा दिया। हमारे व्यापार में नुकसान कर दिया। हमारे बेटे को परीक्षा में फेल कर दिया इत्यादि।

इसका खण्डन --

ट्रक दुर्घटना में जिसका बेटा मारा गया, उस ट्रक को ईश्वर ने नहीं चलाया था, किसी मनुष्य ड्राइवर ने चलाया था। यह ड्राइवर द्वारा किया गया अन्याय है। यह अन्याय ईश्वर ने नहीं किया। अतः यह ईश्वर पर लगाया गया झूठा आरोप है।

यदि कोई व्यक्ति मुकदमा हार गया, तो वह अपने पक्ष की कमजोरी अथवा वकील की कमजोरी के कारण हारा। इसमें भी ईश्वर दोषी नहीं है।

किसी को व्यापार में हानि हो गई, तो उसमें भी मनुष्यों का दोष है। दुकानदार को दुकान ठीक से चलानी नहीं आती इत्यादि कारणों से उसको व्यापार में हानि हुई। इसमें भी ईश्वर दोषी नहीं है।

किसी का बेटा परीक्षा में फेल हुआ, तो ठीक से पढ़ाई न करने से, और परीक्षा में अपने आलस्य प्रमाद लापरवाही आदि दोषों के कारण से फेल हुआ। इसमें भी ईश्वर ने कोई अन्याय नहीं किया। ये सब ईश्वर पर लगाए गए झूठे आरोप हैं।

हमारा पक्ष --

"ईश्वर पूर्ण न्यायकारी है", हम इस विषय को न्याय सूत्र 1/1/5 में कहे अनुमान प्रमाण के अंतर्गत परिशेष न्याय के द्वारा सिद्ध करेंगे।

संसार में कम अधिक सुख-दुख की व्यवस्था, एवं ऊंचे नीचे प्राणियों की जीवन व्यवस्था को देखकर यह पता चलता है, कि *कोई न कोई तो है, जो इस व्यवस्था को चला रहा है। वह संसार को उत्पन्न करता है, इसका पालन करता है, सबके कर्मों का ठीक ठीक न्याय से फल देता है। अब यह जानना है, कि वह कौन है?

संसार में वेदों के अनुसार कुल मिलाकर 6 पदार्थ अनादि हैं। ईश्वर, आत्मा, प्रकृति, दिशा, काल और आकाश।* इन में से दो पदार्थ चेतन हैं, ईश्वर और आत्मा।

प्रकृति जड़ वस्तु है, उसमें तीन प्रकार के परमाणु हैं, जिनके नाम सत्त्व रज और तम हैं। शेष तीन पदार्थ दिशा काल और आकाश ये भी जड़ हैं। ये सर्वव्यापक निराकार एवं परमाणु रहित द्रव्य हैं। इन 6 पदार्थों में से हमें यह निर्णय करना है, कि पूर्ण न्यायकारी कौन है? हम बारी-बारी से सब का परीक्षण करेंगे।

न्यायकारी होने के लिए कम से कम पहली शर्त यह है, कि न्याय करनेवाला पदार्थ चेतन होना चाहिए। क्योंकि चेतन वस्तु ही देख सुन समझ सकती है। वही न्याय अन्याय को जानती है, और न्याय अन्याय कर भी सकती है। जो जड़ पदार्थ है। वह देखता सुनता समझता नहीं। तो वह कोई विचार, निर्णय आदि नहीं कर सकता। और न ही किसी पर न्याय/अन्याय कर सकता। अतः जड़ होने से, 6 में से 4 पदार्थ (प्रकृति, दिशा, काल और आकाश) का तो परीक्षण हो गया, कि ये किसी पर न्याय/अन्याय नहीं कर सकते।

अब बच गए 2 पदार्थ, आत्मा और ईश्वर। ये दोनों चेतन हैं। ये दोनों देखते सुनते समझते हैं। और अपनी अपनी क्षमता के अनुसार न्याय भी करते हैं। अब इनमें से आत्मा का

परीक्षण करें। आत्मा बहुत छोटा अल्पज्ञ एकदेशी और अल्पशक्तिमान है। इसलिए यह संसार की सारी घटनाओं को देख नहीं सकता, जान नहीं सकता। ठीक-ठीक न्याय करना नहीं जानता। और अल्पशक्तिमान होने के कारण यह पूर्ण न्याय कर भी नहीं सकता। तो इसका भी निर्णय हो गया, कि जीवात्मा भी पूर्ण न्यायकारी नहीं हो सकता। कहीं न कहीं अल्पज्ञता अल्पशक्तिमत्ता स्वार्थ लोभ क्रोध अविद्या आदि दोषों के कारण, वह कम या अधिक मात्रा में अन्याय कर ही बैठता है।

अब अंत में 6 में से 1 ही पदार्थ बचा ईश्वर। जो बच गया, वही परिशेष है। अतः परिशेष न्याय से यह बात सिद्ध हुई, कि ईश्वर ही पूर्ण न्यायकारी है। क्योंकि वह सर्वव्यापक सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान और पूर्ण न्यायकारी है।

इस बात की पुष्टि वेदों के शब्द प्रमाण से भी हो जाती है कि ईश्वर ही संसार को उत्पन्न करता है, इसका पालन करता है, सबके कर्मों का ठीक ठीक न्याय से फल देता है। उसकी कर्मफल व्यवस्था में कोई कमी नहीं है। न वहाँ रिश्वत चलती है, और न ही सिफारिश। कर्ता को अपने किए कर्म का फल

यथावत प्राप्त होता है। वह सर्वव्यापक सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान और पूर्ण न्यायकारी है। ये सब कार्य करने वाला ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं है।

वेदों के शब्द प्रमाण इस प्रकार से हैं।

1- इयं विसृष्टिर्यत आबभूव...... । यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्... ।। ऋग्वेद 10/129/7.

2- हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।। ऋग्वेद 10/129/1.

3- *यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत् सत्यमंगिरः ।।* ऋग्वेद 1/1/6.

4- न किल्विषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममममान एति। अनूनं पात्रं निहितं न एतत्पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ।। अथर्ववेद 12/3/48.

एक तर्क भी -- इस विषय में एक तर्क यह भी है। संसार में यह नियम देखा जाता है, कि बुद्धिमान लोग न्यायकारी व्यक्ति का ही सम्मान करते हैं, अन्यायकारी का नहीं.

इतिहास में आपको ऐसे हजारों प्रमाण मिल जाएंगे। बुद्धिमान लोग श्रीराम जी का सम्मान करते हैं, रावण का

नहीं। श्रीकृष्ण जी का सम्मान करते हैं, कंस का नहीं। इससे भी यह सिद्ध होता है कि यदि ईश्वर अन्यायकारी होता, तो संसार के करोड़ों व्यक्ति उसका सम्मान नहीं करते। जब कि हम देखते हैं, संसार में प्रतिदिन करोड़ों व्यक्ति ईश्वर का सम्मान करते हैं। उसकी पूजा उपासना भक्ति प्रार्थना आदि अपने अपने ढंग से करते हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि ईश्वर न्यायकारी है।

प्रश्न -- कुछ लोग नास्तिक भी तो हैं। वे लोग पहले तो ईश्वर को मानते ही नहीं। यदि कभी किसी परिस्थिति में मान भी लेते हैं, तो वे ईश्वर को अन्यायकारी कहते हैं। वे ईश्वर का सम्मान क्यों नहीं करते।

उत्तर -- जो लोग नास्तिक हैं, वे अपनी भ्रांति और स्वार्थ के कारण, ईश्वर पर अन्यायकारी होने के झूठे आरोप लगाते हैं। क्योंकि ये लोग न तो वेद आदि शास्त्रों को गंभीरता से पढ़ते, और न ही सृष्टि उत्पत्ति तथा सृष्टि में चल रही कर्मफल व्यवस्था पर निष्पक्ष भाव से चिंतन करते। जैसे साम्यवादी और वैज्ञानिक लोग।

निष्कर्ष -- इस प्रकार से न्याय दर्शन के आधार पर परिशेष न्याय, शब्द प्रमाण और तर्क आदि से यह सिद्ध हुआ कि ईश्वर पूर्ण न्यायकारी है।

सूचना -- इस लेख में पूर्वपक्षी के कथन में, न्याय दर्शन में बताई 54 गलतियों में से 2 गलतियां हैं। एक तो, न्यायसूत्र 5/2/12 के अनुसार न्यून नामक निग्रहस्थान है। पूर्वपक्षी ने केवल प्रतिज्ञा मात्र की है, कोई प्रमाण तर्क हेतु दृष्टान्त आदि कुछ भी प्रस्तुत नहीं किया।

और दूसरी गलती, उसने जो भी कहा, वेदों और ऋषियों के सिद्धांतों को ठीक से समझे बिना, उनके विरुद्ध कहा। इसलिए यह अज्ञान नामक निग्रहस्थान भी है। इसका उल्लेख न्यायसूत्र 5/2/18 में है।

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,

रोजड़, गुजरात।

सत्य की खोज कैसे करें?

(महर्षि गौतम कृत न्याय दर्शन के आधार पर)

उपसंहार -- आपने समझने का प्रयत्न किया होगा, कि महर्षि गौतम जी एवं महर्षि वात्स्यायन जी ने कितनी बुद्धिमत्ता से हमें 54 प्रकार की बहुत सूक्ष्म गलतियों का ज्ञान कराया। अब आप सबका यह कर्तव्य बनता है, कि आप इन 54 प्रकार की गलतियों को अच्छी प्रकार से बार-बार पढ़ें, याद करें, तथा गहराई से इनको समझें। ये सारी गलतियां समझकर संसार के पदार्थों का परीक्षण निरीक्षण इस प्रकार से करें-->

वेदों एवं ऋषियों के अनुसार संसार में 6 पदार्थ अनादि हैं; ईश्वर, आत्मा, प्रकृति, दिशा, काल और आकाश। इस न्याय विद्या के आधार पर, प्रमाण एवं तर्क आदि की सहायता से ईश्वर आदि इन 6 अनादि पदार्थों के बारे में वास्तविक ज्ञान प्राप्त करें।

यदि इस न्याय विद्या की सहायता से आपने ठीक प्रकार से सोचना विचारना निर्णय करना तथा व्यवहार / आचरण करना सीख लिया, और चिंतन मनन खोज करते समय, यदि आप इन 54 सूक्ष्म गलतियों से बचने का प्रयत्न करेंगे, तो आप निश्चित रूप से सही चिंतन करेंगे। सही भाषा बोलेंगे, सत्य बोलेंगे, और सही

आचरण करेंगे। इसके साथ साथ आप आजकल के उन तथाकथित विद्वानों प्रवक्ताओं के जाल में फँसने से स्वयं भी बच पाएँगे और दूसरे भोले भाले लोगों को भी बचा पाएँगे, जो इस न्याय विद्या का अथवा ईश्वर की दी हुई बुद्धि का दुरुपयोग कर के संसार को अंधकार में धकेल रहे हैं।

स्मरण रहे -- न्याय विद्या आँख के समान है। यह जीवन जीने का रास्ता दिखाती है। इस विद्या के बिना, व्यक्ति जीवन में वैसे ही दुःख उठाता है, जैसे आँख के बिना अन्धा व्यक्ति ठोकरें खाता है।

इस न्याय विद्या की सहायता से आपको तत्त्वज्ञान हो सकता है। उस तत्त्वज्ञान के अंतर्गत आपको यह पता चलेगा कि सोना चांदी रुपया पैसा भोजन वस्त्र मकान आदि कोई भी जड़ पदार्थ, आपको 100 % सुख नहीं दे पाएगा। न ही दिशा, काल और आकाश आपको 100 % सुख दे सकेंगे। इसी प्रकार से कोई शरीरधारी जीवात्मा भी (चाहे मनुष्य हो या पशु-पक्षी) आपको 100 % सुख नहीं दे पाएगा। केवल मात्र ईश्वर ही ऐसा एक पदार्थ है, जो आपको 100 % तथा उत्तम क्वालिटी का सुख दे पाएगा। और सब दुखों से ईश्वर ही छुड़ा पाएगा। अरबों खरबों वर्षों तक अर्थात जितना मोक्ष का समय है, (31नील, 10 खरब,

और 40 अरब वर्ष तक) ईश्वर ही आपको सब दुखों से छुड़ाकर पूर्ण आनंद दे पाएगा, और कोई नहीं।

इस प्रकार का वास्तविक ज्ञान हो जाने पर, आपका मोक्ष का मार्ग खुल जाएगा। आप को संसार से (प्रकृति और आत्माओं से) वैराग्य हो जाएगा। अर्थात इनमें राग द्वेष मोहमाया आसक्ति आदि नहीं रहेगी। जीवन चलाने और लक्ष्य की प्राप्ति करने के लिए, आप संसार के पदार्थों से यथायोग्य सहयोग लेंगे भी और देंगे भी। अनासक्त भाव से आप सारे कार्य करेंगे। और सांसारिक व्यवहारों की सिद्धि करते हुए मोक्ष मार्ग पर तीव्रता से चल पड़ेंगे।

तब क्या प्रक्रिया होगी, जिससे कि आप आगे मोक्ष तक पहुंच पाएंगे। उसे न्याय दर्शन के ही एक सूत्र के आधार पर महर्षि गौतम जी के शब्दों में पढ़िए।

"दुखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः।।" न्याय सूत्र 1/1/2.

अर्थात् न्याय दर्शन में बताए 16 पदार्थों के तत्त्वज्ञान से, अथवा ईश्वर आत्मा और प्रकृति इत्यादि इन सब पदार्थों के तत्त्वज्ञान से, मिथ्याज्ञान का नाश होता है। और मिथ्याज्ञान के नष्ट होने पर उससे उत्पन्न होनेवाले राग द्वेष मोह नामक दोष भी नष्ट हो जाते हैं। राग द्वेष मोह दोषों के नष्ट होने पर सकाम कर्म भी बंद हो जाते हैं। सकाम कर्म न करने से अगला जन्म भी रुक जाता है।

और जब अगला जन्म रुक गया, अर्थात अगला जन्म नहीं हुआ, तो दुख पूरी तरह से समाप्त हो जाता है। इसी को मोक्ष कहते हैं। इस मोक्ष में ईश्वर के साथ संबंध हो जाने से ईश्वर का उत्तम आनन्द भी ऊपर लिखे मुक्ति काल (31नील, 10 खरब, और 40 अरब वर्ष) तक लगातार मिलता रहता है।

जो लोग इस न्याय विद्या को गहराई से जानना चाहते हैं, वे महर्षि गौतम जी के बनाए न्याय दर्शन का पूरा और बार बार अध्ययन करें। आइए इस न्याय विद्या की सहायता से अपना और सबका कल्याण करें। धन्यवाद। ओं शांतिः शांतिः शांतिः।।

समाप्तमिदं शुभं शास्त्रम्।। यह शुभ शास्त्र समाप्त हुआ।।

विनम्र निवेदक,

- स्वामी विवेकानंद परिव्राजक

निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय,

रोजड़, गुजरात।